वर्धमान महावीर खुला विश्वविधालय, कोटा

BAHM -01

Anatomy and Physiology शरीर रचना विज्ञान

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष
प्रो. (डॉ.) एल . आर . गुर्जर
निदेशक , संकाय
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक
प्रो.(डॉ.) एच.बी.नन्दवाना
निदेशक,सतत शिक्षा
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

डा.क्षमता चौधरी
समन्वयक (आहार एवं पोषण विज्ञान)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

सदस्य

1. प्रो. नीलिमा वर्मा
आचार्य, महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तरमहाविद्यालय ,
भोपाल ,(म . प्र.)

2. प्रो.शशि जैन
आचार्य, एम.पी.यू.ए.टी. उदयपुर, राजस्थान

3.प्रो. सुमन सिंह
आचार्य,
एम.पी.यू.ए.टी. उदयपुर, राजस्थान

4. श्रीमती अंजली सक्सेना
अतिथि संकाय सदस्य
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

संपादन तथा पाठ लेखन

संपादक प्रो. नीलिमा वर्मा, आचार्य, महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तरमहाविद्यालय,भोपाल

1.श्रीमती अंजली सक्सेना(1,6,7,8,9,10,)
अतिथि संकाय सदस्य,

2. प्रो. नीलिमा वर्मा (2,3)
आचार्य, महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तरमहाविद्यालय

3.प्रो.नमिता जैन (4,5)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

1.प्रो. (डॉ.)विनय कुमार पाठक
कुलपति,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

2. प्रो. (डॉ.) एल . आर . गुर्जर
निदेशक , संकाय
व. म .खु.वि. वि. , कोटा

3.प्रो. (डॉ.) कर्ण सिंह
निदेशक, पाठ्यसामग्री एवं वितरण विभाग
व. म .खु.वि. वि. , कोटा

4. डॉ. अनिल कुमार जैन
अतिरिक्त निदेशक, पाठ्यसामग्री एवं वितरण विभाग
व. म .खु.वि. वि. , कोटा

उत्पादन- सितम्बर 2014 ISBN :

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस पाठ्य सामग्री के किसी भी अंश को व. म .खु.वि. वि. , कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चकमुद्रण) के द्वारा या अन्यत्र प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |कुलसचिव . व. म .खु.वि. वि. , कोटा , द्वारा
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित

अनुक्रमणिका

इकाई सं;	इकाई का नाम	पेज नं.
	खण्ड (क) हिन्दी व्याकरण का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष	
इकाई 1	कोशिका एवं उत्तक	
इकाई 2	रक्त का संगठन	
इकाई 3	हृदय	
इकाई 4	कंकाल तंत्र	
इकाई 5	श्वसन तंत्र	
इकाई 6	पाचन तंत्र	
इकाई 7	उत्सर्जन तंत्र	
इकाई 8	तंत्रिका तंत्र	
इकाई 9	अन्तास्त्रावी ग्रंथियां	
इकाई 10	जनन तंत्र	

इकाई - 1

कोशिका और उत्तक(Cell and Tissue)

1.0उद्देश्य

1.1प्रस्तावना

1.2 कोशिका

1.3 कोशिकांग

1.4 उत्तक

1.5 सारांश

1.6 प्रश्न

1.7 संदर्भ ग्रन्थ

1.0उद्देश्य

- छात्र कोशिका के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- छात्र कोशिकांग के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- छात्र उत्तको की संरचना के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे |

1.1प्रस्तावना

प्रत्येक सजीव प्राणी का शरीर अनेक कोशिकाओं का बना होता है। वह जीवों की सबसे सूक्ष्मतम संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई (Structural and functional unit) है। ये कोशिकाएं ही सभी जैव क्रियाओं एवं जैविक लक्षणों के लिए उत्तरदायी है। कोशिकाएं आकार-प्रकार में अत्यंत छोटी और एक-दूसरे से भिन्न होती है। इन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी यंत्र से दी देखा जा सकता हैं।

16वीं शताब्दी से पूर्व कोशिका (Cell) के बारें में किसी को ज्ञान नहीं था परन्तु सन् 1665ई. में राबर्ट हुक (Robbert hooke) ने काग (Cork) की पतली काट में मधुमक्खी के छत्ते के समान असंख्य सूक्ष्म प्रकोष्ठ देखे व इन प्रकोष्ठों को सेलुला (Cellula) कहा। सेलुला (Cellula) का शाब्दिक अर्थ होता है कमरा। परन्तु वे प्रेक्षित प्रकोष्ठ मृत कोशिकाएं थी। बाद में यही नाम बदलकर कोशिका (Cell) रखा गया। 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में कोशिका में स्थित बहुत सारी संरचनाओं को खोज लिया गया। एक मानव शरीर में लगभग $6x10^{11}$ कोशिकाएं (Cells) होती है।

1.2 कोशिका

सूक्ष्मदर्शी में ध्यानपूर्वक देखने पर एक कोशिका में निम्न प्रमुख संरचनाएं दिखाई देती है-

(i) कोशिका झिल्ली (Cell membrane)

(ii) कोशिका द्रव्य (Cytop)

(iii) केन्द्रक (Nucleus)

कोशिका झिल्ली बाह्य आवरण होता है जो कोशिका को पूर्ण रूप से ढका रखता है। इसी के अन्दर जैली सदृश (Jelly like) गाढा द्रव्य भरा रहता है। जिसे जीवद्रव्य (Protoplasm) कहते है। जीवद्रव्य ही जीवन का मूल आधार है। इसकी खोज पुरकिन्जे तथा वॉन मोल (Purkinje and von mohl) ने 1846 में की थी। जीवद्रव्य बीच में अधिक गाढा होकर सघन गोलाकार या अण्डाकार पिण्ड के रूप में दिखाई देता है। जिसे राबर्ट ब्राउन (Robbert brown) ने 1883 में केन्द्रक या नाभिक (Nucleaus) नाम दिया। कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) अर्द्ध पारदर्शक, कलात्मक एवं जालीनुमा होता है जिसमें कई संरचनाएं पायी जाती है जैसे - माइटोकॉन्ड्रिया (Mitrochondria), गॉल्जी काय (Golgi body), सेन्ट्रोसोम (Centrosome), राइबोसोम (Ribosome), लाइसोसोम (Lysosome), इन्डोप्लाजमिक रेटीकुलम (Endoplasmic reticulum) इत्यादि। केन्द्रक, केन्द्रक झिल्ली द्वारा ढका रहता है इसमें केन्द्रक द्रव्य व क्रोमेटिन जाल पाया जाता है। इस संरचना को हम निम्न प्रकार से दर्शाते है।

सन् 1838-39 ई. में जन्तु विज्ञानी थियोडोर श्वान (Theoder shwann) व पादप विज्ञानी मैथियास श्लाइडेन (Mathias schleidon) ने कोशिका सिद्धांत प्रस्तुत किया। इनके अनुसार -

(1) सभी जीवों का शरीर एक या अनेक कोशिकाओं का बना होता है।

(2) कोशिका, शरीर की एक संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई हैं।

(3) यह सभी जैविक क्रियाओं की मूलभूत इकाई है।

(4) कोशिका में ही आनुवंशिक पदार्थ पाये जाते है। अत: ये ही जीव की वंशाद्गति की इकाई है।

(5) नई कोशिकाओं का निर्माण एवं उपस्थित कोशिकाओं के विभाजन से होता है।

18 वीं व 19 वीं शताब्दी में कोशिका में हुई महत्वपूर्ण खोजों को निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

वर्ष	वैज्ञानिक	अनुसंधानकार्य
1665	राबर्ट हुक (Robbert Hook)	काग की पतली काट में मधुमक्खी के छत्तों के समान रचना देखा तथा सेलुला (Cellula) कहा

		जिसे बाद में कोशिका (Cell) नाम दिया गया।
1772	कॉर्टी (Corti)	सूक्ष्मदश्र्ाी में गाढे द्रव्य जीवद्रव्य (Protoplasm) को देखा।
1833	राबर्ट बा्रउन (Robbert Brown)	कोशिका में न्यूक्लियस (Nucleus) को देखा व नाम दिया।
1838	श्ला्इडन व श्वान (Schleidon and schwann)	जीवद्रव्य (Protoplasm) नाम दिया।
1840	जे. ई. पुरकिन्जे (J.E. Purkinje)	कोशिका में गॉल्जी काय (Golgi body) की खोज की।
1867	एल. एस. जॉर्ज (L.S. George)	कोशिका में गॉल्जी काय (Golgi body) की खोज की।
1880	ई. स्ट्रॉसबर्गर	कोशिका में उपस्थित तरल द्रव्य को साइटोप्लाज्म (Cytoplasm) तथा केन्द्रक में उपस्थित द्रव्य को न्यूक्लियोप्लाज्म या केन्द्रक (Nucleoplasm) कहा।
1881	डबल्यू. वाल्डेयर (W. Waldeyer)	केन्द्रक में उपस्थित धागे सदृश संरचना को क्रोमोसोम (Chromosome) गुणसूत्र नाम दिया।
1882	डबल्यू. फ्लेमिंग (W. flaming)	समसूत्री (Mitosis) विभाजन की खोज की।
1887	ई. वॉन वेण्डिन (E. Van. Benden)	सेन्ट्रोसोम (Centrosome) की खोज की।
1888	टी. बॉवेरी (T. Boveri)	सेन्ट्रोसोम का विस्तृत खोज की।
1891	बीजमैन व स्ट्रासबर्गर (Weismann and strassburger)	अर्द्धसूत्री विभाजन (Meiosis) की खोज की।
1899	आर. आल्टमैन (R. Altmann)	केन्द्रक में उपस्थित न्यूक्लिन पदार्थ को न्यूक्लीक अम्ल (Nucleic acid) कहा।
1941	क्लॉडी (Claude)	राइबोसोम (Ribosome) की खोज की व इसे

		माइक्रोसोम नाम दिया।
1945	पॉर्टर, क्लॉडी, फुलम (Porter, claude, Fullum)	इन्डोप्लाजमिक रैटीकुलम (Endoplasmic reticulum) नाम दिया तथा विस्तृत अध्ययन किया।
1953	डी. वाटसन व एफ. एच. क्रिक (D. Watson and F. H. Crick)	D.N.A. का मॉडल प्रस्तुत किया।
1955	क्रिस्टान डी ड्यूवे (Christan De Duve)	लाइसोसोम की खोज की।

कोशिका संरचना (Cell structure)

जैसा कि पूर्व में ही बताया जा चुका है कि कोशिका जीवन की सबसे सूक्ष्मतम मूलभूत संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है। यह एक बहुत ही महीन झिल्ली से परिबद्ध रहता है जिसे प्लैज्मा झिल्ली (Plasma membrane) कहते है। कोशिका संरचनाओंका विस्तृत अध्ययन किया है।

कोशिका झिल्ली (Cell Membrane)

यह सबसे बाहरी रक्षात्मक आवरण है जिसकी मोटाई 10 मिली माइक्रान होती है कोशिका झिल्ली को अनेक लेखक इसके स्वरूप के कारण एक्टोप्लाज्म (Ectoplasm) प्लाज्माजीमा (Plasmaleema) या प्लाज्मा झिल्ली (Plasme membrane) भी कहते है।

कोशिका झिल्ली एक अर्द्धपारगम्य (semipermeable) चयनात्मक झिल्ली है क्योंकि इसी के द्वारा विशिष्ट यौगिकों के अणु अथवा आयन (ion) का आदान-प्रदान होता है। रासायनिक विश्लेषण (Chemical analysis) करने पर यह ज्ञात होता है कि इसमें 50% लिपिड जिसमें मुख्यत: फास्फोलिपिड और कोलेस्ट्राल (Cholestrol) होता है तथा 50प्रतिशत प्रोटीन होता है जिन्हें माइक्रोविलाई (microvilli) कहा जाता है।

कोशिका झिल्ली के कार्य (Functions of cell membrane)

(i) सुरक्षा करना (Protection)

(ii) भोजन का अन्त्रग्रहण करना (Ingestion of food)

(iii) चयनात्मक पारगम्यता (Selective permeability)

(iv) बेकार की वस्तुओं को बाहर निकालना (Excretion of wasted)

(v) बाह्य संवेदनाओं का ग्रहण करना (Reception of external wastes)

(vi) अन्दर की वस्तुओं को बाहर आने से रोकना (To prevent cell organelles to outside)

केन्द्रक (Nucleus)

केन्द्रक कोशिका का महत्वपूर्ण कोशिकांग है। इसका कोशिका में वही स्थान है जो स्थान मानव शरीर में मस्तिष्क का है यह कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) के मध्य भाग में कोशिका द्रव्य से अधिक ठोस, सुस्पष्ट, गोलाकार या अंडाकार संरचना है। केन्द्रक चारों तरफ से एक झिल्ली द्वारा घिरा रहता है। जिसे केन्द्रक भित्ति कहते है। इसकी रासायनिक संरचना भी प्लाज्मा झिल्ली (Cell membrane) की तरह ही प्रोटीन और वसा की बनी होती है। केन्द्रक भित्ति में 30-100 मिली माइक्रान के कई सूक्ष्म छिद्र होते है जिसे केन्द्रकी छिद्र कहते है। इन्हीं छिद्रों से होकर कोशिकी पदार्थ कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm) से केन्द्रक द्रव्य (Nucleoplasm) में आ जा सकते है।

केन्द्रक में ही अर्द्धद्रवीय गाढा लसलसा पदार्थ होता है जिसे केन्द्रक द्रव्य (Nucleoplasm) कहते है। यह प्रोटीन न्यूक्लीक अम्ल (Nucleic acid) फास्फोरस (Phosphorus) व प्रोटीन के जटिल कार्बनिक यौगिक के बने होते है। केन्द्रक द्रव्य में पतले धागे के सदृश कई संरचानायें दिखायी देती है जो आपस मे एक जाल सा बनाती है जिसे क्रोमोनियमा (chromonema) एक-दूसरे से पूर्णतया अलग, घना, कुंडलित व अपेक्षाकृत अधिक मोटी हो जाती है जिसे क्रोमोसोम (Chromosome) कहते है। मानव शरीर में 46 क्रोमोसोम होते है। प्रत्येक जीव में इसकी संख्या अलग-अलग होती है

चित्र : केन्द्रक की संरचना

चित्र : क्रोमोसोम की संरचना

मनुष्य में 46 क्रोमोसोम होते है प्रत्येक क्रोमोसोम में अनेक जीन्स होते है। मानव में 44 क्रोमोसोम आलिंगी (autosomes) तथा 2 क्रोमोसोम लिंगी (Sex chromosomes) होते है। इन्हें क्रोमोसोम के विभाजन के फलस्वरूप नई कोशिका का जन्म होता है लेकिन क्रोमोसोम की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता।

केन्द्रक के कार्य **(**Functions of nucleus**)**

(i) कोशिका विभाजन (Cell division)

(ii) आनुवंशिकगुणों का हस्तान्तरण करना (Transfer of hereditary characteristics)

(iii) प्रोटीन व एन्जाइम का संश्लेषण करना (Synthesis of proteins and enzymes)

1.3 कोशिकांग

माइट्रोकॉन्ड्रिया (Mitochondria) -

ये कोशिका द्रव्य में ठोस प्रकृति के दानेदार सूक्ष्म कण, सूक्ष्म छड सा सॉसर के आकार के दिखाई देते है। इनकी संख्या एक कोशिका में 50 से लेकर 5000 तक हो सकती है। एक क्रियाशील (active) तथा युवा व्यक्ति के कोशिकाओं में इसकी संख्या अधिक होती है। ये अधिकतर यकृत, हृदय व वृक्क में पाये जाते है परन्तु कैंसर के

रोगी को कोशिका में ये नहीं के बराबर पाये जाते है तथा परिपक्व (Mature) उरिथ्रोसाइट्स में एक भी माइटोकॉन्ड्रिया नहीं पायी जाती है।

माइटोकॉन्ड्रिया वसा एवं प्रोटीन का बना होता है जिसमें 65-70 % प्रोटीन 25 % फास्फोलिपिड और 0.5% राइबोन्यूक्लिक अम्ल (Ribonucleic acid, RNA) होता है। इसके अतिरिक्त इसमें डाइऑक्सी राइबोन्यूक्लिक अम्ल (Deoxyribonulcic acid, DNA) भी होता है। माइटोकॉन्ड्रिया का जब विभाजन होता है तो नई माइटोकॉन्ड्रिया का निर्माण होता है।

माइटोकॉन्ड्रिया को शक्तिगृह (Power house) भी कहा जाता है। क्योकि इसमें पाये जाने वाले एन्जाइम, श्वसन के दौरान खाद्य अणुओं का ऑक्सीकरण करते हेै। इस प्रकार यह खाद्य अणु की स्थितिज ऊर्जा (Potential energy) को ऐसी ऊर्जा में परिवर्तित कर एडीनोसीन डाइफास्फेट (Adenosine di-phosphate, ADP) अणुओं में बदल देती है। इस दृष्टि से यह कोशिका का सबसे महत्वपूर्ण एवं सक्रिय अंग है तथा वस्तुत: शक्तिगृह की भूमिका निभाता है।

माइटोकॉन्ड्रिया दोहरी झिल्ली द्वारा ढकी रहती है। दोनों झिल्लियों के मध्य के स्थान को पेरिमाइटोकॉन्ड्रिया स्थान (Perimitochondrial space) कहते है। माइटोकॉन्ड्रिया प्रकोष्ठ में भीतर की ओर कई उंगली सदृश उभार दिखाई देते है। जिसे क्रिस्टी (Cristae) कहते है। इन्हीं क्रिस्टी की उपस्थिति के कारण आंतर-प्रकोष्ठ अनेकों अपूर्ण प्रकोष्ठों में बंटा दिखाई देता है। मैट्रिक्स में गाढा कोलायडल द्रव होता है जिसमें राइबोसोम प्रोटीन व एन्जाइम पाया जाता है।

कोशिका द्रव्य (Cytoplasm)

कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) अर्द्धपारदर्शक कलात्मक एवं जानीनुमा होता है। यह प्रोटीन, वसा, कार्बोज, पिगमेन्टस, खनिज लवण व विटामिन का बना होता हैं। इसमें कई प्रकार के सजीव कोशिकांग तथा निर्जीव अन्तर्वस्तुएं पायी जाती है। यह एक कॉलाइडी (Colloidal) द्रव्य है। सजीवता के लिए इसमें न्यूनतम 18% जल होना अति आवश्यक है। जब यह अपेक्षाकृत तरल होता है तो इसे सोल (Sol) अवस्था कहते है और जब यह गाढा जैली के समान होता है तो इसे जेल (Gel) अवस्था कहते है। अत: यह जल की मात्रा के अनुसार सोल-जेल (Sol-Gel) अवस्था में परिवर्तनशील होता है।

यह
। है।

चित्र : माइट्रोकॉन्ड्रिया की संरचना

राइबोसोम (Ribosome)

यह माइटोकॉन्ड्रिया से छोटे, अतिसूक्ष्म, अंत: प्रद्रव्यी (Endoplasmic reticulum) की नलिकाओं के बाहरी सतह पर चिपके हुए पाये जाते है अथवा यह कोशिका द्रव्य में मुक्त (Free) के रूप से बिखरे पडे होते है। चह माइटोकॉन्ड्रिया में भी मिलते है। राइबोसोम मुख्यत: राइबोन्यूक्लियोप्रोटीन (Ribonucleioprotein) के बने होते है। इसमें प्रोटीन और राइबोन्यूक्लिक अम्ल (Ribonucleic acid) की मात्रा लगभग मात्रा बराबर होती है। शरीर में पोषक तत्वों की कमी होने पर इनकी संख्या भी कम हो जाती है।

राइबोसोम में 50-55 प्रकार के प्रोटीन अणु होते है। इसे कोशिका प्रोटीन कारखाना (Protein industry) भी कहते हे। क्योंकि राइबोसोम ही मुख्यत: प्रोटीन के निर्माण के लिए विशिष्ट भूमिका अदा करते है।

लाइसोसोम (Lysosome)

यह कोशिका में छोटी छोटी पुटिकाओं के रूप में पाये जाते है। इसका औसत व्यास 0.05 मिली. माइक्रान होता है। इसमें लगभग 36 प्रकार के जल - अपघटनीय एन्जाइम (Hydrolytic enzyme) पाये जाते है। ये सभी एन्जाइम शर्कराओं, लिपिडों, फास्फोलिपिडों न्यूक्लीक अम्ल व प्रोटीन का अपघटन कर उन्हें छोटे अणुओं में

खंडित कर देते है। इन्हीं के द्वारा कोशिका की विभिन्न संरचनाओं का पाचन और अपघटन होता है। अत: लाइसोसोम को आत्मघाती थैली (suicidal bag) भी कहते है। जब कभी किसी संरचना अथवा कण को अपघटन या पाचन करना होता है। तो वह लाइसोसोम के सम्पर्क में आता है जिससे लाइसोसोम की झिल्ली टूट जाती है तथा ये जल अपघटनीय एन्जाइम बाहर आते है तथा उन्हें निगल जाते है। अपघटन के दौरान लाइसोसोम का स्वंय का भी विनाश हो जाता हेै। कभी-कभी तो यह पूरे कोशिका का ही अपघटन कर जाता है।

गॉल्जीकाय (Golgi body)

यह धागे की तरह जाल सी रचनाओं का समूह हेै। इसे लाइपोकॉन्ड्रिया भी कहते हेै। ये स्त्रावी कोशिका (Secretary cells) में काफी विकसित होते है। इसका मुख्य कार्य स्त्रवण (Secretions) माना गया है। साथ ही साथ यह बहुशर्कराओं (Poly saccharides), श्लेष्मा (muceous) व पेक्टिन (Pectin) संश्लेषण में सहायक है। इसके अलावा यह शुक्राणुओं (Sperms) के एक्रोसोम (Acrosome) के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

सेन्ट्रोसोम (Centrosome)

यह नाभिक (Nucleus) के एक ओर पाया जाता है जिसे केन्द्र बिन्दु भी कहते है। यह कोशिका का विभाजन केन्द्र (Division centre) है क्योंकि यह कोशिका विभाजन क्रिया को प्रारम्भ एवं नियमित करता है। इसके अंदर एक जोडी सूक्ष्म बेलनाकार रचना पायी जाती है। जिसे सेन्ट्रीओल (Centriole) कहते है। ये सेन्ट्रीओल ही मिलकर सेन्ट्रोसोम (Cetnrosome) कहलाता है। कोशिका विभाजन के द्वारा ये ही सेन्ट्रोसोम केन्द्र भाग से विभाजित होकर दो पुत्री तारक कार्यों (Daughter centroide) में विभाजित होकर विभाजन तर्कु (Spindle) के ध्रुवों का निर्धारण करती है।

रिक्तिका (Vacuole)

कोशिका द्रव्य में सूक्ष्म या बडी बुलबले सदृश कई संरनचाएं होती है जिसे रिक्तिकाएं (Vacuole) कहते है। विभाजनशील कोशिकाओं व नवकोशिकाओं मे यह अत्यंत सूक्ष्म व संख्या में अधिक होती है तथा सम्पूर्ण कोशिका द्रव्य में बिखरी रहती है। यह पौधों में टोनोप्लास्ट (Tonoplast) झिल्ली द्वारा परिबद्ध रहती है तथा इसमें जल सदृश तरल द्रव जिसे कोशिका रस (Cell sap) कहते है। भरा रहता है। कोशिका रस में खनिज लवण कार्बोहाइड्रेट कार्बनिक अम्ल व विभिन्न वर्णक के अलावा प्रोटीन भी होते है।

अन्त: प्रद्रव्यी जालिका (Endoplasmic reticulum)

यह अन्त: सम्बद्ध झिल्लियों का एक जाल है जो वेसीकल्स (Vesicles) व नलिकाओं के रूप में कोशिका द्रव्य में विस्तारित रहता है। इसे यूनिट अर्गेस्टोप्लाज्म (Unit Urgestoplasm) भी कहते है। यह सभी कोशिकाओं में पाया जाता है परन्तु बैक्टीरिया (Bacteria), वाइरस तथा स्तनधारियों के लाल रक्ताणु (एरिथ्रोसाइटस) में नहीं पाया जाता है। यह अधिकांशत: उन कोशिकाओं में पाया जाता है जिनमें प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया अपेक्षाकृत अधिक होती है इसके अलावा यह गॉब्लेट कोशिकाओ (Goblet cells) ग्रंथिल कोशिकाओं (Glandular cells) में भी अत्यधिक संगठित होता है।

क्रियाशीलता के आधार पर अन्त:प्रद्रव्यी जालिका को दो रूपों में बांटा गया है ये क्रमश: रूक्षपृष्ठ रेटीकुलम या कणिकीय रेटीकुलम तथा चिकने पृष्ठ वाला रेटीकुलम या अकणिकीय रेटीकुलम होते है।

चित्र : अंत:प्रद्रव्यी जालिका केन्द्रक एवं माइटोकॉन्ड्रिया के साथ

(1) रूक्षपृष्ठ वाला रेटीकुलम या कणिकीय रेटीकुलम **(**Rough surface reticulum or granular reticulum**)**

इसमें इलेक्ट्रोनमाइक्रोस्कोपिक कणिकाएं (Electromicroscopic Granules) पायी जाती है। ये कणिकाएं ही राइबोसोम (Ribosomes) कहलाती है तथा यूनिट मेम्ब्रेन्स (Unit membranes) से जुडी रहती है। रूक्ष पृष्ठ वाला रेटीकुलम अधिकांशत: उन कोशिकाओं में पाया जाता है। जिनमें प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया सबसे अधिक होती है।

(2) चिकने पृष्ठ वाला या अकणिकीय रेटीकुलम **(**Smooth surface reticulum or agranular reticulum**)**

यह विभिन्न रूपों में पाया जाता है अत: इसे परिपक्व ल्यूकोसाइटस रेटिना की वसा कोशिकाओं अंतराल कोशिकाओं में आसानी से देखा जा सकता है। इसमें कणिकाओं का पूर्णतया अभाव रहता है। इसकी विभिन्न रूपों की उपस्थिति के कारण ही इसे माइलॉयड काय (Myeloid bodies) तथा वलयाकार रेटीकुलम (Annulated reticulum) भी कहते है। क्योंकि अपरिपक्व ऊसाइटस में यह वलयाकार दिखाई देता है। जबकि आंख की रेटिना के वर्णक कोशिकाओं में संगठित वेसीकल्स एवं नलिकाओं के रूप में दिखाई देता है।

अन्त:प्रद्रव्यी जालिका यूनिट मेम्ब्रेन्स के दोहरे स्तरों से बनी होती है। यूनिट मेम्ब्रेन्स की रचना भी प्लाज्मा मेम्ब्रेन की भांति होती है तथा यह लाइपो प्रोटीन्स (Lipo proteins) की भी बनी होती है। प्रत्येक यूनिट मेम्ब्रेन लगभग 4-5 या मिली माइक्रान मोटी होती है तथा दूसरी यूनिट मेम्ब्रेन से लगभग 80-95 या मिली माइक्रान चौडे एक धानीयुक्त खाली स्थान पर अलग रहती है। इन रिक्त स्थानों में परिवर्ती अपारदर्शक पदार्थ भरा रहता है। अन्त:प्रद्रव्यी जालिका कई रूपों में पायी जाती है।

(a) नलिकायें (Tubules**)**

अन्त: प्रद्रव्यी जालिका एक अशाखित नलिका के रूप में पायी जाती है। ये नलिकायें विभिन्न व्यास की होती है। तथा उन कोशिकाओं में अपेक्षाकृत अधिक होती है जिनमे कोलेस्टेरोल, ग्लिसराइड्स तथा हारमोन्स का संश्लेषण अधिक होता है। **(b)** सिस्टर्नी **(Cisternae)**

ये लम्बाकार चपटे तथा अशाखित वेसीकल्स है जो समानान्तर कतारों में सजे रहते है। इनकी मोटाई 40-50 या मिली माइक्रान होता है जिन्हें सिस्टर्नी (Cisternae) कहते है। यह खासकर उन कोशिकाओं में पाया जाता है जिनमें प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया सबसे अधिक होती है जैसे - अग्नाशय (Pancrease), मस्तिष्क कोशिकाएं (Brain cells), यकृत (liver) आदि।

(c) वेसीकल्स (Vesicles)

ये वृत्ताकार, गोलाकार अथवा अण्डाकार होते है जिनका आकार 25-500 या मिली माइक्रान होता है। ये भी अधिकांशत: प्रोटीन संश्लेषण करने वाली कोशिकाओं में पाये जाते है।

अंत:प्रद्रव्यी जालिका के कार्य **(Functions of endoplasmic reticulum)**

(i) प्रोटीन संश्लेषण।

(ii) अन्तरकोशीय अभिगमन (Intracellular transport) -

यह परिवहन तंत्र की भांति कार्य करता है। इसके द्वारा कोशिका में विभिन्न पदार्थों का परिसंचरण तथा आदान प्रदान होता है।

(iii) यह कोशिका द्रव्यी मैट्रिक्स के साथ धानी प्रणाली (Vacuolar system) के अनेक यांत्रिक कार्यों में सहायता करती है तथा यांत्रिक अवलम्बन (mechanical support)

(iv) ग्लाइकोजन उपापचय (Glycogon metabolism) -

यह ग्लाइकोजन के उपापचयी में मदद करता है। यह क्रिया यकृत में उपस्थित अकणिकीय एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम के द्वारा होती है।

(v) यह कोशिका की अन्य झिल्लीमय रचनाओं का निर्माण करता है। क्योंकि कोशिका की कई झिल्लीमय संरचनायें जैसे - केन्द्रक झिल्ली गॉल्जी काय इत्यादि ऐन्डोप्लाज्मिक रेटीकुलस से सम्बन्धित होते है।

(vi) एन्जाइम क्रियायें तथा कोशिका उपापचय (Enzyme activities and cellular metabolism)

ऐन्डोप्लाज्मिक के झिल्लियों से कई प्रकार के एन्जाइम जुडे होते है जो फास्फोलिपिडस हारमोन्स कोलेस्टेरोल इत्यादि के उपापचय में सहायता प्रदान करते है।

कोशिकांग संक्षेप में

कोशिका घटक (Cell components)	मुख्य कार्य (Main Functions)
1. कोशिका झिल्ली या प्लाज्मा झिल्ली (Plasma membrane)	1. जीवद्रव्य (Proplasm) की सुरक्षा करना।
	2. बाहरी वस्तुओं को कोशिका के अंदर आने रोकना व कोशिकीय वस्तुओं को बाहर जाने से रोकना।
2. माइटोकॉन्ड्रिया (Mitochondria)	1. कोशिका के भीतर 'शक्तिगृह' (Power house of the cell) का कार्य करना।
	2. आवश्यकता पडने पर ऊर्जा उत्पन्न करना।
3. गॉल्जी काय (Golgi body)	1.विभिन्न प्रकारों के स्त्रावों का स्त्रवण करना।
	2. संश्लेषी प्रक्रियाओं के लिए सतह प्रदान करना।
4. अन्त: प्रद्रव्यी जालिका (Endoplasmic reticulum)	1. स्टीरॉयड (Steroid) का संश्लेषण करना।
5. लाइसोसोम (Lysosome)	1. 'आत्मघाती थैली' (Suicidal bag) का कार्य करना।
	2. कोशिका के अंदर अवांछित पदार्थों का अपघटन करना।
	3. प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेटस, वसा व अन्य पदार्थों का पाचन करना।
6. सेन्ट्रिओल (Centriole)	1. तुर्क (Spindle) का निर्माण करना।

7. केन्द्रक झिल्ली (Nuclear membrane)	1. केन्द्रक की सुरक्षा करना। 2. केन्द्रक के अंदर व बाहर आन जाने वाले पदार्थो को रोकना।
8. न्यूक्लिओलस (Nucleolus)	1. प्रोटीन संश्लेषण करना। 2. संदेशवाहक RNA (mRNA) को जमा रखना।
9. क्रोमेटिन (Chromatin)	1. वंशानुगत गुणों (Hereditary characters) को संतानों तक पहुंचना। 2. कोशिकीय तथा केन्द्रयी उपापचय क्रियाओं का नियमन करना। 3. कोशिका विभाजन में सहयोग देना।

1.4 ऊतक एवं अंग संस्थान **(Tissue and Organ system of Body)**

एक ही प्रकार के कोशिकाओं के समूह तथा परतों को, जिनकी संरचना तथा कार्य समान हों, ऊतक कहते है। ये कोशिकाऐं आपस में अन्तरकोशिकीय पदार्थ (Intercillular Substance) द्वारा जुडी रहती है। ये अन्तराकोशिकीय पदार्थ प्राय: कॉलेजन नामक प्रोटीन होती है जो अत्यन्त ही महीन तन्तुकों (Fibres) के रूप में होती है। ऊतक की कोशिकाओं के बीच एक तरल द्रव्य पाया जाता है जिसे ऊतक द्रव्य (Tissue Fluid) कहते है।

ऊतकां को उनके कार्यों के अनुसार चार मुख्य भागों में बांटा गया है -

(I) आच्छादक या उपकलीय ऊतक (Epithelial or skin tissue)

(II) संयोजी ऊतक (Connective)

(III) पेशीय ऊतक (Muscular Tissue)

(IV) तंत्रिका ऊतक (Nervous tissue)

(I) आच्छादक ऊतक या उपकलीय ऊतक **(Epithelial tissue or skin tissue) -**

यह ऊतक शरीर तथा इसके विभिन्न अंगों की बाहरी एवं भीतरी सतह का निर्माण करता है। इस तरह यह शरीर में एक आवरण या झिल्ली का काम करता है। तथा रक्षात्मक 'त्वचा' (Protective Skin) बनाता है। शरीर की विभिन्न ग्रंथियां और अन्य भीतरी अंग, जैसे - पाचक अंग (Digestive organs), श्वसन अंग (Respiratory organs), जननांग (Reproductive organs), रक्त वाहिनियों (Blood vessels), गह्वरों (cavities) इत्यादि की नलियों आच्छादक ऊतक बनी होती है। इसका मुख्य कार्य पदार्थों का स्त्रवण करना तथा अंगों की रक्षा करना है क्योंकि इस प्रकार के ऊतक बाह्य झिल्ली का कार्य करते है इसलिए यह बाहरी वस्तुओं, बैक्टीरिया, वाइरस इत्यदि को शरीर में प्रवेश करने से रोकता है तथा चोट आदि से भीतरी अंगों की सुरक्षा करता है।

आच्छादक ऊतक की कोशिकाओं के बीच अन्तरकोशिकीय पदाथ्र्ज्ञ बहुत कम मात्रा में होता है तथा ये एक दूसरे से काफी सटी रहती है। किन्हीं किन्हीं जगहों पर तो जरा भी अन्तरकोशिकीय पदार्थ नहीं होता है तथा वहां आच्छादक ऊतक एक दूसरे से परस्पर मिल जाते है जिसे दृढ बंधन (Tight Junctions) कहते है। आच्छादक ऊतक में रक्त वाहिनियों का अभाव होता है तथा इनका पोषण लसिका द्वारा होता है। आच्छादक ऊतक को पर्तो की लसीका उपस्थिति के आधार पर दो भागों में बांटा गया है।

1. सामान्य आच्छादक (Simple epithelium)

2. संयुक्त आच्छादक ऊतक अथवा स्तरित उपकला (Compound tissue or stiated epithlium)

1. सामान्य आच्छादक ऊतक **(Simple Epithelium)**

इसमें आच्छादक ऊतक की कोशिकाएं एक ही पर्त में व्यवस्थित होती है। सामान्य ऊतक निम्न प्रकार का होता है-

(क) शल्की उपकला (Squamous epithelium)

(ख) स्तम्भाकार उपकला (Columnar epithelium)

(ग) घनाकार उपकला (Cuboidal Epithelium)

(घ) रोमिक या पक्षमाभिक उपकला (Ciliaed epithelium)

(ड़) ग्रंथिल उपकला (Glandular epithelium)

(च) संवेदी उपकला (Sensory epithelium)

(क) शल्की उपकला **(**Squamous Epithelium**) -** इसकी कोशिकाएं चौडी, चपटी तथा फर्श के अष्ट कोण जैसी होती है। इसलिए इसे पेवमेन्ट उपकला (Pavement epithelium) भी कहते है। इसकी कोशिकाओं में अन्तरकोशिकाओं में अन्तरकोशिकीय स्थान जरासा भी नहीं करना (To protect) हेै। रक्त और लसीका वाहिनियों की भित्ति, फुफ्फुस का वायुकोष, चर्म तथा गाल के अंदर की झिल्ली इसी प्रकार के ऊतक के बने होते है।

चित्र : शल्की उपकला (A) सतह की ओर से (Surface View)

(ख) स्तम्भाकार उपकला (Columar Epithelium) -

इसकी कोशिकाएं स्तम्भ (Column) के आकार की होती है तथा आपस में एक-दूसरे से बिल्कुल सटी रहती है।

चित्र : स्तम्भी उपकला

चित्र : रोमिक स्तम्भाकार उपकला

इन कोशिकाओं की लम्बाई चौडाई से ज्यादा होती हैं। यह आंत (Intestine), आमाशय (Stomach) तथा पित्ताशय (Gall bladder) की भीतरी दीवार को बनाती है। इसका मुख्य कार्य स्त्रवण (Secretion) या अवशोषण (Absorption) करना है।

(ग) घनाकार उपकला (Cuboidal epithelium) - इसकी कोशिकाएं घन (Cube) के आकार की होती है ये मुख्यत: लार ग्रंथि (Salivary gland) अग्नाशय की नली (Pancreatic duct) तथा थायराइड ग्रंथि (Throid gland) को बनाता है। वृक्क नलिकाओं (renal tubules) वृषण (Testis) व अण्डाशय (Ovary) की जनन एपीथिलियम भी घनाकार होती है। इसका मुख्य कार्य स्त्रवण (Secretion) उत्सर्जन (Excretion) तथा अवशोषण (absorption) करना है।

चित्र : घनाकार उपकला

(घ) रोमिक या पक्षमाभिक उपकला (Ciliated epithelium) - इस प्रकार के ऊतक की कोशिकाएं घनाकार (Cuboidal) या स्तम्भाकार (Columnar) होती है। और इनके प्रत्येक कोशिका के स्वतंत्र सिरे पर अनेक महीन धागे के समान रोम लगे होते है। जिसे रोमिका (cilia) कहते है। इसका मुख्य कार्य अवांछित पदार्थ को अंदर जाने से रोकना है। श्वासनली (Trachea), अण्डवाहिनी (Oviduct), मूत्रवाहिनी (Ureter) तथा मुख गुहिका (buccal cavity) का भीतरी भाग इन्हीं ऊतकों से बना होता है।

चित्र : रोमिक या पक्ष्माभिक उपकला गोबलेट कोशिका के साथ

(ड़) ग्रंथिल उपकला (Glandular epithelium) - इनकी कोशिकाएं भी प्राय: स्तम्भाकार (Columnar) या घनाकार (Cubical) होती है। इनसे एक प्रकार का स्त्राव निकलता है जो शरीर के विशिष्ट अंगों मे पहुंचता हैं लार

ग्रंथियां (Salivary Glands) तथा पाचन प्रणाली की कुछ ग्रथियां (Glands of digestive system) इसी प्रकार की कोशिकाओं से बनी होती है।

चित्र : विभिन्न प्रकार के ग्रंथिल उपकला

(च) संवेदी उपकला (Sensory epithelium)

इस प्रकार की ऊतक की कोशिकाओं के एक स्वतंत्र सिरे पर महीन रोम जैसी रचना होती है जो संवेदनाओं को ग्रहण करता है तथा इनका दूसरा सिरा तंत्रिका तंतुओं (Nerve fibrils) द्वारा जुडा होती है। नाक की म्यूकस कला (mucous membrane of nose), कान का भीतरी भाग जिसे आरगन ऑफ कोरटाई कहते है (Organ or corti), आंख की रेटिना (Retina of Eye) तथा जीभ की स्वाद कलिकाएं (Taste buds) आदि इसी प्रकार के ऊतक के बने होते है।

(2) संयुक्त उपकला (Compound Epithelium) - इसमें कोशिकाओं के एक से अधिक पर्त पाये जाते है यह उपकला निम्न प्रकार की होती है -

(क) स्तरित उपकला (Stratified Epithelium)

(ख) कूटस्तरीय उपकला (Pseudostratified epithelium)

(ग) अन्तर्वर्ती उपकला (Transitional Epithelium)

(क) स्तरित उपकला (Stratified epithelium) - इस प्रकार के उपकला में कई पर्ते होती है। सबसे निचला स्तर विभाजित होकर उपरी नये स्तरों का निर्माण करता है जो बाहर की ओर खिसकते रहते हैं। बाहरी स्तर या परत का घर्षण के कारण विनाश होता रहता है। मुख गुहिका (Buccal cavity), योनि (Vagina), नासा गुहा (Nasal cavity), तथा त्वचा की बाह्य त्वचा (Epidermis) इसी प्रकार के ऊतकों बना होता है।

चित्र : स्तरित उपकला

(ख) कूटस्तरीय उपकला (Pseudostratified epithelium) - इनकी कोशिकाएं रूप से व्यवस्थित होती है जिसके कारण इनमें एक से अधिक पर्तों का आभास होता है। इनकी कोशिकाओं मे रोम पाये जाते है। श्वासनली (Larynx) तथा घ्राण कोष (Olfactory lobe) में इसी प्रकार के ऊतक पाये जाते है।

चित्र : कूटस्तरीय उपकला

(ग) अन्तर्वर्ती उपकला (Transitional epithelium) - ये तीन या चार पर्तों में पायी जाती है। ये पतली और लचीली होती हेै। इसकी उपरी सतह बडी और चपटी होती है। मूत्राशय (Urinary bladder), मूत्र मार्ग (Urethra), वृक्क का पेलविश (Pelvis of kidney) इत्यादि इसी प्रकार के ऊतक के बने होते है।

आच्छादक ऊतक

(Epithelial Tissue)

- सामान्य (Simple)
  - (Transitional)
- संयुक्त (Compound)
  - स्तरित (Stratified)
  - कूटस्तरीय (Pseudostratified)
  - अन्तर्वती

शल्की	स्तम्भाकार	घनाकार	रोमिक या पक्षमाभिक	ग्रंथिल	संवेदी
(Squamous)	(Columnar)	(Cubuidal)	(Ciliated)	(Glandular)	(Sensory)

(II) संयोजी या संयोजक ऊतक (Connective tissue) - इस प्रकार के ऊतक शरीर के एक अंग को दूसरे अंग से जोडते है इसलिए इन्हें 'संयाजी ऊतक' (Connnetive tissue) कहते है। ऊतक शरीर में सबसे अधिक मात्रा में पाये जाते है तथा हर प्रकार के अंगों तथा अंगों के बीच में उपस्थित रहते है। इस ऊतक में अन्तराकोशिकीय पदार्थ (Intercelluler substances) की बहुत अधिक मात्रा होती है। जिसे आधारभूत पदार्थ (Ground substance) या मैट्रिक्स (Matrix) कहते है। मैट्रिक्स की संरचना के आधार पर संयोजी ऊतक को चार भागों में बांटा गया है –

(क) सामान्य संयोजी ऊतक (Simple Connective tissue)

(ख) तन्तुमय संयोजी ऊतक (Fibrous connective tissue)

(ग) अस्थि या कंकाल ऊतक (Skeltal Tissue)

(घ) तरल संयोजी ऊतक (Fluid Connective Tissue)

(क) सामान्य संयोजी ऊतक (Simple connective Tissue) - इस प्रकार के ऊतक में मैट्रिक्स की मात्रा अधिक होती है। यह तरल अथवा अर्द्ध तरल रूप में पाया जाता है। यह निम्न प्रकार का होता है-

(i) अन्तरालीय संयोजी ऊतक (Areolar Connective Tissue)

(ii) वसामय या वसीय ऊतक (Adipose Tissue)

(iii) वर्णकी ऊतक (Pigmented Tissue)

(iv) जालमय ऊतक (Reticular tissue)

(i) अन्तरालीय संयोजी ऊतक (Areolar Connective Tissue) - इस प्रकार संयोजी ऊतक शरीर का सबसे विस्तृत भाग बनाता है। यह पतली झिल्लियों के रूप में एक अंग को दूसरे अंग से जोडता है तथा मांसपेशियों की हड्डियों के साथ बंधता है। यह त्वचा को पेशियों से जोडता है। मांसपेशियों के बीच पायी जाने वाली झिल्लियों भी इसी ऊतक की बनी होती है। धमनियां (Arteries), तंत्रिकाएं (Nerves), रक्त वाहिनियां (Blood capillaries) इत्यादि प्रणालिकाएं इसी प्रकार के ऊतक से ढंकी रहती है।

अन्तरालीय संयोजी ऊतक में मैट्रिक्स की मात्रा अधिक होती हे। तथा यह पारदर्शक चिपचिपी एवं अर्द्धतरल जैसी होती है। इसमें तन्तुओं का जाल बिछा रहता है।

अन्तरालीय ऊतक के तन्तु मुख्यत: दो प्रकार के होते है –

(अ) श्वेत कोलैजन तन्तु (White collagen fibres)

(ब) पीले इलास्टिक तन्तु (Yellow elastic fibres)

संयोजी या संयोजक ऊतक

(अ) श्वेत कोलैजन तन्तु (White Collagen Fibres) - ये तन्तु लम्बे एवं शाखाविहीन होते है जो कोलैजन नामक प्रोटीन के बने होते है यह तन्तु सफेद रंग का होता है। इसमें लचीलापन का अभाव होता है। इनका मुख्य कार्य मांसपेशियों को हड्डियों के साथ बांधना है।

चित्र : अंतरालीय संयोजी ऊतक

(ब) पीले इलास्टिक तन्तु (Yellow eleastic Fibres) - ये मुख्यत: इलास्टिन नामक प्रोटीन के बने होते है। जो लचकदार होता है तथा खींचने पर बढता है। इनके तन्तु लचीले, अल्प-पारदर्शक व शाखादार होते है। इनका रंग पीला होता है। इसलिए इन्हें पीत या पीले इलास्टिक तन्तु कहते है। इनके तन्तु खीचने पर लम्बाई में बढते है तथा एक जाल सी रचना बनाते है ये ऊतक खासकर फेंफडे श्वासनली, धमनी इत्यादि में पाये जाते है इलास्टिक गुण के कारण ये तन्तु शरीर के विभिन्न जोडों में पाये जाते है।

(ii) वसामय ऊतक या वसीय ऊतक (Adipose tissue) - ये ऊतक आकार में बडे होते है। ये वसा पिण्डों के रूप में त्वचा के नीचे, आंतों के चारों ओर तथा धमनियों और तंत्रिकाओं के बीच में पाये जाते है। इसकी रचना भी अन्तरालीय संयोजी ऊतक के समान होती है परन्तु इसकी फाइब्रोब्लास्ट कोशिकाओं में वसा की बूंदें होती है। ये वसायुक्त फाइब्रोब्लास्ट ही वसा कोशिकाएं कहलाती है।

वसामय ऊतक को शरीर का भोजन गृह कहा जाता है। यही वसामय ऊतक शरीर में जरूरत पडने पर ऊर्जा उत्पन्न करता है। यह शरीर के कई अंगों की चोटों व दबाव से रक्षा करता है। इसके अलावा ताप नियंत्रण करना, शरीर से ताप को बाहर नहीं निकलने देना इत्यादि कार्य भी करता है।

चित्र : वसामय उतक

(iii) वर्णकी ऊतक (Pigmented tissue) - यह ऊतक अन्तरालीय ऊतक का ही एक रूप है। इस ऊतक के मैट्रिक्स में एक विशेष प्रकार की वर्णक कोशिकाऐं (Pigment cells) पायी जाती है जिसे क्रोमेटोफोर्स (Chromatphores)भी कहा जाता है। ये वर्णक कोशिकाऐं बड़ी एवं शाखान्वित होती हैं। इनके कोशिका द्रव्य में कई सूक्ष्म वर्णक कणिकाऐं (Pigment granules) बिखरी होती है। इन्हीं रंगा कणिकाओं के कारण हमारी त्वचा का रंग भी भिन्न-भिन्न होता है, जैसे गोरा, काला, सांवला, गेंहुआ इत्यादि। यह ऊतक हामरी त्वचा के अन्त:

त्वचा (dermis) भाग में पाया जाता है। वर्णक कोशिकाओं के अलावा इस ऊतक में इलास्टिक तन्तु(elastic fibre) तथा लसीका कोशिकाऐं(Lymphcytes) भी पाये जाते है।

(iv)जालमय ऊतक (Pigmented tissue) -यह ऊतक श्वेत कोलैजन तन्तु से मिलती जुलती है परन्तु इनकी तन्तुत पतली व शाखादार होती है। इन तन्तुओं के साथ-साथ अनियमित आकार की बड़ी तथा शाखान्वित कोशिकाऐं भी मिलती है जिन्हें रेटीक्यूलो एण्डोथीलियल कोशिकाऐं (Reticulo endothelial cells) कहते है। इन कोशिकाओं की शाखाऐं आपस में मिलकर कोशिकीय जाल-सी संरचना बनाते है। प्लीहा (spleen) अस्थि मज्जा(Bone marrow), लसिका ग्रंथि(Lymph glands) इत्यादि इसी प्रकार के ऊतक बने होते है।

चित्र : जालमय ऊतक

(ख) तन्तुमय संयोजीऊतक(Fibrous connective tissue)-इस प्रकार के ऊतक में मैट्रिक्स की मात्रा कम होती है। ये ऊतक भी मुख्यत: दो प्रकार का होता है-

(i) श्वेत तन्तुमय ऊतक(White fibrous tissue) तथा
(ii) पीत तन्तुमय ऊतक(Yellow fibrous tissue)

चित्र: तन्तुमय संयोजी ऊतक

(i) श्वेत तन्तुमय ऊतक (White fibrous tissue)-ये ऊतक श्वेत कोलेजन तन्तुओं का एक गुच्छा होता है जो अस्थियों को मांसपेशियों से मजबूती से बांधे रहता है। कंडरा (Tendon) मुख्यत: इसी प्रकार के ऊतक से बने होते है।

चित्र : श्वेत तन्तुक ऊतक

(iii) पीत या पीले तन्तुमय ऊतक(Yellow fibrous tissue)-ये पीले रंग की इलास्टिक तन्तुओं की शाखादार धागे के रूप में होती है। ये इलास्टिन नामक प्रोटीन की बनी होती है तथा लचकदार होती है एवं हड्डियों को आपस में जोड़ने का कार्य करती है जिसकी वजह से हम विभिन्न अंगों को आसानी से हिला-डुला सकते है।

चित्र-पीले या पीत तन्तुक ऊतक

(ग) कंकाल ऊतक(Skeletal tissue)-कंकाल ऊतक भी एक प्रकार का संयोजी ऊतक है। यह मुख्यत: दो प्रकार का होता है।

(i) उपास्थि(Cartilage)

(ii) अस्थि (Bone)

(i) उपास्थि (Cartilage)- ये ऊतक गुलाबी या श्वेत रंग का लचीला परन्तु कड़ा पदार्थ होता है इसमे भी मैट्रिक्स होती है जो कौन्ड्रिल नामक प्रोटीन की बनी होती है। मैट्रिक्स में कॉन्ड्रेब्लास्ट नामक कोशिका

पायी जाती है। नाक और कान का मुख्य भाग इन्हें उपास्थियों का बना होता है। संरचना के अनुसार उपास्थि भी कई प्रकार के होते है। जैसे-

(अ) हाएलाईन या काचाभ उपास्थि (Hyaline cartilage)

(ब) लचीली उपास्थि (Elastic cartilage)

(स) कैल्सीफाइड उपास्थि (Calcified cartilage)

(द) तन्तुमय उपास्थि (Fibrous cartilage)

(अ) काचाभ उपास्थि (Hyaline cartilage)- इसकी मेट्रिक्स पारदर्शक, साफ तथा हल्के नीले रंग की होती है तथा इसमें तन्तु का अभाव होता है। यह लचीली होती है तथा हाथ पैर के संधि तलों पर पतली ग ि यों (Pads)के रूप में पायी जाती है। इसके अलावा यह हाइएइड (Hyoid)पसलियों (ribs)में भी पायी जाती है।

चित्र: हाएलिन उपास्थि की एक काट(काचाभि उपास्थि)

(ब) लचीली उपास्थि (Elastic cartilage)- यह उपास्थि तन्तुमय उपास्थि की तरह होती है परन्तु इसमें पीले इलास्टिन तन्तु पाये जाते है जो शाखित होते है तथा मैट्रिक्स में एक जाल सी रचना बनाते हैं। यह लचीली होती है। यह नाक के सिरे, कान के पिन्ना (Pinna)तथा ऐपिग्लॉटिस (epiglottis)का कंकाल बनाती है।

चित्र: इलास्टिक उतक (लचीली उपास्थि)

(स) कैल्सीफाइड उपास्थि (Calcified cartilage)- प्रारंभ में तो यह काचाभा उपास्थि(Hyaline cartilage)की तरह होती है परन्तु बाद में कैल्सियम लवण का जमाव हो जाता है जिससे यह अस्थि कठोर हो जाती है अत: इसका लचीलापन खत्म हो जाता है। मेंढ़क की सुप्रास्कैपुला, श्रोणिमेखला, प्युबिस तथा अंस मेखला की अस्थियां कैलसीफाईड उपास्थि की बनी होती है।

(द) तन्तुमय उपास्थि (Fibrous cartilage)- तन्तुमय उपास्थि के मैट्रिक्स में कोशिकाओं के अलावा श्वेत कौलेजन तन्तुओं के गठर (Bundles)पाये जाते है जिससे ये उपास्थि मजबूत हो जाते है। यह अन्तराकशेरूक ग्रंथिया (Intervertebral) में पायी जाती है।

चित्र : फाइब्रोकार्टिलेज(तन्तुमय उपास्थि)

(ii) अस्थि (Bone)- अस्थि अत्यधिक कठोर, सख्त एवं मजबूत संयोजी ऊतक है इस ऊतक में भी मैट्रिक्स पायी जाती है जो ओसिन (Ossein) नाम प्रोटीन की बनी होती है। अस्थि मुख्यत: प्राटीन और

अकार्बनिक पदार्थों के मिलने से बनती है। अकार्बनिक लवण के रूप में मैग्नीशियन तथा कैल्सियम के कार्बोनेट एवं फास्फेट होते है। अस्थित कोशिकाऐं मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं-(अ)ओस्टियोब्लास्ट (Osteoblast)तथा ओस्टियोक्लास्ट (osteoclasts)।

अस्थि मध्य से खोखली होती है जिसे मज्जा गुहा (marrow cavity)कहते है। इस मज्जा गुहा में वसीय ऊतक (Adipose tissue)भरा होता है जिसे अस्थि मज्जा (bone marrow)कहते है। रक्त वाहिनियों की अधिकता से ये लाल रंग की होती हैं इसलिए इसे लाल अस्थि मज्जा (Red bone marrow)कहते हैं। इन्हीं मज्जाओं में इरिथ्रोब्लास्ट (erythroblast)नामक कोशिका पायी जाती है जिनसे रक्त कणिकाओं (Red blood corpuscles)का निर्माण होता है। अस्थि में हैरसियन कैनाल तंत्र (Haversian canal system)पाया जाता है।

चित्र : अस्थि की काट

संरचना के अनुसार अस्थियां भी मुख्यत: दो प्रकार की होती है-

(अ) ठोस अस्थि (Compact bone)

(ब) स्पंजी अस्थि (Spongy bone)

(अ) ठोस अस्थि (Compact bone)- ठोस अस्थि एवं स्पंजी अस्थिर का विस्तृत अध्ययन कंकाल तंत्र में किया गया है।

(ग) तरल संयोजीऊतक(Fluid connective tissue)-इसमें मुख्यत: दो प्रकार के ऊतक है-

(i)रक्त (blood) एवं (ii) लसीका (Lymph)।

(i) रक्त (blood)- रक्त एक तरल संयोजी ऊतक है । ये ऊतक शरीर के विभिन्न भागों से सम्बंधित रहते है। इनका मुख्य कार्य भेज्य पदार्थों, अवशिष्ट पदार्थो तथा गैसों का आवागमन (transportation) करना है। इस ऊतक में मेट्रिक्स (Matrix) तरल दशा में रहता है जिसे प्लाज्मा (Plasma) कहते है। इसी प्लाज्मा में कई प्रकार की कणिकाऐं तथा कोशिकाऐं पायी जाती है। रक्त कोशिकाऐं मुख्यत: दो प्रकार की हाती है- लाल रूधिर कोशिकाऐं (erythrocytes) तथा श्वेत रूधिर कोशिकाऐं (Loucoeytes)

(ii) लसिका (Lymph)-यह एक रूपांतरित तरल ऊतक (modified fluid tissue) है िजामें 94%जल एवं 6% अन्य ठोस पदार्थ पाये जाते है। इसमें मात्र श्वेत रूधिर कोशिका (Lympocytes) ही उपस्थित होता है परन्तु लाल रक्त कोशिका (erythrocytes) तथा प्लेट्लेट्स (Platelets) का पूर्ण अभाव रहता है।

(iii) पेशीय ऊतक (Muscular tissue)- पेशीय ऊतक में फेलने व सिकुड़ने की असाधरण क्षमता होती है । इसी ऊतक के वजह से हम अपने शरीर का संचालन आसानी से कर पाते है जैसे उठने, बैठने, दौड़ने, चलने, इत्यादि।

ये ऊतक शरीर को आकार, गति, व रूप प्रदान करती है।

पेशीय ऊतक में मैट्रिक्स (Matrix)की मात्रा बहुत कम होती है। पेशी कोशिकाऐं लम्बी व संकरी होती है जिसे पेशी तंतु (muscle fibres)भी कहते है।

पेशीय ऊतक (Muscular tissue)को मुख्यत: उनकी रचना व कार्य के आधर पर तीन भागों में बांटा गया है।

(अ) रेखित पेशियां या ऐच्छिक पेशियां (Striped muscle or voluntary muscle)

(ब) अरेखित पेशियां या अनैच्छिक या स्वतन्त्र पेशियां (Unstriped muscle or involuntary muscle)

(स) हृदय पेशियां(Cardiac muscle)

(अ) रेखित पेशियां या ऐच्छिक पेशियां (Striped muscle or voluntary muscles)- ये पेशी कोशिकाऐं लम्बी, पतली, तथा धारीवाली अथवा पट्टीदार होती है इनकी पेशी तन्तु 2 से 4 से.मी. लम्बे तथा बेलनाकार (Cylindrical) होते है। प्रत्येक पेशी तंतु एक मजबूत झिल्ली, जिसे सार्कोलेमा (Sarcolemma) कहते है, से घिरा होता है प्रत्येक तन्तु पर हल्की तथा गहरी रंग की अनुप्रस्थ पट्टियां (Light and dark transverse bands) पायी जाती ह। जो एक ही स्तर (level) पर होती है तथा समान सीध में दिखाई देती है। हल्की पट्टी (Light

band) ऐक्टिन (Actin) तथा गहरी पट्टी माइओसिन (Myosin) नामक प्रोटीन की बनी होती है। इन्हीं पट्टियों के कारण इन पेशियों को रेखित पेशियां (striped or striated muscles) कहते है। ऐसी पेशियां खासकर हमारे हाथ व पांवों में पायी जाती है येपेशियां अस्थियों में कंडरा अर्थात टेन्डन की सहायता से जुड़ी होती है तथा इन्हैं कंकाल पेशियं (skeleton muscles) भी कहते है। रेखित पेशियां (striped muscles) तंत्रिकाओं द्वारा उत्तेजित होने पर सिकुड़ती एवं फैलती है।

चित्र : ऐच्छिक पेशी की लम्बवत् काट
(Longitudinal Section of Striated muscle)

चित्र : ऐच्छिक पेशीय तन्तु
(Voluntary Muscular Fibre)

(ब) अरेखित पेशियां या अनैच्छिक पेशियां या स्वंतंत्र पेंशियां (unstriped or unstriated or involuntary muscles)-इन पेशियो के ऊतकों मे कोई धारी अथवा पत्ती नहीं होती है इनकी पेशी कोशिकाऐं लम्बी, संकरी तथा तर्कु की आकार की (spindle shaped) होती है। तथा मध्य में केन्द्रक (nucleus) होता है जिसके चारों और सर्कोप्लाज्म (sarcoplasm) होता है। इसमें लम्बे तथा महीन पेशी तन्तु उपस्थित होते है। जिसे मायोफाइबिल्स (Myofibrils) कहते है। इन्हीं पेशी तन्तुकों के कारण कोशिकाओं में संकुचन (contractionand relaxation) होता है। परन्तु ये पेशियां हमारी इच्छानुकूल कार्य नहीं करती हैं इसलिए इसे अनैच्छिक पेशियां कहते है। इनके सूत्र दोनों सिरों पर नुकीले होते है। ये पेशियां रक्त परिवहन तंत्र (Bloodcirculatory system) मूत्राशय (Urinary bladder) पाचन प्रणाली (Gastro intestinal tract) इत्यादि में पायी जाती है।

चित्र: अनैचिछक पेशीय तन्तु

(Involuntary Muscular Fibre)

(स) हृदय पेशियां (Cardiac muscles)-इस प्रकार की पेशियां हृदय की मांसल दीवार को बनाती है। तथा अनैच्छिक होती है। इनकी तन्तु लम्बी, बेलनाकार, (cylindrical) तथा शाखाकार होती हैं। इनकी तंतु में भी रेखित पेशियों की भांति छोटी-छोटीधारियों पायी जाती है। शाखादार होने के कारण इनके तन्तु जाल सी संरचना बनाते है। पत्येक तन्तु दूसरे तन्तुओं से पट्टियों (intercalated discs) द्वारा अलग रहेते है। हृदय पेशियां अनवरत रूप से संकुचन करती है जिससे हृदय में गति (Heart beat) होती है।

चित्र: हार्दिक पेशी तन्तु

(Cardiac Muscular Fibre)

(IV) तंत्रिका या तंत्रिकीय ऊतक (Nervous tissue) -ये ऊतक सारे शरीर में बिजली के तारों की भांति फेले रहते है। इन ऊतकों को चेत्ता ऊतक भी कहते है। क्योकि ये चेतनाओ ंको प्रारम्भ कर शरीर के विभिन्न भागों में ले जाते हैं। इन्हीं के सुचारू रूप से कार्य करने पर हमारे समझने, सोचने तथा तर्क करने की शक्ति निर्भर करती है। इन ऊतक की कोशिकाऐं एक विशेष प्रकार की कोशिकाऐं बनी होती है। जिसे तंत्रिका कोशिका अथवा न्यूरॉन्स (nerve cells or neurons) कहते है ंै। ये कोशिकाऐं मुख्यत: मस्तिष्क (brain) तथा मेरू रज्जु (spinal cord) में होती है जिनसे धागे के समान कई शाखाऐं निकलती है। इन कोशिकाओं की एक शाखा संवाद ग्रहण करती है जिसे डेन्ड्रान (Dendron) कहते है तथा दूसरी शाखा इसे बाहर निकाल देती है जिसे एक्सॉन (Axon) कहते है।

अन्य कोशिकाओं की अपेक्षा तंत्रिका कोशिकाओं में संवाहकता(conductivity) तथा उत्तेजनशीलता (stimulant) का गुण सबसे अधिक होता है। तंत्रिका ऊतक में निम्नलिखित रचनाऐं होती है-

(1) न्यूरॉन्स (Neurons) (2) तंत्रिका तन्तु (nerve fibre) तथा (3) न्यूरोग्लिया (neuralglia)

तंत्रिका कोशिका या न्यूरॉन की संरचना (structure of nerve cell or neuron)-तंत्रिका कोशिका या न्यूरॉन तंत्रिका तंत्र की सबसे बड़ी संरचनात्मक एवं कार्यात्मक (structural andfunctional) इकाई है। प्रत्येक न्यूरॉन मुख्यत: दो भागों मे बांटा होता है।

(i) कोशिकाकाय या साइटॉन (cell body or cyton) (ii) कोशिका प्रवर्ध (cell process)

(अ) कोशिकाकाय या साइटॉन (cell body or cyton)- यह न्यूरोन का मुख्य केन्द्रीय भाग है। इसमें एक बड़ा केन्द्रक पाया जाता है। न्यूरोप्लाज्म में भूरे रंग के निसल कण (Nissels granules) त्था तंत्रिका तंतुक (neurofibrils) पाये जाते है। यह तंत्रिका तंतुक सेंवेंगों को प्रेषित करने का कार्य करते है। कुछ तंत्रिका तंतुक (Neurofibrils) एस्कॉन में भी फैले रहते है।

(ब) कोशिका प्रवर्ध (cell process) - साइटॉन (cyton) से कई शाखाऐं निकलती है जिन्हें कोशिका प्रवर्ध कहते है। ये कोशिका प्रवर्ध मुख्यत: दो प्रकारके होतै है-(i) ऐस्कॉन (Axon) तथा (ii)डेन्ड्रॉन (Dendron) ।

(i) ऐक्सॉन (Axon) - साईटॉन से निकल कई प्रर्वधों में से एक प्रवर्ध अपेक्षाकृत लम्बा मोटा बेलनाकार एवं समान व्यास का होता है जिसे ऐक्सॉन (Axon) कहते है। अधिकांशत: ऐक्सॉन अशाखित होता है परन्तु कहीं कहीं पर इससे पाश्र्व शाखाऐं निकलती है जिन्हैं कोलेटरल तन्तु (collateral fibres) कहते है। कोलेटरल तन्तु (collateral fibres) तथा एक्सॉन के स्वतंत्र सिरे भी शाखान्वित होते हैं जिसे ऐक्सॉन्न एडिंगस (Axon endings) कहते हें। ये सिरे घुंडीदार(knobbed) होते है, जिन्हैं बटन (buttens) कहते हैं। बहुत से ऐक्सॉन मिलकर तंत्रिका तन्तु का निर्माण करतते है। ऐक्सॉन में कोशिकद्रव्य उपस्थित होता है जिसे एक्सोप्लाज्म (Axoplasm) कहते है। तथा इसमें न्यूरोफाइब्रिल्स भी उपस्थित होता है। ऐक्सॉन (Axon) का मुख्य कार्य संवदेनाओं को बाहर निकालना है।

चित्र- बहुध्रवीय न्यरॉन्स और मेड्लेटेड तन्तु

(ii) डेन्ड्रान्स (Dendrons)- साइटॉन का कोशिकाद्रव्य एक या एक से अधिक प्रर्वधों के रूप मे बाहर निकला रहता है। ये प्रवर्ध ही डेन्ड्रोन्स कहलाते है। ये ऐक्सॉन से छोटे होते हैं तथा आधार भाग से ही कई शाखाओं में बटे होते है। इनकी पतली शाखाओं को ही डेन्ड्राइटस (dendrites) कहते है। इसमें निसल कण (nissels granuales) तथा तंत्रिका तंतुक (neurofibrils) दोनों ही पाये जाते है। इसका मुख्य कार्य संवेदनाओं को ग्रहण करना है।

तंत्रिका तंत्र में न्यूरॉन्स लड़ी के समान एक के बाद एक इस तर विन्यासित (arranged) होते है कि एक न्यूरॉन का ऐक्सॉन अपने से पिछले न्यूरॉन के साथ संबंधित हो जाता है इनका यह सम्बन्ध सूत्र युग्मन या सिनेप्सिस (synapsis) कहलाता है। इपने सूत्र युग्मन द्वारा डेन्ड्राइटस एक ऐक्सॉन से दूसरे एक्सोन तक संवेदनाओं को ले जाता है। इसलिए हमेशा ही पहले उध्दीपन (stimuli) डेन्ड्राइट्स में

से होकर न्यूरॉन में पंहुचता है। तथा न्यूरॉन में तंत्रिका संवेग (nervous impulse) ऐक्सॉन में पहुंचता है। जहां यह संवेग दूसरे न्यूरॉन्स के डेन्ड्राइटस को प्रभा ावित अथवा प्रेषित करता है। न्यूरॉन(Neuron) को प्रवर्धों की संख्या के आधार पर इन्हैं निम्न भागों में बांटा गया है।

(i) अध्रुवीय न्यूरॉन्स (Apolar neurons)- इसमें काई प्रवर्ध नहीं होता है।

(ii) एक धुरवीय न्यूरॉन्स (Unipolar neurons) - इन तंत्रिका कोशिकाओं में केवल एक ऐक्सॉन हीं उपस्थित होता है। परन्तु डेन्ड्रान का अभाव होता है। इस प्रकार की तंत्रिका कोशिकऐं सेरिब्रोस्पाइनल गैंग्लिया (cerebrospinal ganglia) में मिलती है। से T आकार की होती है।

(iii) द्विध्रुवीय न्यूरॉन्स (Uniplar neurons)- इन तंत्रिका कोशिकाओं के दोनों सिरो से एक-एक प्रवर्ध निकला होता है जिसमें से एक प्रवर्ध लम्बा होता है तथा दूसरा छोटा। ये दोनों प्रवर्ध एक ऐक्सॉन तथा दूसरा डेन्ड्रान होते है। उदाहरणस्वरूप ये कोशिकाऐं नेत्र के रेटिना तथा आठवीं कपाल तंत्रिकाओं के स्पाइरल एवं वेस्टीवूलर गैंगलिया (vestibular ganglia) में उपस्थित होता है।

चित्र: (A) द्विध्रुवीय न्यूरॉन (B) एक ध्रुवीय न्यूरॉन

(iv) कूट एकध्रुवीय न्यूरॉन्स (Pseudo unipolar neurons) -इन तंत्रिका कोशिकाओं में एक ही जगह से दो प्रवर्ध निकलते है, उदाहरण -स्पाइनल गैंगलिया (spinal ganglia)।

(v) बहुध्रवीय न्यूरॉन्स (Multipolar neurons) -इन तंत्रिका कोशिकाओं में एक ऐक्सॉन तथा कई डेन्ड्रोन उपस्थित होते है। ये कोशिकाऐं मस्तिष्क एवं स्पाईनल कोर्ड (Brain and spinal cord) में पाई जाती है।

(2) तंत्रिका तंतु (Nerve fibres) - तंत्रिका तन्तु में ही ऐक्सॉन तथा उनको आच्छादित करने वाले आवरण होते है। इसी में न्यूरोप्लाज्म का बना केन्द्रीय अक्ष (Central core) होता है जिसे एक्सोप्लाज्म कहते है। यह एक्सोप्लाज्म (Exoplasm) न्यूरीलेमा (Neurilemma) अथवा एक्सीलेमा (axilemma) नामक पतले आवरण द्वारा ढका होता है तंत्रिका तन्तु (Nerve fibrle) मुख्यत: दो प्रकार का होता है। :

(अ) मेड्यूलेटेड (Medullated) या माइलीनेटेड (Myelinated) और (ब) नॉमेडयूलेटेड (non-myelinated)।

चित्र: अ: मायलिनेटेड न्यूरॉन चित्र: ब: नॉन मायलिनेटेड न्यूरॉन

(अ) मेड्यूलेटेड तंत्रिका तंतु (Medullated nerve fibre)-जब तंत्रिका तंतुओं में एक्सौप्लाज्म तथा एक्सिलेमा के बीच में माईलीन आवरण (myelin sheath) उपस्थित होता है तो इसे मेड्यूलेटेड तंत्रिका तंतु या माईलेटेड तंत्रिका तंतु कहते है। ये माइलीन आवरण (myelin sheath)चमकदार सफेद रंग का होता है जिसमें लिपिड्य (lipids) की सान्द्रता होती है। यह माइलीन आवरण विसांहक आवरण (Insulated covering) की तरह कार्य करता है तथा यह संवहन की गति को बढा देता है। यह आवरण ऐक्सॉन की पूर्ण लम्बाई पर लगातार स्तर नहीं बनाता बल्कि लगभग प्रत्येक 1 मिलीमीटर की दूरी पर टूटा होता है। इन्हीं टूटे हुए स्थानों पर न्यूरोलेमा भीतर की और धंसकर ऐक्सॉन के सम्पर्क में आता है जिससे तंत्रिका तंतु थोड़ी थोड़ी दूर पर संकुचित होती है। इसी संकुचन को रेनवियर की नोड (Nde of ranvier) कहते है। इन दो नोडों के बीच ाले तन्तु के भाग को इन्टरनोड (Internode) कहते है।

(ब) नॉन मेड्यूलेटेड तंत्रिका तन्तु (non-medullated nerve fibre)-जब तंत्रिका तंतुओं के एक्साप्लाज्म तथा एक्सिलेमा के बीच में श्वान कोशिकाओं (swancells) के न्यूक्लीयस (nucleus) होते है तो उन्हें नॉन मेड्यूलेटेड या नॉन माइलीनेटेड (non-myelinated) तंत्रिका तंतु कहते है।

उद्दीपनों(stimuli) के ग्रहण करने तथा पहुंचानेके आधार पर तंत्रिका तन्तु को पुन: दो भागों में विभक्त किया गया है-

(i) अभिवाही तंत्रिका तन्तु (Afferent nerve fibres)- ये तंत्रिका तंतु संवेदी (sensory) प्रकृति के होते है। इन तंतुओं में उद्दीपन संवेदी अंगों से मस्तिष्क तथा स्पाइनल कॉर्ड को ले जाये जाते है। शरीर के विभिन्न संवेदी अंग जैसे: आंख, नाक, त्वचा, कान इत्यादि द्वारा संवेदनाऐं मस्तिष्क तक इन्हीं तन्तुओं के द्वारा पहुंचायी जाती है। ये दैहिक संवेदी (somatic sensory) तथा विसरल संवेदी (visceral sensory) प्रकार के होते है।

(ii) अपवाही तंत्रिका तन्तु (Efferent nerve fibres)- ये तंत्रिका तन्तु मस्तिष्क अथवा स्पाइनल कॉर्ड से प्राप्त संवेगों को प्रभावी अंगो तक पहुंचाने का कार्य करते है तथा इनका स्वभाव प्रेरक (motor) होता है। ये दैहिक प्रेरक (smatic motor) तथा विसरल प्रेरक (viscelral motor) प्रकार के होते है।

(3) न्यूरोग्लिया (Neurgloea)- केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र में तंत्रिका कोशिकाओं के सम्पर्क में एक विशेष प्रकार की कोशिकाऐं पायी जाती हहै। जिसे न्यरोग्लिया कोशिकाऐं (Neurogloea cells) कहते है। इनका कार्य मस्तिष्क गुहाओं (ventricles) को आस्तारित करना है। इसके अलावा ये परिधीय तंत्रिका तंत्र की श्वान कोशिकाओं तथा तंत्रिका कोशिकाओं के साथ पायी जाती है

1.5 सांराश (summary)

ऊतक
आच्छादक
संयोजी
पेशीय
तंत्रिका
साधारण
संयुक्त
तन्तुमय
सामान्य
कंकाल
तरल
रेखित
अरेखित
हृदय
कोशिकाकाय
न्यूरान
तन्त्रिका तन्तु
न्यूरोग्लिया
शल्की
स्तम्भाकार
रोमिक
सांवेदिक
घनाकार
स्तरित
कूटस्तरित
ट्रांजिशनल
श्वेत कोलेजन
पीत इलास्टिक
अंतरालीय
वसीय
जालमय
वर्णकी
अस्थि
ठोस
स्पंजी
उपास्थि
हायलिन
लचीली
कैल्सीफाइड
तन्तुमय
रक्त
लसिका
अध्रुवीय
एकध्रुवीय
द्विध्रुवीय
बहुध्रुवीय
मेड्यूलेटेड
नॉन मेड्यूलेटेड

1.6 प्रश्न

1. कोशिका से आप क्या समझते है? इसकी संरचना को चित्र सहित समझाइये।

2. कोशिका की संरचना एवं कार्यों को लिखें।

3. कोशिका क्या है? 'कोशिका शरीर की जीवित इकाई है।' इस कथन की पुष्टि करें।

4. कोशिकांग पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

5. संक्षिप्त टिप्पणी लिखें -

(क) माइटोकॉन्ड्रिया (ख) न्यूक्लियस (ग) क्रोमोसोम

(घ) जीवद्रव्य (ड) अन्त: प्रद्रव्यी जालिका (च) कोशिका द्रव्य

6. कोशिका में 'केन्द्रक' का क्या महत्व है? केन्द्रक की रचना समझाएं?

7. ऊतक किसे कहते है? इसके कितने भेद है? उदाहरण सहित उनके नाम लिखें।

8. शरीर में उपस्थित विभिन्न प्रकार के ऊतकों का नाम लिखें। आच्छादित ऊतक का वर्णन करो।

9. संयोजी ऊतक की रचना एवं उनके विभिन्न प्रकारों का विस्तृत वर्णन करें?

10. तंत्रिका ऊतकों की रचना व कार्य लिखें।

11. संक्षिप्त टिप्पणियों लिखें-

(i) तांत्रिक ऊतक

(ii) अस्थि ऊतक

(iii) रक्त ऊतक

(iv) उपास्थि ऊतक

(v) संयोजी ऊतक

(vi) ऐच्छिक एवं अनैच्छिक पेशी

(vii) हृदय पेशी या हृत्पेशी

(viii) ऐस्कॉन एवं डेन्ड्राइट्स

12. पेशी से आप क्या समझते है? ये कितने प्रकार की होती है? उदाहरण देकर समझायें।

13. मानव शरीर में पेशी का महत्व है? पेशियों के कार्य का विस्तृत वर्णन करें।

14. प्रतिवर्त क्रिया किसे कहते है। विस्तारपूर्वक वर्णन करें

15. ऐच्छिक तथा अनैच्छिक पेशियों में क्या अंतर है? लिखें।
16. शरीर में पायी जाने वाली विभिन्न पेशियों के बारे में संक्षिप्त में वर्णन करें।
17. पेशियां शरी के रासायनिक कारखानें है। इस कथन की पुष्टि करें।
18. ऐच्छिक पेशियों एवं हृदय पेशी में क्या अंतर है? वर्णन करें।
19. संक्षिप्त टिप्पणी लिखें-
    (i) पेशियों की कसावट
    (ii) पेशियों के प्रकार
    (iii) पेशीय समभाव
    (iv) हृदय पेशी
    (v) अनैच्छिक पेशी
    (vi) ऐच्छिक पेशी
    (vii) वक्ष की पेशीयां
    (viii) पेशियों का महत्व

1.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. अर्थर सी. गुयटन एण्ड जान एडवर्ड हाल (2006), ट ेक्सटब ुक आॅफ मेडिकल फीजियोलॅजी, फ्लोरिडा, अमेरिका, एल्जेवियर स्टैंडर्डस

2. सुरिन्दर एच सिंह और कृष्ण गर्ग (2008), एनाटाॅमी, एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर नर्सेज और एलाॅइड हेल्थ सांइसेज, नई दिल्ली, सीबीएस पब्लिशर्स

3. शिवरामकृष्णन एस. (2006), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर फीजिकल एजुकेशन, नई दिल्ली, फ्रेंड्स पब्लिशर्स

4. अन्ने वाॅ और एल्सन ग्राउंट (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी इन हेल्थ एण्ड वेलनेस, इलाहाबाद, चर्चिल लिविंगस्टोन

5. क्लार्क राॅबर्ट के. (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी - अंदरस्टैंडिंग द ह्यूमन बाॅडी, सडरी, यूर्नाइ टेड स्टेट्स, जाॅनस एण्ड बारटियट

6. श्री कृष्ण (1985), नोट्स आॅन स्ट्रक्चर एण्ड फंक्शन्स आॅफ ह्यूमन बाॅडी एंड इफेक्ट्स आॅफ योगिक प्रेक्टिसेज इन इट, मुंबई र् आइ .सी.वाई.एच सी. कैवल्यधाम

7. दत्ता रे (2001), योगिक एक्सरसाईजेज, नई दिल्लीः जेपी ब्रदर्स

8. शीर्ले टेलेस (2006), ए गिलम्पस आॅफ द ह्यूमन, बंगलोरः स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन

9. लेस्ली केमिनोफ (2007), योग एनाटामी, कैम्पेनः ह्यूमन कांइ नेटिक्स

10. पीटर आई विलियम्स और रोगर वास्वी (1988), ग्रेज एनाटॅमी, एडीनबर्गः चर्चिल लिविंगस्टोन

11. एवीलीन ब् पीएर्स (1997), एनाटामी एंड फीजियोलाजी फार नर्सेज, नई दिल्लीःजेपी ब्रदर्स

12. गेरे एम.एम. (2003), एनाटॅमी एण्ड फीजियोलॅजी फॅर योगिक पै्रक्टिसेज, लुनावालाः काम्हान प्रकाशन

13. शरीर- रचना विज्ञान एवं शरीर-क्रिया विज्ञान (2003), श्री नन्दन बंसल, जेपी ब्रदर्सः नई दिल्ली

इकाई - 2

रक्तः संगठन एवं कार्य

इकाई की रूपरेखा

2.0 उदेश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 रक्त कोशिका की संरचना एवं अवयव

2.2.1 रक्त का संगठन एवं आयतन

2.2.2 रक्त कोशिका की संरचना

2.2.3 लाल रक्त कण के विकास चरण

2.2.4 लाल रक्त कब का उत्पादन

2.3 हीमोग्लोबिन

2.4 रक्त समूह

2.5 रक्त का जमना

2.6 रक्त का कार्य

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 प्रश्न

2.10 संदर्भ

2.0 उदेश्य

इस इकाई से रक्त के कार्य के बारे मे समझेंगेः-

- रक्त कोशिका की शरीर में क्या भूमिका होती है।
- रक्त कोशिका की संरचना के बारे पता चलेगा।
- रक्त समूहों का ज्ञान होगा।
- रक्त से होने वाले विकारों के बारे में पता चलेगा।
- रक्त अवयवों तथा कार्यो का ज्ञान होगा।

2.1 प्रस्तावना

जैसा की ज्ञात है कि रक्त शरीर का एक अवयव है तथा यह शरीर में केवल एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा शरीर के एक भाग से दुसरे भाग का पदार्थ इधर से उधर ले जाने में सहायक होता है तथा इसे द्रव संयोजी ऊतक के नाम से भी जाना जाता है।

इस इकाई में रक्त कैसे बनता है, इसके क्या कार्य होते है तथा इसकों कौन से कारक प्रभावित करते है, का ज्ञान होगा। साथ ही यह भी की आहार में ऐसे कौन से पोषक तत्व होते है, जो कण बनाने में मदद करते है। रक्त द्वारा किस प्रकार आॅक्सीजन विभिन्न उत्तकों तक पहुंचाने में सहायक होती है। रक्त का शरीर में विशेष कार्य होता है, तथा शरीर में रक्त की कमी से ऐनीमिया नामक रोग दिखाई देता है।

रक्त कोशिकाओं का निर्माण शरीर में अस्थि मज्जा द्वारा सम्पन्न होता है। लाल रक्त कण को इरीथ्रोसाइट्स भी कहते है।

मानव शरीर में इरीथ्रोसाइटस का निर्माण की प्रक्रिया को इरीथ्रोपोइसीस, कहते है। स्टेम सेल को परिपक्व इरीथ्रोसाइटस में विकसित करने का कार्य सात दिनों में होता है तथा ये परिपक्व कोशिकाऐं, रक्त कोशिकाओं में **100** से **120** दिन (**80** से **90** दिन शिशुओं में) जीवित रहती है। गंभीर बीमारियों में यह और कम हो जाती है तथा रक्त चढ़ाना पड़ता है, स्वस्थ रखने हेतु।

2.2 रक्त कोशिका की संरचना एवं अवयव

रक्त एक लाल रंग का तरल पदार्थ होता है, जो रक्त नलिका ;ठसववक अमेेमजेद्ध से पूरे शरीर में प्रवाहित होता है। रक्त तीन प्रकार की कोशिका से बना रहता है। जिसका घनत्व अलग-अलग अनुपात में होता है। पूर्ण रक्त का विशिष्ट गुरूत्व **1.050** से **1.060** रहता है, यह गाढ़ा लाल द्रव पदार्थ जो अपरदर्शी तथा हल्का सा क्षारीय होता है। इसका पी.एच.**(PH)7.4** होता है।

अतः रक्त के दो भाग होते है।

1. प्लाज्मा जो आन्तरिक तरल पदार्थ होता है।

2. कोशिकीय भाग के तीन प्रकार होते है।

a. लाल रक्त कोशिका

b. सफेद रक्त कोशिका

c. प्लेटलेट्स

यहां यह ज्ञात हो की रक्त में करीब **55** प्रतिशत प्लाज्मा तथा बाकी **45** प्रतिशत कोशिकाओं का होता है। अतः रक्त के चार अवयव होते है, जिनका अलग-अलग कार्य शरीर के अंदर समपादित होता है- प्लाज्मा, लाल रक्त कण, सफेद रक्त कण तथा प्लेटलेटस्। ये आवश्यकतानुसार अलग अलग भी मानव शरीर में दिये जाते है, जैसे लीवर की बीमारी में प्लाज्मा अलग से दिया जाता है, डेगू बुखार में प्लेटलेटस् कम हो जाते है, तो अलग से प्लेटलेटस् दिये जाते है। रक्त प्लाज्मा में **90-92** प्रतिशत पानी रहता है।

2.2.1 रक्त का संगठन एवं आयतन

रक्त का संगठन प्लाज्मा, कोशिका, ठोस पदार्थ, पानी तथा कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थो से मिलकर होता है। रक्त में कुछ अप्रोटिन नाइट्रोजनिक पदार्थ भी होते है, जैसे यूरिया, यूरिक अम्ल, जैनथिन, हाइपोजनाथीन, क्रीऐटिन, क्रीऐटीनिन, अमोनिया, अमीनोअम्ल आदि।

रक्त का संगठन (प्रतिशत में)

अ. कोशिका (**45** प्रतिशत)	-	**1.**	लाल रक्त कण (इरीथ्रोसाइट्स)
		2.	सफेदरक्त कण (ल्यूकोसाइट्स)
		3.	प्लेटलेट्स
ब. प्लाज्मा (**55** प्रतिशत)	-	**1.**	पानी **92** प्रतिशत
		2.	ठोस **8** एवं **9** प्रतिशत
ठोस पदार्थ	-	**1.**	अकार्बनिक ठोस **9** प्रतिशत
			सोडियम
			पोटेशियम
			कैल्शियम
			मैगनीशियम
			फोसफोरस्
			लोइ लवण

कापर

2. कार्बनिक ठोस

प्रोटीन **75** प्रतिशत

ऐल्बूसिन

ग्लोबलिन

फाइब्रीनोजीन

प्रोथ्रोमबीन

हमारे शरीर में रक्त का सामान्य आयतन **7.8** से **8** मिलीलीटर/ किलोग्राम शरीर भार के अनुपात में होता है या **2.5** से **4** लीटर (औसत **3.3** लीटर) प्रति स्केयर मीटर शरीर की सतह के अनुसार होता है। उदाहरण के तौर पर एक सत्तर किलों वजन वाले व्यक्ति के शरीर में **7** से **5** लीटर रक्त प्रवाहित होता है।

सफेद रक्त कण को ल्यूकोसाइट्स भी कहते है। यह प्रतिरोध क्षमता बनाने का कार्य करता है। ये भी अस्थि मज्जा में निर्मित होते है तथा तीन से चार दिन तक मानव शरीर में जीवित होते है। शरीर के अंदर ज्यादा संख्या में सफेद रक्त कण का होना बीमारी का संकेत देता है। करीब पांच प्रकार के सफेद रक्त कण होते है-

1. न्यूट्रोफिलस् .

2. लिम्पोसाइटस् .

3. इसनोफिलस् -

4. मोनोसाइट्स .

5. बासोफिलस् .

सफेद रक्त कण, ये गोलाकार, अण्डाकार आदि आकारों में होते है, इनके बीच में गढ़ा द्रव होता है। इनके विभिन्न आकार होते है तथा कभी-कभी कुछ आकार विहिन भी होते है, इनमें कोई रंग नही होता है।

प्लेटलेटस् को थ्रामबोसाइट्स भी कहते है। ये रक्त को जमाने मे सहायता करते है।

2.2.2 रक्त कोशिका की संरचना

सामान्यतः लाल रक्त कण का आकार गोलाकार अर्धगोलाकार होता है। यह भी ज्ञात रहे की लाल रक्त कण समय-समय पर अपना आकार बदलती रहती है, क्योकि इनकों विभिन्न रक्त वाहिनीयों में से गुजरना होता है।

लाल रक्त कण की गणनाः-

लाल रक्त फव की संख्या आयु के साथ तथा विभिन्न सतही क्षेत्रों के अनुसार बदलता रहता है, इसके साथ यह भी है की लाल रक्त कण की संख्या महिला एवं पुरूष मं ेअलगअलग होती है।पुरूषों में लाल रक्त कणों की संख्या:- **5.5** मिलीयन/ क्यूलिक होती है।महिलाओं में लाल रक्त कणों की संख्या:- **4.5** से **5.5** मिलीयन/ क्यूबिक होता है।

2.2.3 लाल रक्त कण के विकास चरण

लाल रक्त शरीर के अंदर निर्मित होता है और यह शरीर के विभिन्न क्षेत्रों से उत्पादित होता है। भूणावस्था के दौरान लाल कण प्रांरिम्भक कुछ सप्ताह में अंडे के पीले भाग से उत्पादित होते है। गर्भावस्था के मध्याह के दौरान यकृत, प्लीहा में निर्मित होते है तथा गर्भावस्था के आखिरी मे तथा शिशु के जन्म के बाद लाल रक्त कण का निर्माण अस्थि मज्जा में होता है। तथा पांच साल की उम्र अस्थि मज्जा सभी हड्डियों से लाल रक्त कण का निर्माण करती है। बीस साल की आयु के पश्चात् लाल रक्त कव हड्डियों की झिल्ली वाले, भाग पसलियों तथा मरूदड़ से निर्मित होता है। हड्डियों में लाल रक्त कण हिमोपोयटिक स्टेम सेल में बनता है-

लाल रक्त कण के विकास चरण

हीमोसायटोब्लास्ट

(एण्डोथीलीयल कौशिका)

↓

प्रोइरी थ्रोब्लास्ट

(मेगालोब्लास्ट)

↓

प्रारंभिक नारमोब्लास्ट

(प्रारंभिक इरोथोब्लास्ट)

↓

इंटरमिडीयट नारमोब्लास्ट

(लेट इर्राथ्रोब्लास्ट)

↓

लेट नारलोब्लास्ट

(नारमोब्लास्ट)

↓

रेटीक्यूलोसाइट

↓

नार्मल इरीथ्रोसाइट

लाल रक्त कण की जीवन अवधि करीब **120** दिन होती है।

2.2.4 लाल रक्त कव का उत्पादन

इरीथ्रोपोइटीन नामक हारमोन लाल रक्त कव के निर्माण के लिए जिम्मेदार होता है। लाल रक्त कण बनने की प्रक्रिया को इरीथ्रोपोइसिस कहते है। इसका निर्माण स्थल गुर्दा होता है। खासतौर पर आंतरिक कीरटेक्स तथा बाह् मेडूलर इरीथ्रोपोइटीन हार्रमोन ग्लाइको प्रोटीन हारमोन होता है। गर्भावस्था में भूण के यकृत में यह हारर्मोन होता है।

इरीथ्रोपोइटिन स्टेम कोशिका से क्रियाशील होकर प्रोइरीथीब्लास्ट को अलग करने का कार्य करते है। सामान्यतः प्रोइरीथ्रोब्लास्ट से परिपक्व नारमोब्लास्ट होने की अवस्था को चार दिन लगते है, जिसमें कोशिका का विभाजन तीन चार बार होता है। इस अवधि में केन्द्रक का आकार छोटा हो जाता है तथा हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ जाती है। आखिरी विभाजन नारमोब्लास्ट में से केन्द्रक खत्म हो जाता है तथा रेटीक्यूलोसाइट का निर्माण होता है, जो हड्डी में तीन दिन तक रहता है। उसके बाद रक्त संचारण में आता है,जो चैबीस घंटे रहता है तथा परिपक्व लाल रक्त कणों का निर्माण होता है।

2.3 हीमोग्लोबीन

यह लाल रंग देने वाला तत्व होता है, जो क्रोमोप्रोटीन कहलाता है तथा दो भागों में उपलब्ध होता है।

1. ग्लोबीन यह प्रोटीन होता है, जिसका **96** प्रतिशत रक्त में होता है।

2. हीम जो लोह लवण से बना होता है, जिसका **4** प्रतिशत रक्त मे होता है।हीमोग्लोबीन- में करीब **3** ग्राम लोहा होता है। रक्त में हीमोग्लोबीन महिला एवं पुरूष मेंअलग-अलग होता है। प्रति मिलीग्राम।

महिला में **11** से **12** मिलीग्राम / **100** मिलीलीटर रक्त।

पुरूषों में **12** से **16** मिलीग्राम / **100** मिलीलीटर रक्त।

हीमोग्लोबीन आक्सीजन को फेफड़ों से उतकों तक पहुचाता है तथा कार्बन डाइआक्साइड का उतकों से फेफड़ो तक पहुंचाता है। रक्त के.पी.एच. को बनाये रखता है। रक्त मे हीमोग्लोबीन की कमी से एनीमिया नामक बीमारी हो जाती है। जिसके निम्न कारण होते है या तो अत्यधिक तेजी से लाल रक्त कण की हानि या लाल रक्त कण के उत्पादन का धीमा होना'' मलेरिया रोग में भी लाल रक्त कण की क्षमता दिखाई देती है। अस्थिमज्जा के कार्यो में शिथिलता का आ जाना।

2.4 रक्त समूह

रक्त में ऐंटीजिनस् होते है जो ग्लाइकोलिपिड या ग्लाइकोप्रोटिन के बने होते है। कोशिका में जिस प्रकार के एं ेटीजिनस् प्राप्त होते है, उसी के अनुसार रक्त को विभिन्न समूही में बांटा जाता है। रक्त को एक शरीर से दुसरे शरीर ट्रांसफर में करने की क्रिया में एंटीजिनस् का समूह काम आता है, जो दो प्रकार का है।

1.रक्त समूह - इसमें एंटीजिनस लाल रक्त कोशिका की सतह पर होते है। इनमें एंटीबांडी के साथ बांधने की क्षमता हाती है और इसीलिए इन्हे ऐग्लूटीनोजिनस् कहते है, जिनका प्रतिशत विभिन्न रक्त के समूह मे निम्न होता है।

समूह	प्रतिशत
व्	**47**
।	**41**
ठ	**9**
।ठ	**3**

जब । या ठ दोनों ही रक्त मे नही होते है तो रक्त समूह व् होता है तथा जब केवल ठ होता है तब रक्त समूह ठ होता है, और जब केवल ।हहसनजपदवहमद होता है तो रक्त समूह । होता है जब दोनो तथा । तथा ठ होता है, तो रक्त समूह ।ठ होता है। अतः रक्त देने के पहले रक्त समूह की जांच आवश्यक होती है जिससे देने वाले तथा रक्त लेने वाले का समूह प्रकार मेच करना आवश्यक होता है।

2ण् त्ी रक्त समूह प्रणालीः-

त्ी एंटीजीन पोसीटिव तथा नेगेटिन दोनो प्रकार के होते है। करीब छः प्रकार के त्भ् एंटीजीन होते है, जिसे त्ी ंिबजवत कहा जाता है। ज्यादातर टाइप ''डी'' एंटीजीन लोगों में पाया जाता है अतः जिनमें

इस प्रकार का एंटीजिन होता है वो त्ीजअम कहलाता है। जिनमें टाइप डी एटीजिन नही होता है वो त्ी. अम कहलाता है।

विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात यह है कि रक्त समूह ''व्'' तथा ा त्ी.अम रक्त समूह किसी भी समूह के शरीर में ट्रांसफर किये जा सकते है। अतः इस समूह के लोगो को न्दपअमतेंस क्वदवत भी कहा जाता है।

2.5 रक्त का जमना

जब रक्त बाहर निकलता है शरीर से तो पहले कुछ मिनट पतला रहता है तथा थोड़ी देर बाद अर्धतरल जैली जैसा हो जाता है।इस प्रक्रिया को रक्त का थक्का कहते है। रक्त का जमना सीरम का गुण होता है। लाल एवं सफेद रक्त कण रक्त जमने के कार्य में भाग नही लेते है, रक्त ये रक्त के थक के बने जाल में फंस जावें दें। इसी कारण रक्त के थक्के का रंग लाल होता है तथा सीरम साफ सुथरा तरल अकोशिकीय पदार्थ होता है।

रक्त जमने की प्रक्रिया में प्लेटलेट्स की अहम भूमिका होती है, जब उतक क्षतिग्रस्त होते है, तो प्लेटलेट्स में से थ्रामबोप्लासटीन निकलता है जो प्रोथ्रोमबीन को थ्रोमबीन में बदलने का कार्य कैल्शियम की सहायता से करता है। तब ये थ्रोमबीन प्राइब्रीनोजीन से फाइब्रीन बनाकर रक्त का थक्का बना देता है।

प्लेटलेट्स → थ्रामबोप्लासटीन → प्रोथ्रोमबीन (कैल्शियम) → थ्रोमबीन →

फाइब्रीनीजीन → फाइब्रीन जाल → रक्त का थक्का →

2.6 रक्त का कार्य

रक्त का शरीर में बहुत महत्वपूर्ण कार्य होता है, जो यह है कि पूरे शरीर में आक्सीजन को पहुचाना जिससे शरीर सुचारू रूप से चले खासकर फफेड़ों में शुद्ध आक्सीजन रक्त द्वारा ही पहूंचता है तथा अशुद्ध कार्बनडाइआक्साइड को बाहर फेकने का कार्य भी फेफड़ो द्वारा रक्त प्रवाह से ही होता है। अतः याद रखने के अनुसार रक्त के निम्नलिखित कार्य होतें है।

a.श्वसन प्रवाली द्वारा गैस का आदान-प्रदान।

b. पोषण का ट्रांसपोर्ट।

c. विशुद्ध पदार्था े का निष्कासन।

d. पानी के संतुलन कारखरखाव।

e. अम्ल एवं क्षाट का संतुलन बनाना।

f. शरीर के ताप को बनाकर रखना।

g. प्रतिरोधक कार्य

h. रक्त को जमाकर उसकी क्षति को बचाना।

i. रक्त दबाब को बनाकर रखना।

2.7 सारांश

रक्त एक तरल पदार्थ होता है, जिसका लाल रंग होता है यह रंग इसकों हीम नामक पदार्थ लोह लवण, से मिलता है। रक्त में ग्लोबिन नामक पदार्थ भी होता है, जो हीमोगलोबिन का बनाता है। रक्त में लाल रक्त कव, सफेद रक्त कण तथा प्लेटलेटस् पाये जाते है।

रक्त एक संयोजी उतक तरलीय पदार्थ है,जो आक्सीजन, कार्बन डाइआक्साइड तथा अन्य पोषक तत्व शरीर के विभिन्न भाग तथा उतकों में पहुंचाने का कार्य करता है। बहुत सारे कारक जैसे हारमोनस, विटामिन रक्त का निर्माण करने में सहायक होती है। विभिन्न प्रकार की कोशिकाऐं रक्त में विभिन्न कार्यो को करने में सहायक होती है क्योकि रक्त का विभाजन कार्य होता रहता है तथा रक्त कोशिकाऐं क्षतिग्रस्त भी होती है, अतः रक्त के निर्माण को बनाये रखने के लिए एवं शरीर को स्वस्थ रखने हेतु खाने में पोष्टिक पदार्थो का होना आवश्यक खास तौर पर लोह लवण एवं प्रोटीन की उचित मात्रा से रक्त में हीमोग्लोबीन का निर्माण अच्छी तरह हो जाता है।

2.8 शब्दावली

म्तलजीतवचवपमेपेरू - इरीथ्रोसाइट्स बनाने की प्रक्रिया

म्तलजीतवचवमपजपद - लाल रक्त कण बनाने के लिए

भ्ंमउवहसवइपद - हीम ◌ ग्लोबिन से बना होता है, जिसमें **4** प्रतिशत हीम एवं **96** प्रतिशत ग्लोबिन होता है।

ठसववक . ब्वंहनसंजपवद - रक्त का थक्का जमना

2.9 अभ्यास्थ प्रश्न

प्र.**1** रक्त में कितने प्रकार की कोशिका होती है ?

प्र.**2** रक्त का पी.एस कितना होता है ?

प्र.**3** पुरूषों में सामान्य लाल रक्त कव की संस्था कितनी होती है?

प्र.**4** महिलाओं में सामान्य लाल रक्त कण की संख्या कितनी होती है?

प्र.**5** रक्त के उत्पादन की शरीर में कौन-कौन सी जगह है?

प्र.**6** इरीथ्रोप्रोइटीन हारमीन शरीर में कहां पर पाया जाता है?

प्र.**7** हीमोग्लोबीन के कार्य क्या है?

प्र.**8** प्लेटलेट्स के कार्य बताईये?

प्र.**9** रक्त समूह के बारे में लिखिए?

प्र.**10** रक्त समूह के प्रकार बताईये?

प्र.**11** रक्त जमने की प्रक्रिया समझाइये?

प्र.**12** रक्त के कार्यो की विवेचना कीजिऐ?

2.10 संदर्भ

1. अर्थर सी. गुयटन एण्ड जान एडवर्ड हाल (2006), ट ेक्सटब ुक आॅफ मेडिकल फीजियोलॅजी, फ्लोरिडा, अमेरिका, एल्जेवियर स्टैंडर्डस

2. सुरिन्दर एच सिंह और कृष्ण गर्ग (2008), एनाटाॅमी, एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर नर्सेज और एलाॅइड हेल्थ सांइसेज, नई दिल्ली, सीबीएस पब्लिशर्स

3. शिवरामकृष्णन एस. (2006), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर फीजिकल एजुकेशन, नई दिल्ली, फ्रेंड्स पब्लिशर्स

4. अन्ने वाॅ और एल्सन ग्राउंट (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी इन हेल्थ एण्ड वेलनेस, इलाहाबाद, चर्चिल लिविंगस्टोन

5. क्लार्क राॅबर्ट के. (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी - अंदरस्टैंडिंग द ह्यूमन बाॅडी, सडरी, यूर्नाइ टेड स्टेट्स, जाॅनस एण्ड बारटियट

6. श्री कृष्ण (1985), नोट्स आॅन स्ट्रक्चर एण्ड फंक्शन्स आॅफ ह्यूमन बाॅडी एंड इफेक्ट्स आॅफ योगिक प्रेक्टिसेज इन इट, मुंबई र् आइ .सी.वाई.एच सी. कैवल्यधाम

7. दत्ता रे (2001), योगिक एक्सरसाईजेज, नई दिल्लीः जेपी ब्रदर्स

8. शीर्ले टेलेस (2006), ए गिलम्पस आॅफ द ह्यूमन, बंगलोरः स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन

9. लेस्ली केमिनोफ (2007), योग एनाटामी, कैम्पेनः ह्यूमन कांइ नेटिक्स

10. पीटर आई विलियम्स और रोगर वास्वी (1988), ग्रेज एनाटॅमी, एडीनबर्गः चर्चिल लिविंगस्टोन

11. एवीलीन ब् पीएर्स (1997), एनाटामी एंड फीजियोलाजी फार नर्सेज, नई दिल्लीःजेपी ब्रदर्स

12. गेरे एम.एम. (2003), एनाटॅमी एण्ड फीजियोलॅजी फॅर योगिक पै्रक्टिसेज, लुनावालाः काम्हान प्रकाशन

13. शरीर- रचना विज्ञान एवं शरीर-क्रिया विज्ञान (2003), श्री नन्दन बंसल, जेपी ब्रदर्सः नई दिल्ली

इकाई - **3**

हृदय: संरचना एवं कार्य

इकाई की रूपरेखा

3.0 उदेश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 हृदय की संरचना एवं अवयव

3.2.1 हृदय चक्र

3.2.2 हृदय ध्वनि

3.2.3 हृदय गति

3.2.4 रक्त दबाव

3.3 हृदय के कार्य

3.3.1 हृदय स्पंदन

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास्थ प्रश्न

3.7 संदर्भ

3.0 उदेश्य

छात्रों को इस इकाई से निम्न ज्ञान प्राप्त होगा-

- हृदय की रचना एवं आकार के बारे में जानकारी मिलेगी।
- रक्त वाहिनियों की संरचना को समझेगें।
- हृदय संबंधी बीमारी की जानकारी प्राप्त होगी।
- हृदय चक्र, हृदय ध्वनि तथा हृदय गति।
- हृदय के कार्यो को समझेगें।

3.1 प्रस्तावना

मानव शरीर का सबसे प्रमुख अंग जिसके बिना जीवन चलना मुश्किल हो जाता है। यह किस तरह कार्य करता है चैबीस घंटों में प्रतिदिन हर पल और जब कार्य करना बंद कर देता है, तब व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। हृदय रक्त वाहिनीयों से शरीर के सभी भागों में रक्त पहुचाने का कार्य करता है का वजन करीब **300** ग्राम होता है, महिलाओं में **25** प्रतिशत पुरूषों की अपेक्षा हृदय का वजन कमसतह होती है। हृदय सतह बाह्य सतह परीकारडीयल, मध्यमायोकारडीयल तथा आन्तिरिक एण्डोर्काडीयल बाहरी सतह में जो द्रव रहता है, वह हृदय की गति को संचारित करता है। हृदय के दो भाग होते है, एक दायां हृदय एवं दूसरा बायांहृदय। हृदय की मं ासपेशी को बृंतकपंब डनेबसमे कहते है। आ ॅक्सीजन रहित रक्त नीला होता है, जो नाडी से हृदय से फेंफड़ों में पहुचता है और साफ होकर लाल रंग का रक्त नाडियों द्वारा वापस हृदय से पूरे शरीर में भेजा जाता है। यह पूरी क्रिया मशीनीकृत चलती रहती है। मानव हृदय के दोनो ेंं फेफड़ो के बीच स्थित होता है, जिसका ज्यादा हिस्सा बायी तरफ होता है। यह डायफार्म के ऊपर तथा आगे स्टरनम तथा पीछे की ओर मेरूदण्ड से घिरा रहता है। हृदय द्वारा फेफड़ों की सहायता से रक्त को साफ करके पूरे शरीर में रक्त वाहियों की सहायता से विभिन्न अंगों में पंहुचाया जाता है।

रक्त का दबाव या तो जब बढ़ जाता है या कम हो जाता है, तब मनुष्य में रक्तचाप के लक्षण दिखाई देते है क्योकि ऐसी स्थिति में हृदय को आराम देने हेतु अधिक तनावपूर्ण कार्य नही करने चाहिए।

3.2 हृदय की संरचना एवं अवयव

रक्त उतकों में जाकर आक्सीजन रहित होता है तथा फेफड़ों में आकर आक्सीजन युक्त हो जाता है। अतः रक्त संचारण प्रणाली के दो अवयव है।

1. सिस्टमैटिक संचारण
2. पल्मोनरी संचारण

आक्सीजन युक्त रक्त हृदय से उतकों में जाता है तथा आक्सीजन रहित रक्त हृदय से वापस आता है, इस प्रणाली को Systematic Circulation कहते है। अब आक्सीजन रहित रक्त हृदय से फेफड़ों मे जाता है, जब आक्सीकृत हो जाता है तब वापस हृदय में आ जाता है तथा इस प्रणाली को s Pulmonary Civculation कहते है। हृदय एक केन्द्र की तरह काम करता है,जो रक्त कों पम्प करकें रक्त वाहिनियों में संचारित करता है। हृदय के चार खण्ड होते है।

arteries, arterioles, capillaries, venules and veins

हृदय के चार खंड होते है

1. Atrium - RA
2. Ventricle - RV
3. Atrium - LA
4. Ventricle - RV

यह चारों भाग पतली मुलायम झिल्ली की परतें जैसी सतह से अलग विभाजित होते है, जिसे सैवटम कहा जाता है।

हृदय कोशिकीय प्रणाली की संरचना में इन चार अवयवों का होना अत्यावश्यक होते है।

1. हृदय

2. आरटरीज

3. केपिलरीज

4. वेन

ये सभी संरचना एवं कार्यो में अलग होते है, शरीर में रक्त की मात्रा सीमित होती है, परन्तु कार्य उसे अनेक करने पड़ते है। अतः उतनी मात्रा में रक्त हमारे शरीर का ओसतन रक्त **1200** मिलीलीटर आक्सीजन को पांच मिनिट में ढोहता है, अतः उतकों द्वारा अन आक्सीकृत रक्त भी पांच मिनिट में ही वापस आना चाहिए जिससे निरंतर हृदय का कार्य चलता रहता है।

3.2.1 हृदय चक्र

हृदय की धड़कन निरंतर चलती रहती है, एक हृदय की धड़कन को **heart beat** कहते है जो निरंतर चलते रहने के कारण हृदय चक्र कहलाती है, यह धड़कन निम्न कारणों से होती है। सिस्टोल जब हृदय का एरिया या वेन्ट्रीकल फैलता है तब हृदय से बाहर फेकने का कार्य संपादित होता है।

डायस्टोल जब हृदय का एट्रीया या वेन्ट्रीकल फैलता है तब हृदय के अंदर रक्त भरता है और यही किया के संपादन को एक चक्र के रूप में जाना जाता है।

हृदय चक्र का समयः-

हृदय गति **75**/मिनिट (मतलब **75** बीट्स **60** सेकेण्ड) जिसमें हर एक बीट **60/75** त्र **0.8** सेकेण्ड के समय से एक चक्र पूरा करती है। अतः जब Atrial Systole सिकुडता है तब Ventricular diastole फैलता है और जब Atrial diastole फैलता है तब Ventricular systole संकुचित करता है।

1. आॅरट्रिअल समय

Atrial Systole 0.1 sec.

Atrial Diastole 0.7 Sec.

कुल समय **0.8** सेकेण्ड

2. वेन्ट्रीकुलर समय

Ventricular Systole 0.3 Sec.

Ventricular Diastole 0.5 Sec.

कुल समय **0.8** सेकेण्ड

दोनो Atrial एक साथ संकुचित एवं फैलते है तथा दोनों Ventricular की एक साथ सिकुड़ते एवं फैलते है।

3.2.2 हृदय ध्वनि

हृदय ध्वनि की रिर्कोडिंग भी की जाती है अप्रत्यक्ष एवं प्रत्यक्ष रूप से। जिस उपकरण से ध्वनि के ग्राफ को रिकार्ड किया जाता है, उसे फोनोकाडियोंग्राफ कहते है। अप्रत्यक्ष विधि में गेलवेनो मिटर का प्रयोग होता है तथा प्रत्यक्ष विधि में तंरगों को रबर की भिल्ली से रिकार्ड करते है। डाॅक्टर सामान्यतः स्टेथीसस्कोप से हृदय की ध्वनि को सुनते है। दो प्रकार की ध्वनि हृदय से निकलती है। ''लब'' पहली ध्वनि तथा डप दुसरी ध्वनि होती है। पहली ध्वनि बहुत ही धीमी लम्बी वह मधुर होती है इस ध्वनि की तंरगों की लय**25-45** सेकेंड होती है। दूसरी ध्वनि तेज, तीखी तथा कम समय की होती है। इसकी तरंगो की लय **50**/ सेकेण्ड होती हैं।

हृदय की धड़कन लबं डप. लब- डप ..... लब- डप..... होती है ना की धक-धक..... हृदय की ध्वनि में परिवर्तन हृदय के वाल्ब में आई खराबी के कारण होता है तथा हृदय की ध्वनि मंे करकराहट आ जाती है, जिसे डाक्टर स्टेथीसस्कोप से सुनकर हृदय में आई हुई गड़बड़ी का बता देते है।

3.2.3 हृदय गति

सामान्यतः हृदय की गति **60-75/** मिनट एक व्यस्क व्यक्ति में होती है। भ्रुण शिशु एवं बच्चों में हृदय गति ज्यादा होती है। जब हृदय गति **60/** मिनट से कम होती है, तो उस अवस्था को ब्राडीकार्डीया कहते है और जब **75/**मिनिट से ज्यादा होती है तो टाचीकार्डीया कहते हैं। हृदय गति विभिन्न शारीरिक क्रियाओं में बढ़ जाती है, जैसे दौड़ना, व्यायाम, उत्तेजना, खाना खाने के बाद, गर्भावस्थ इत्यादि बुखार तथा हाइपर थायरोयडीजम मे भी बढ़ जाती है।

सामान्य हृदय गति **72/** मिनट होती है, हृदय गति नई कारक प्रभावित करते है। जैसे उत्तेजना, संवेगात्मक प्रभाव, जोर से सांस लेना, रक्त में आक्सीजन या कार्बन डाइआक्साइड की संाद्रता में परिवर्तन शरीर का ताप जल्दी हृदय गति को बढ़ाता है तथा ऐसे व्यायाम जिसमें मांसपेशियों से आॅक्सीजन निकल जाता है, पसीना ज्यादा आता है, हल्के व्यायाम हृदय गति को जल्द ही सामान्य कर देते है।

3.2.4 रक्त दबाव

यह वह दबाव होता है जो रक्त के बहाव के दौरान रक्त वाहिनियों की दीवाल पर पड़ता है। सिस्टोल दवाब (Systolic Pressure) हृदय के ऊपर पर वाला अत्याधिक दबाव तथा डायस्टोलिक दबाव Diatolic Pressure न्यूनतम दबाव होता जो हृदय के बाल्व खुलने पर पड़ता है। नाड़ी दबाव Pulse Pressure दोनों सिस्टोलिक एवं डायस्टिोलिक दवाब के बीच का अंतर होता है। तीनों दबाव Systolic, Diastolic and Pulse का अनुपात **3ः2ः1** होता है। सामान्य तौर पर सिस्टौलिक दबाव **125 -135** तथा डायस्टिौलिक दबाव **80** होता है। स्फिगनोमैनोमीटर रक्त को दबाव को नापने के यंत्र को कहते है।

उम्र के साथ रक्त के दवाब पर भी प्रभाव पड़ता है तथा यह मोटे लोगो में ज्यादा बढ़ जाता है। व्यायाम के बाद भी बढ़ जाता है। पुरूषों के अपेक्षा महिलाओं में यह कम होता है। सोते समय यह कम रहता है। रक्त दबाव को SBP/DBP mm Hg के माध्यम से दर्शाया जाता है।

SBP- वह रक्त का अधिकतम दबाव हृदय चक्र के दौरान रिकार्ड किया जाता है।

सामान्य SBP - 110 - 130 mm Hg (Average 120 mm Hg) होता है।

DBP -यह रक्त का वह न्यूनतम दबाव हृदय चक्र के दौरान नापा जाता है जो सामान्यतः 70&90 (mm Hg (Average 50 mm Hg) होता हैं।

अतः सामान्य रक्त दवाब (mm Hg (Average 120/50 mm Hg) नापा जाता है।

PP (Pulse Pressure) जब SBP में DBP को घटाया जाता है तथा PP की गणना हो।

SBP - DBP = PP 40 mm Hg होता है उदाहरण अगर किसी का SBP 120mmhg और DBP 80 mmhg है तो PP 40 mmhg होगा।

120-80 = **40**

किसी भी आयु में अगर रक्त दवाब **140/90** से ऊपर हो तो वह उच्च ताप Hypertension कहलाता है तथा जब रक्त दबाव **110/70** से कम रहता है नियमित, व्यायाम, ध्यान, सरल, जीवन शैली तथा आहार में कम नमक तथा वसा रक्तचाप को नियंत्रित रखते है।

ECG:- Electro Cardiogram

हृदय की तंरगों को नापने का यंत्र होता है, शरीर के संवेदनशील भागों में इल्कट्रोड की लीड लगाकर गेल वेनोगीटर की सहायता से यह जाना जाता है कि हृदय की गति ठीक चल रही है की नही। हृदय के बाल्व की सिकुडन एवं फैलाव को दो सेकेण्ड के अंतराल में नाप कर पूर आठ सेकेेण्ड को नापा जाता है।

3.3 हृदय के कार्य

हृदय रक्त के द्वारा विभिन्नांे पदार्थो को शरीर के विभिन्न अंगों में ले जाने का प्रमुख कार्य करता है। हृदय का स्पंदन प्रति मिनिट **70** बार होता है। जिसमें वह **70** मिलीलीटर रक्त को फेफड़ों मे ले जाकर कार्बनडाइआॅक्साइड का आक्सीजन के साथ आदान-प्रदान करने का कार्य करता है।

हृदय का बायां भाग साफ किया हुआ, आॅक्सीजन युक्त रक्त फेफड़ों से ओरटा द्वारा पूरे शरीर में पम्प करता है। अतः हृदय का प्राथमिक करके शरीर की सभी कोशिकाओं को जीवित रखें।

3.3.1 हृदय का स्पंदन (**Cardia Output)**

तब diastole का अंत होता है उस समय Ventricles में **120-140** मिली लीटर रक्त भर जाता है, प्रत्येक बीट् मे कुछ मात्रा में रक्त Ventricles से पम्प होकर परिभ्रमक में आता है। आउटपूट की रेंज **70-80** मिलीलीटर प्रति बीट् होती है और अतः में रक्त में रह जाता है। रक्त का औसत भार वजन के हिसाब से होता है, जैसे **70** मिली/कि.ग्रा. के हिसाब से अगर **50** कि.ग्रा. वजन है तो **70 × 50** त्र**3.5** लीटर रक्त भार होगा।

जब हृदय रक्त को पम्प नही कर पाता तो हृदयाघात हो जाता है, जो या तो स्टथ् या त्टथ् हो सकता है।

LVF = Left Ventricular Failure

RVF = Right ventricular Failure

LVF फेफड़ों से संबंधित बीमारी में होता है जिसमें सांस लेने में तकलीफ होती है।

RVF यकृत के आकार के बड़े हो जाने पर या एडीमा (Adema) होने पर होता है।

3.4 सांराश

इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्रों को हृदय प्रणाली के कार्य अच्छे से समझ आयेंगे, हृदय वाहिनी प्रणाली आक्सीजन एवं पोषक तत्वों के लिए शरीर में वाहक का कार्य निरंतर करती है। हृदय की मांसपेशियां हृदय के बाल्व को बंद एवं खोलने का कार्य करके रक्त को हृदय के चारों भागों में से संचारित करके फेफड़ों में पहुंचाने तथा फेफड़ों से वापस हृदय के द्वारा पूरे शरीर में भेजने का कार्य करती है।

जब मनुष्य को कार्य की अधिकता, तनाव या भोजन में असंतुलित आहार लेने से रक्त का दबाव बढ़ जाता है एवं उच्चरत चाप बीमारी होती है। भोजन में अधिक वसा या कोलेस्ट्राल से रक्तवाहिनीय में जमाव आ जाता है एवं हद्याघात होने की संभावना बढ़ जाती है। अधिक नमक खाने से भी रक्तचाप बढ़ता है तथा शरीर में पानी रोकता है एवं एडीना हो जाता है। हृदय चक्र में हृदय का संकुचन एवं हृदय का फैलाव होने की क्रिया को मशीन द्वारा नापा जाता है, इसकों इलेक्ट्राग्राम कहते है। यदि हृदय चक्र की गतिविधि में बदलाव आता है तब ECG द्वारा पता लग जाता है की हृदय को कितनी क्षति पहुंची है। हृदय की बीमारी होने का पहला लक्ष्य उच्च रक्तचाप (Hypertension) है। दुसरा अर्थोरोसस्लीरोसिस (Artheroslerosis) तथा तीसरा हृदयघात हृदय (Heart Attack) संबंधी बीमारी की खानपान, व्यायाम, आराम तथा जीवन शैली में परिवर्तन लाकर नियंत्रित किया जा सकता है।

जब हृदय द्वारा रक्त ठीक से पम्प नही हो पाता है तब हृदय काम करना बंद कर देता है तथा मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

3.5 शब्दावली

Systole -हृदय के भागों में सकुचन

Diastole -हृदय के भागों का फैलना

हृदय ध्वनि - ध्वनि की वो तंरग जो हृदय में रक्त के बहाव के कारण उत्पन्न होती है।

Cardia Output- रक्त की मात्रा जो हृदय की प्रत्येक बीट्स के साथ Ventricles से पम्प होती है।

E.C.G. - Electro Cardiogram

(हृदय की गति को नापने का यंत्र)

3.6 अभ्यास्थ प्रश्न

प्र.**1** रक्त दबाव को समझाइये ?

प्र.**2** उच्च रक्तचाप क्या है ?

प्र.**3** हृदय में ध्वनि कैसे उत्पन्न होती है ?

प्र.**4** Systole क्या है, समझाइयें ?

प्र.**5** Diastole क्या है समझाइयें ?

प्र.**6** Systole और Diastole में अंतर बताइयें ?

प्र.**7** हृदय चक्र को समझाइये ?

प्र.**8** हृदय की संरचना का चित्र बनाकर बताइयें ?

प्र.**9** ECG क्या होता है ?

प्र.**10** रक्त दबाव कैसे नापा जाता है ?

3.7 संदर्भ

1. अर्थर सी. गुयटन एण्ड जान एडवर्ड हाल (2006), ट ेक्सटब ुक आॅफ मेडिकल फीजियोलॅजी, फ्लोरिडा, अमेरिका, एल्जेवियर स्टैंडर्डस

2. सुरिन्दर एच सिंह और कृष्ण गर्ग (2008), एनाटाॅमी, एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर नर्सेज और एलाॅइड हेल्थ सर्इंसेज, नई दिल्ली, सीबीएस पब्लिशर्स

3. शिवरामकृष्णन एस. (2006), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर फीजिकल एजुकेशन, नई दिल्ली, फ्रेंड्स पब्लिशर्स

4. अन्ने वाॅ और एल्सन ग्राउंट (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी इन हेल्थ एण्ड वेलनेस, इलाहाबाद, चर्चिल लिविंगस्टोन

5. क्लार्क राॅबर्ट के. (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी - अंदरस्टैंडिंग द ह्यूमन बाॅडी, सडरी, यूर्नाइ टेड स्टेट्स, जाॅनस एण्ड बारटियट

6. श्री कृष्ण (1985), नोट्स आॅन स्ट्रक्चर एण्ड फंक्शन्स आॅफ ह्यूमन बाॅडी एंड इफेक्ट्स आॅफ योगिक प्रेक्टिसेज इन इट, मुंबई र् आइ .सी.वाई.एच सी. कैवल्यधाम

7. दत्ता रे (2001), योगिक एक्सरसाईजेज, नई दिल्लीः जेपी ब्रदर्स

8. शीर्ले टेलेस (2006), ए गिलम्पस आॅफ द ह्यूमन, बंगलोरः स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन

9. लेस्ली केमिनोफ (2007), योग एनाटामी, कैम्पेनः ह्यूमन कांइ नेटिक्स

10. पीटर आई विलियम्स और रोगर वास्वी (1988), ग्रेज एनाटॅमी, एडीनबर्गः चर्चिल लिविंगस्टोन

11. एवीलीन ब् पीएर्स (1997), एनाटामी एंड फीजियोलाजी फार नर्सेज, नई दिल्लीःजेपी ब्रदर्स

12. गेरे एम.एम. (2003), एनाटॅमी एण्ड फीजियोलॅजी फॅर योगिक पै्रक्टिसेज, लुनावालाः काम्हान प्रकाशन

13. शरीर- रचना विज्ञान एवं शरीर-क्रिया विज्ञान (2003), श्री नन्दन बंसल, जेपी ब्रदर्सः नई दिल्ली

अध्याय-4

कंकाल तंत्र (Skeletal System)

4.0 उद्देश्य

4.1प्रस्तावना

4.2 अस्थियों की रचना एवं बनावट

4.3अस्थि संधियाँ

4.4 सारांश

4.5 प्रश्न

4.6 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

- छात्र शरीर की अस्थि की संख्या के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे|
- अस्थियों की रचना एवं बनावट की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे |
- अस्थि संधियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे|

4.1प्रस्तावना

कंकाल तंत्र अस्थियों एवं उपास्थियों का बना होता है। यह शरीर को एक निश्चित आकार प्रदान करता है। अस्थियां मांसपेशियों के नीचे स्थित होती है। तथा मांसपेशियां चर्म से ढकी होतीहै। अगर शरीर से चर्म तथा मांस

को हटा दिया जाए तो एक अस्थिपंजर दिखता है जिसे अस्थि-कंकाल कहते है। कंकाल को मुख्यत: दो भागों में बांटा गया है:

1- अक्षीय कंकाल (Axial skeleton) तथा
2- अनुबंधी कंकाल (Appendicular skeleton)
1- अक्षीय कंकाल (Axial skeleton)- यह शरीर के अनुलम्ब अक्ष (Longitudinal axis)पर होता है। इसके अन्तर्गत करोटि या खोपड़ी (skull), कशेरूक दण्ड (Vertabral column), उरोस्थि (sternum और पसलियां (ribs) आती है।

2- अनुबंधी कंकाल (Appendicular skeleton)-ये दो जोड़ी हाथ व पैर की अस्थियां तथा मेखलाओं (girdles) का बना होता है। पेरों की अस्थियां हिप बोन (Hip bone) से जुड़ी हुई होती है। जबकि हाथ की अस्थियां कंधे से स्केपुला (scapula) और क्लैविकल(clavicle) द्वारा जुड़ी होती है।

4.2 अस्थियों की रचना एवं बनावट (structure and composition of bone) –

अस्थि शरीर का सबसे कठोर ऊतक है जो जल, कार्बनिक पदार्थ तथा अकार्बनिक पदार्थ का बना होता है। इसमें इन पदार्थों का प्रतिशत इस प्रकार है-

जल- 25%

कार्बनिक पदार्थ-35% (कार्बनिक पदार्थ के अन्तर्गत ओसीन, ओसीयोएल्बुमिन तथा ओसीयोमुकोयॉड (Ossein, sseolabumin and osseomucoid) उपस्थित होते है।)

अकार्बनिक पदार्थ-45% (इसमें कैल्शियम तथा फॉस्फोरस लवण उपस्थित होते है।)

अस्थि की कठोरता कैलशियम फास्फेट व मैगनीशियम काबर्ैानेट की उपस्थिति के कारण होती है। इस प्रकार अस्थि का 1/3 भाग कार्बनिक पदार्थ का तथा 2/3 भाग अकार्बनिक पदार्थ का बना होता है। जैसे-जैसे उम्र बढती है, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अस्थि में कम होती जाती है। तथा खनिज लवण की मात्रा बढ़ती जाती है। यही कारण है कि वृध्दावस्था में हड्डी टूट जाने पर अस्थियों को जुड़ने में कठिनाई होती है। व देर से जुड़ती है।

ताजी अस्थियों का ऊपरी भाग फीका गुलाबी तथा भीतरी भाग गहरा लाल होता है। अस्थियों का ऊपरी भाग घना (Compact) होता है तथा भीतरी भाग स्पंजी होता है। ये अस्थियां एक अत्यंत पतली रेशेदार झिल्ली (periosteum) से ढकी रहती है इन्हीं के माध्यम से रक्त तथा स्नायु नाड़ियां अस्थियों तक पहुचाती है। पेरिओस्टीयम अस्थियों को लचीलापन एवं चिकनापन प्रदान करता है रचना के आधार पर अस्थि को दो भागों में बांटा गया है।

(1) ठोस या संहत अस्थि (Compact bone) तथा

(2) स्पंजी या सुषिर अस्थि (Spongy bone)

(1) ठोस या संहत अस्थि (Compact bone)- नग्न आंखों से देखने पर ठोस अस्थि बिल्कुल ही ठोस और सख्त दिखाई देती ह। परन्तु सूक्ष्मदश्र्ा ी से देखने पर इसमें बहुत सारे हेरसियन तंत्र (Haversian systems) दिखाई देते है। ये अस्थियां पेरिओस्टियम से ढकी रहती है। इन्हीं पेरिओस्टियम से मांसपेशियं तथा टेन्डन्स जुड़ी होती है। यह अस्थि को सुरक्षा प्रदान करती है तथा अस्थि के टूट जाने पर जोड़ने का कार्य करती है।

अस्थि में रक्त वाहिनियां, पेरिओस्टियम और अस्थि मज्जा के अतिरिक्त पूरे मैट्रिक्स में फेली रहती है। इसमें बहुत सारी हेवर्स नलिकाऐं उपस्थित होती है इन हेवर्स नलिकाओं (Havers canal) को 12.-15 मेट्रिक्स की समकेन्द्रीय पटिटयां (जिसे लैमिली (lamellae) कहते है।) घेरे रहती है। ये समकेन्द्रीय लैमिली तथा हैवर्स नलिकाऐं ही हैवर्स तंत्र (Havers system) का निर्माण करती है। प्रत्येक लैमिली में अनेकों लैक्यूनी (lacunae) उपस्थित होते है जिसकी शाखाऐं लैक्यूनी की नलिकाओं द्वारा एक दूसरे से जुड़ी होती है। इस प्रकार हैवर्स नलिकाओं तथा अस्थि कोशिकाओं (oesteocytes) को लसीका द्वारा पोषण होता है।

(2) स्पंजी या सुषिर अस्थि(spongy bone)- स्पंजी अस्थि चपटी अस्थियों के बीच पायी जाती है। यहां अ िस्थ्यों का कैल्सीफिकेशन (calcification) कम होता है। इसमें लाल अस्थि मज्जा (Red bone marrow) अधिक पाये जाते है। मज्जा गुहा का अन्त: स्तर एन्डोस्टीयम (endosteum) कहलाता है।

अस्थि मज्जा (Bone Marrow) - अस्थियां बीच से खोखली होती है तथा इस खोखले भाग को मज्जा गुहा (Marrow cavity) कहते है। इसी मज्जा गुहा (Marrow Cavity)में वसीय ऊतक (Adipose tissue) भरा होता है। जिसे अस्थि मज्जा कहते है। अस्थि मज्जा दो प्रकार की होती है- लाल तथा पीली। अस्थि के मध्य भाग की मज्जा पीली होती है जिसे पीत अस्थि मज्जा (yello bone marrow) कहा जाता है।जबकि अस्थि के सिरों की मज्जा रक्त वाहिनियों की अत्यधिक उपस्थिति के कारण लाल होती है। जिन्हें लाल अस्थि मज्जा (red bone marrow)कहते है्ै। लाल अस्थि मज्जा ही धीरे धीरे परिवर्तित होकर पी अस्थि मज्जा का निर्माण करती है। परन्तु उरोस्थि (ribs), स्टरनम (sternum), तथा कशेरूका (Vertenrae), में लाल अस्थि मज्जा ही उपस्थित होती है।

अस्थि मज्जा के कार्य (functions of bone marrow),

(i) यह भ्रूण में लाल रक्त कणिकाओं का निर्माण करता है।

(ii) यह मेगाकैरीयोसाइट्स से थ्रोम्बोसाइट्स के विकास में सहायता प्रदान करता है।

(iii) यह श्वेत रक्त कणिकाओं का निर्माण करता है।

(iv) लाल रक्त कणिकाओं (RBC) का विनाश भी यहीं अस्थि मज्जा में ही होता है।

(v) यह हीमोग्लोबिन का निर्माण करता है।

(vi) अस्थि मज्जा में रेटिक्यूलो एण्डोथीलियल कोशिकाऐं (reticulo endothelial cells) उपस्थित होती है जो शरीर को विभिन्न प्रकार के रोगों से रक्षा प्रदान करती है तथा बाहरी वस्तु को शरीर में प्रवेश से रोकती है।

अस्थि के प्रकार (types of bones)- अस्थियां विभिन्न आकार-प्रकार की होती है। कहीं कहीं कोमल अस्थियां होती है जिन्हैं उपास्थि (cartilage) कहते है। अस्थियों को विभिन्न भागों में विभाजित किया गया है-

1) लम्बी अस्थियां (Long bones).
2) छोटी अस्थियां (Short bones),
3) अनिश्चित या बैडौल अस्थियां(Irregular bones),
4) चपटी अस्थियां (Flate bones),
5) सेस्मायॉड अस्थियां (Sesmid bones),

(1) लम्बी अस्थियां (Long bones)- लम्बी अस्थियों में एक डाइफाइसिस या शैफ्ट (diaphysis or shaft) तथा दो एपीफाइसिस या एक्सट्रीमिटीस (epiphysis or extremities) पायी जाती है। डाइफाइसिस ठोस अस्थि की बनी होती है। जिसके मध्य में मेड्यूलरी कैनाल (Medullary canal) होता है । इस मेड्यूलरी कैनाल में पीत अस्थि मज्जा (Yellow bone marrow) भरा होता है।

(चित्र- लम्बी अस्थि की रचना (लम्बवत काट)

एपीफाइसिस(epiphysis) ठोस अस्थि तथा स्पंजी अस्थि दोनें के मिलने से बना है। ठोस अस्थि बाहर का भाग तथा स्पंजी अस्थि अन्दर का भाग बनाता है। डाइफाइसिस तथा एपीफाइसिस एपीफाइसियल कार्टिलेज (epiphyseal cartilage) द्वारा आपस में जुड़े होते है।

अस्थि की लंबाई का विकास डाइफाइसिस सतह के कार्टिलेज के विकास और अस्थिकरण (ossification) के उपर निर्भर करता है। कुछ अस्थियेां का विकास तो कार्टिलेज से तथा कुछ का िकास मेम्ब्रेन के विकास से होता है। अस्थि में एपिफाइसीस, डाइफाइसिस तथा मेटा फाइसिसि में विकास केन्द्र उपस्थित होते है जिनकी वृध्दि एवं विकास से अस्थियों की लम्बाई बढती है एक निश्चित समय के बाद इन अि्स्थ्यों का अस्थिकरण हो जाता है फलत: अस्थियों की वृध्दि रूक जाती है। पैर की अस्थियां लम्बी अि्स्थ्यों का उदाहरण है।

(2) छोटी अस्थियां छोटी अस्थियां (Short bones)- इन अस्थियों में ठोस अस्थिओं का बाह्य स्तर ल्म्बी अस्थियों की अपेक्षा कम होता है तथा अन्दर की और स्पंजी अस्थियां अपेक्षाकृत अधिक होती हैं। इन अस्थियों

में लाल अस्थि मज्जा (Red bone marrow) प्रचुर मात्रा में पाये जाते है इन अस्थियो में अधिक दबाव सहन करने की क्षमता होती है। घुट्टी (टखना) के टारसल अस्थियां (Tarsal bones) इनके उदाहरण है।

(3) बैडौल एवं टेढ़ी मेढ़ी अस्थियां(Irregular bones),- ये अस्थियां भी छोटी अस्थियों की भांति स्पंज की तरह छोटे-छोटे सुराखों से भरी होती है। इनके ऊपर भी ठोस अस्थियों (compact bones) की एक पतली परत होती है। कूल्हे की अस्थियां (Hip bones) और रीढ़ की हड्डियां (vertebrae) इनके उदाहरण ह।

चित्र:-बैडौल एवं टेढ़ी मेढ़ी अस्थियां

(4) चौड़ी अस्थियां (Flate Bones) - ये अस्थियां शरीर के नाजुक अंगो कोरक्षा प्रदान करती है तथा उन स्थानों पर पायी जाती है जहां मांसपेशियों को चौड़े आधार पर आवश्यकता होती है खोपड़ी (skull) और पसली (ribs) की अस्थियां इसके उदाहरण है।

चित्र:- चौड़ी अस्थियां

(5) सेस्मीयॉड अस्थियां(Sesmoid bones) - इन अस्थियों की बाहरी परत ठोस अस्थि की बनी होती है परन्तु लम्बी अस्थि की अपेक्षा ये परत (layer) पतली होती है भीतर की और स्पंजी अस्थि होती है जिसमें लाल अस्थि मज्जा की प्रचुरता होती है। इन अस्थियों के भीतर से स्पंज की भांति छोटी छोटी सुराखें होती है। उदाहरण -कशेरूक दंड की अस्थियां (bones of vertebral column)

कंकाल के कार्य (Functins of Skeleton)

(1) यह शरीर का एक मजबूत एवं कठोर अस्थिल ढांचा (bone framework) बनाता है। यह यक्ति को एक आकृति प्रदान करने के साथ-साथ सहारा (support) प्रदान करता है।

(2) अस्थियों से ही मांसपेशियां तथा टेन्डन संलग्न होती है अत: उनके लिए यह संल्गग्न तल (attachment surface) -बनाता है।

(3) यह शरीर के कोमल अंगों को एक कवच प्रदान करता है तथा उन्हैं चोट आघाट रगड़ इत्यादि से बचाता है जैसे- हृदय, फेफड़े मस्तिष्क वृक्क आदि।

(4) अस्थियों में ही लाल अस्थि मज्जा (Red bone marrow bones) पाया जाता है जहां लाल रक्त कणिकाओं (RBC) का निर्माण होता है।

(5) यह शरीर तथा शरीर के विभिन्न भागों को गति प्रदान करता है। अत: यह अस्थिल उत्तोलक(bony lever) का कार्य करता है।

अक्षीय कंकाल (Axial skeleton)

मानव कंकाल में 206 अस्थियां पायी जाती है जिनमें से अक्षीय कंकाल में 80 अस्थियां तथा अनुबंधी कंकाल (appendicular skeleton) में 126 अस्थियां होती है। इस तरह कुल80+126= 206 अस्थियां है।

अक्षय कंकाल (Axial skeleton) के अन्तर्गत खोपडी या करोटि (skull) , कशेरूक दण्ड (vertebral colum) , उरोस्थि (sternum) का पसलियां (ribs) आती है।

खोपड़ी या करोटि (skull)

खोपड़ी कशेरूक दण्ड की एटलस (शीर्षधर) होती है। ये अंडाकार (Oval shaped) होती है। इसका अग्र भाग नुकीला तथा प्श्च भाग चौड़ा होता है। जबड़े को छोड़कर ये चौड़ी और टेढ़ी मेढ़ी बेडौल हडियों से बनीं होती है। खोपड़ी को मुख्यत: दो भागें में बांटा गया है।-

(अ) कपाल की अस्थियां या क्रेनियम (skull bones or cranium)तथा

(ब) आनन (चेहरे) की अस्थियां(Facial bones)

(अ) कपाल की अस्थियां या क्रेनियम (skull bones or cranium)- कपाल को मस्तिष्क खोल (cranium) भी कहते है। अय आठ अस्थियों के मिलने से बनता है। ये अस्थियां चपटी और बैडौल होती है। खोपड़ी में ये अस्थियां(टेढ़ी मेढ़ी आर के दांत जैसी रचनाओं से जुड़ी रहती है ऐसा इसलिए होता है कि अस्थियों की जड़ मजबूती से लग सके और इन्हें आसान से अलग नहीं किया जा सके।

ललाटास्थि
स्फीनॉयड अस्थि
पैराइटल अस्थि
नासास्थि
कनपटी वाली अस्थि
चलनीदार अस्थि
अश्रुवास्थि
जाइगोमैटिक अस्थि
ऑक्सीपीटल अस्थि
मैक्सिला
मैस्टॉयड अस्थि
मैन्डीबुल

चित्र : कपाल (साइड से)

सूचर
ललाटास्थि
नेत्रगुहा
पार्श्विकास्थि
(पेराइटल अस्थि)
नासास्थि
स्फीनॉयड अस्थि
चलनीदार अस्थि
आँसूबली अस्थि
टेम्पोरल अस्थि
(शंखास्थि)
जाइगोमेटिक अस्थि
(कपोलास्थि)
वोमर
निचले जबड़े की अस्थि
(मैन्डीबुल)
मैक्सिला
(ऊपरी जबड़े की अस्थि)

चित्र : कपाल (सामने से)

मस्तिष्क खोल या कपाल (cranium) में ही दिमाग (brain) और इसका मेनिन्जेस(meninges) और सेरेब्रल वाहिकाऐं (cerebral vessels)सुरक्षित रहती है। मस्तिष्क खोल में अस्थियों की संख्या निम्न प्रकार है-

		संख्या
(क) खोपड़ी के पीछे की अस्थि	(occipital bone)	1
(ख) तितली जैसी अस्थि	(sphenoid bone)	1
(ग) कनपट्टी वाली अस्थि	(Temporal bone)	2
(घ) अगल बगल वाली अस्थि	(Parietal bone)	2
(ड़) चलनीदार अस्थि	(Ethmoid bone)	1
(च) ललाट अस्थि	(Frontal bone)	1
	कुल अस्थियां	8

(क) खोपड़ी के पीछे की अस्थि (occipital bone) - यह संख्या में एक होती है जो खोपड़ी के पीछे के भाग और दिमाग के खोल की दीवार को बनाती है। इसके निचले हिस्से में एक बड़ा अन्डाकार छेद पाया जाता है जिसे ''फोरामेन मैगनम'' (महारन्ध्र) कहते है। जिससे होकर स्पाइनल कॉर्ड (spinal cord) नीचे की और पृष्ठ वंश की नली में जाता है। ऑक्सीपीटल अस्थि का ऊपरी भाग पैराइटल अस्थि से जुड़ा होता है। इस तरह पैराइटल अस्थि खोपड़ी के अगल बगल वाली अस्थि का निर्माण करती है। साथ ही साथ यह मस्तिष्क के खोल की छत भी बनाती है। ऑक्सीपीटल अस्थि और बगल वाली अस्थियों के जोड़ वाली जगह लेम्बोयॉड सूचर (Lambid suture) कहते है। फोरामेन मैग्नम के बगल में चिकनी और उभरी हुई अस्थियां होती है जिसे कान्डाइल्स (condyles) कहते है। यह कोन्डाइल्स, एटलस से जुड़ी होती है। एटलस रीढ़ की अस्थि की सबसे पहले की अस्थि है। इसी प्रकार खोपड़ी का पूरा भार रीढ़ की हड्डी पर ही पड़ता है। कोन्डाइल्स और एटलस आपस में इस प्राकर जुड़ी होती है कि सिर को आसानी से हिलाया डुलाया जा सके तथा सिर को गति प्रदान कर सके।

तितलीनुमा अस्थि से संधि के लिए संधि तल

(ख) तितलीनुमा अस्थि (sphenoid bone) : यह अस्थि तितली के आकार के जैसी होती है। इसलिए इसे तितलीनुमा अस्थि (sphenoid bone) कहते है। यह अस्थि

चित्र : तितलीनुमा (स्फीनॉयड) अस्थि

खोपड़ी का मध्य भाग तथा आधार बनाती है। यह समने से ऑक्सिपटल अस्थि (occipital bone) द्वारा जुड़ी होती है। इसका पश्च भाग लालटस्थि (Frontal bone) से जुड़ा होता है। यह एक और कनपटी वाली अस्थि (temporal bone) से तथा दूसरी और अगल-बगल वाली अस्थि (parietal bone) से जुड़ी होती है। यह अस्थि संख्या में एक होती है। इस अस्थि के मध्यम में एक सैंडल के आकार का गढढा (depression) होता है। जिसे हाइपोफाइसिस फोसा या सेला टरसिका(Hypophysis fosa r sella turcica) कहते है। इसी हाइपोफाइसियल फोसा में पीयूष ग्रंथि(Pituitary gland) स्थित होती है।

(ग) कनपटी वाली अस्थि या शंखास्थि (Temporal bone): ये अस्थियां संख्या में दो होती है तथा खोपड़ी की जड के पास दोनों बगल में होती है। और कनपटियों का निर्माण करती है। यह सामने से तितलीनुमा अस्थि (occipital bone) से जुड़ी होती है।

प्रत्येक कनपटी वाली अस्थि चार भागों में बंटी हुई होती है।

(i) स्कवैमस भाग (squamus part) - इसका आकार पंखे जैसाउ होता है। तथा यह पेराइटल अस्थि (parietal bone) से जुड़ा होता है।

(ii) मस्टॉयड प्रोसेस(mastoid process) - यह कान के पीछे का सबसे मोटा भाग बनाता है। इसमें कई छोटे छोटे वायु सइनुसेस (air sinuses) उपस्थित होते हैं जिससे मध्य कर्ण में ध्नि से संबंधित संवाद (communication) होता है।

(iii) पेटस भाग(Petrous portion)- यह भाग खोपड़ी का अधार बनाता है इसी में ''सुनने का अंग'' (organ of corti) उपस्थित रहता है।

(iv) जाइगोमेटिक प्रवर्ध (Zygomatic process)- जाइगोमेटिक प्रवर्ध जाइगोमेटिक अस्थि से जुड़ा होता है। तथा जाइगोमैटिक चाप(zygomatic arch) का निर्माण करता है।

चित्र : दायाँ कर्णमूल अस्थि (पार्श्व से देखने पर)

(v)

कनपटी वाली अस्थि (temporal bone)टैम्पोरोमेन्डीवुलर जोड़ द्वारा निचले जबड़े की अस्थि (Mandible) से जुड़ी होती है। तथा यह अस्थि गतिशील होती है।

(घ) अगल-बगल वाली अस्थि या भित्तिकास्थि (parietal bone) -ये अस्थियां संख्या में दो होती है। जो चपटी एवं पतली अस्थियां होती है। ये अस्थियां कपाल की पश्चात छत एवं पाश्र्व दीवारें बनाती है। ये दोनें अस्थियां जहां पर आपस में जुड़ती है उन्हें सेजिटल सूचर (sagittal sututer) कहते है। ये अि्स्थ्यां अग्रभाग में ललाट अस्थि (Frontol bone) से तथा पश्च भाग में सुपराऑक्सीपीटल अस्थि (superaoccipital bone) तथा इन्टर पैराइटल अस्थियों (Interparietal bones) से जुड़ी होती है। जहां पर ये अि्स्थ्यां ललाटस्थि से जुड़ती है उन्हें क्रोनल सूचर कहा जाता है। तथा जहां ये ऑक्सीपटल अस्थि (occipital bone) से जुड़ती है उन्हें लैम्बडॉयडल सूचर (Lamdoidal suture) कहते है। इसी तरह कनपटी वाली अस्थि के जोड़ वाले भाग को स्क्वेमस सूचर कहते है।

(ड़) चलनीदार अस्थि (Ethmoid bone)- यह अस्थि संख्या में एक होतह है तथा घनाकार होती है। यह खोपड़ी (skull) के अग्रभाग में उपस्थित होती है। ताकि नेत्र गुहा(obital cavity), नैसल सैप्टम (Nasal septum) और नासा गुहा (nasal cavity) की पाश्र्व दीवार को बनाने में मदद करती है यह अस्थि काफी मुलायम (delicate) होती है। तथा इसमें चलनी के समान (seive like)कई छिद्र (pore) होते है। इसका क्षेतिज सपाट भाग सीरीब्रीफोर्म प्लेट(Cribriform plate) कहलाता है जो नासागुहा की छत को बनाता है। तथा इसमें से होकर घ्रण तंत्रिका (Olfactory nerve) गुजरती है इसका लम्बवत भाग जिसे लम्बवत प्लेट (Perpendicular plate) कहते हैं यह प्लैट नैसल सेप्टम (Nasal septum) का ऊपरी भाग बनाता है।

चित्र : चलनीदार (एथमायॅड) अस्थि

(च) ललाटस्थि (frontal bone)-यह अस्थि भी संख्या में एक होती है। यह अस्थि लम्बी तथा युग्मित होती है जो खोपड़ी की अग्र छत (anterior roof) को बनाती है तथा ललाट (Forehead) तक फैली रहती है ।फ्रोन्टल सूचन द्वारा यह दो पैराइटल अस्थियों द्वारा जुड़ी होती है यह अस्थि बाहरी एवं पाश्र्व प्रवर्ध बनाती है जिसे सुपराआरबिटल प्रवर्ध(supraorbital process) कहते है। यह नासिका गुहा (nasal cavity) एवं नेत्र कोटरों के ठीक ऊपर तथा इस अस्थि के ठीक नीचे हवा से भरी हुई दो गुहिकाऐं या सइनुसेस (cavities or sinuses) होती है जो रोमिल श्लेष्मिक झिल्ली (ciliated mucous membrane) द्वारा स्तरित रहती है। तथा नासा गुहा में जाकर खुलती है।

यह अस्थि अग्र भाग में नासास्थि (nasal bone) पश्च भाग में पैराइटल तथा अधर भाग में ऑरबिटोस्फीनॉयड (orbitsphenoid) अस्थि से जुड़ी होती है।

आनन अस्थियां(चेहरे की अस्थियां)

चेहरा(face)- चेहरे का कंकाल 14 अस्थियों के मिलने से बना होता है। यह खोपड़ी के ठीक नीचे आगे की ओर अवस्थित होता है। चेहरे में ही ललाटस्थि होती है जिसका वर्णन पूर्व में ही कर चुके है। ये अि्स्यों संख्या के आधार पर निम्न प्रकार से है-

(क) गाल की अस्थियां या जाइगोमेटिक अस्थि (Cheek bone or zygomatic bone)

(ख) ऊपरी जबड़े की हड्डियां (upper jaw or maxilla)

(ग) नासास्थि (nasal bone)

(घ) आंसूबलीअस्थियां (lachrymal bone)

(ड़) वोमर(Vomar)

(च) तालू की अस्थियां (palatine bone)

(छ) भीतरी नाक की अस्थियां (Turbinated bones)

(ज) निचले जबड़े की अस्थियां (Manible bone)

(क) गाल की अस्थियां या जाइगोमेटिक अस्थि (Cheek bone or zygomatic bone)- ये अस्थियं संख्या में दो होती है तथा यह गाल के उभरे हुए भाग को बनाती है ये अस्थियां चौकोर होती है ये गाल को एक निश्चित आकार प्रदान करने साथ साथ नेत्र कोटर (Orbital cavities) के बगलवाली दीवार तथा सतह के कुछ भाग को बनाती है। सामने से यह अस्थि जम्भिका (Maxilae) से आकर मिल जाती है।

चित्र : कपोलास्थि (जाइगोमैटिक अस्थि)

(ख) ऊपरी जबड़े की हड्डियां (upper jaw or maxilla)- ये अस्थियां भी संख्या में दो होती है जो मुंह की छत का कुछ भाग तथा ऊपरी जबड़ों का निर्माण करती है प्रारंभ में ऊपरी जबड़ों का उद्भव (Origin) दो अस्थियों के मिलने से होता है परन्तु बाद में ये दोनों अस्थियां आपस में मिलकर एक हो जाती है। ये अस्थियां मुंह की छत का अग्रभाग, नासागुहा (nasal cavities) के बगलवाली दीवार तथा नेत्र कोटर के सतह का कुछ

चित्र : उपरी जबड़े की अस्थि (मैक्सिला)

चित्र- उपरी जबड़े की अस्थि।

भाग भी बनाती है। उपरी जबड़े के निचले किनारे पर दंत कोष बने होते है। जिनसे होकर कृतंक (Incisors), रदनक (canine), प्रर्चणवक (premolar) तथा चवर्णक(molar) दंत निकलते है। प्रत्येक जबड़े के किनारे पर एक बड़ा वायु साइनस पाया जाता है जिसे मेक्सीलरी साइनस (maxillary sinus) कहते है। यह रोमिल श्लेष्मिक झिल्ली (ciliated mucus membrane) द्वारा आच्छादित रहता है। मैक्सीलरी सइनस नासा गुहा (nasal cavities) में आकर खुलता ह। ये अस्थियां अचल होती है।

(ग) नासास्थि (nasal bone)- ये अस्थियां संख्या में दो होती है तथा छोटी एवं चौड़ी होती है। यह नाक के उपरी भाग का एक बड़ा हिस्सा बनाती है ये अस्थियां

चित्र : नासास्थि (बाह्य एवं पार्श्व सतह)

पाश्र्व दिशा में प्रीमैक्सिला(Premaxilla) तथा पश्च में ललाटस्थि (frontal bone) से जुड़ी होती है। अग्र दिशा में ये बाह्य नासाछिद्र (external nasal opening) के उपरी भाग को बनाती है।

(घ) आंसूबली अस्थियां (lachrymal bone)- ये अस्थियां छोटी एवं संख्या में दो होती है तथा नाक के उपरी भाग को बनाती है व उन्हें एक आकार प्रदान करती है।ये अस्थियां नासास्थि का प्श्च एवं पार्श् भाग बनाती है तथा नेत्र कोटर (Orbital cavities) की मध्य दीवार (Medial wall) को बनाती है। इसके अंदर हवा के बड़े बड़े स्थान है जो नाक से मिले होते है। इसी से होकर आंसूबली वाहिनी (Nasolacrimal duct)गुजरती है जिससे रोने पर आंसू नाक के द्वारा बाहर निकलते है।

चित्र : अश्रुवास्थि (आँसूबली अस्थि)

(ड़) वोमर(Vomar)-यह एक पतली परन्तु चौडी अस्थि है जो आगे की और बढ़कर कठोर तालू (Hard plate) के मध्य भाग से निकलती है तथा नैसल सेप्टम (nasal septum) के मुख्य भाग को बनाती है यह अस्थि संख्या में एक होती है।

चित्र- वोमर अस्थि

(च) तालू की अस्थियां (palatine bone) -ये अस्थियां अंग्रेजी के ''L'' अक्षर जैसी होती है। ये तालू का पिछला हिस्सा बनाती है इसका क्षेतिज भाग (Hrizontal part) युग्मित होकर कठोर तालू (hard plate) का पश्च भाग बनाता है। इसका अनुलम्ब भाग (Perpendicular part) उपर की और बढ़कर नासा गुहा (nasal cavities) के पाश्र्व भाग को बनाता है। इसके साथ ही ये अस्थियां नेत्र कोटर के कुछ भाग को बनाती है। ये अस्थियां संख्या में दो होती है।

(छ) भीतरी नाक की अस्थियां (Turbinated bones)-ये अस्थियां भी संख्या में दो होती है तथा प्रत्येक टरबिनेटेड अस्थि स्क्रोल के आकार की (Scroll shaped) होती है जो नासागुहा की पाश्र्व दीवार को बनाती है टरबिनेटेड अस्थि को इनफीरियर कोनका (Inferiour chonchae) भी कहा जाता है। सुपीरियर और मध्य कोनका (superior and middle chonchae) चलनीदार अस्थि (ethmoid bone) का ही एक हिस्सा है।

चित्र : टरबिनेटेड अस्थि (भीतरी नाक की अस्थि)

(ज) निचले जबड़े की अस्थियां या अधोहनु (Lower jaw or mandible) - से अस्थियां चेहरे की सबसे बड़ी एवं मजबूत अस्थि है । यह दो अध्दाशों का बना होता है। जो अग्र भाग में एक-दूसरे से एक सिम्फाइसिस (symphysis) द्वारा जुड़ा होता है। प्रत्येक अध्दाशं दंतिकास्थि (Dentray bone) का बना होता है। डेन्ट्री (Dentry) अग्र भाग में नुकीली होती है परन्तु इसका पिछला हिस्सा पाश्र्व में जाकर चपटा एंवं चौड़ा हो जाता है इसकी पृष्ठ सीमा की चोटी पर एक गोल कोन्डाइल (Condyle) होता है जो खोपड़ी की स्क्वामोजल अस्थि की ग्लेनॉइड गुहिका (Glanoid cavity) से मिला होता है। कोन्डाइल के अग्र भाग (Anterior part) में एक कोरोनॉइड प्रवर्ध (coronoid process) होता है तथा पश्च में एक कोणीय प्रवर्ध (Angular Process) होता है।

चित्र : निचले जबड़े की अस्थियाँ या मैन्डीबुल (अधोहनु पार्श्व से)

निचले जबड़ों में ही 16 दांतों के लिए 16 छेद होते है तथा इन्हीं छेदों से कृतंक (Incisors) रदनक(Canine), प्रचवर्णक (Premolars)तथा चवर्णक (Molar) दांत निकलते है। यही एक ऐसी अस्थि है जो चलती है तथा इसी अस्थि की सहायता से दांत भोज्य पदाथोर्ं को खूब अच्छी तरह पीसता है। यह अस्थि संख्या में एक होती है।

इन अस्थियों के अतिरिक्त मानव शरीर में एक और अस्थि है जिसे हॉयड अस्थि (Hyoid bone) कहते है यह अस्थि घोड़े के नाल के जैसी(Horse-shoe-shaped) होती है यह अस्थि गले में स्वरयंत्र (Larynx) के ठीक उपर तथा निचले जबड़े के ठीक नीचे उपस्थित होती है। इस अस्थि की संधि किसी अन्य अस्थि से नहीं होती है बल्कि यह कर्णपट्ट अस्थि (Temporal Bone) से लिगामेन्ट द्वारा जुड़ी होती हैं इसके साथ ही यह अस्थि जीभ की सतह से भी जुड़ी रहती है।

कंठिकास्थि या हायवॉयड अस्थि(Hyoid bone)- कंठिकास्थि घोड़े की नाल के आकार की (Horse-Shoe-Shaped Bone)है यह स्वर यंत्र(Larynx) के ठीक उपर तथा निचले जबड़े की अस्थि, मैन्डिबुल(Mandible) के नीचे अवस्थित रहता है।

कंठिका अस्थि एक छोटी-सी-पतली सी अस्थि है। इसका आकार अंग्रेजी के ''यू'' अक्षर से मिलता जुलता है। यह एक स्वतंत्र अस्थि है।

यद्यपि कंठिका अस्थि एक स्वतंत्र अस्थि है, परन्तु फिर भी यह कई तरफ से पेशियों तथा दृढ स्नायुकों (Strong Ligament) से कसकर बंधी रहती है। इस कारण यह सदैव ही अपने स्थान पर टिकी रहती है। साथ ही दूसरे अंगों को सहारा प्रदान करती है। इस अस्थि को शंखास्थि (Temporal Bone) के शर प्रवर्ध (styloid Process) के सहारे दृढ़ स्नायु इसे अच्छी प्रकार से बांधे रखती है।

चित्र : कंठिका अस्थि (हायवॉयड अस्थि)

कंठिका अस्थि के मध्य में मुख्य गात्र(Main body)होता है मुख्य गात्र के दोनों ओर लम्बे-लम्बे प्रवर्ध जुड़े रहते है। इन प्रवर्धों को दीर्घकरण प्रवर्ध या वृहत श्रंग (Elngated Process or Horn) कहते है। इसी तरह मुख्य गति से दोनों ओर एक-एक छोटे प्रवर्ध निकले रहते है। जो लघु श्रृंग (Lesser Horn)कहलाते है।

कंठिका अस्थि से जीभ की, ग्रसनी की तथा ग्रीवा की तथा अन्य कई छोटी-छोटी पेशियां भी बंधी रहती है।

कशेरूक दण्ड या रीढ़ की हड्डी

(Vertebral Column)

रीढ़ की हड्डियां (Vertebral column) धड़ के पिछले हिस्से में उपस्थित होती है तथा शरीर को एक मजबूत आधार प्रदान करती है। ये अस्थियां संख्या में 33 है जिनमें से 24 अस्थियां ऐसी है जो चलती है। इनकी सजावट बिल्कुल सीधी न होकर तीन जगहों में टेढ़ी है। जिससे चार भाग बनते है। सबसे उपर गर्दन (Neck) के पास 7 कशेरूकाऐं (vertebrae) हैं जिन्हें ग्रीवा प्रदेश की कशेरूकाऐं (Cervical vertebrae) कहते है। इसके बाद 12 कशेरूकाऐं वक्ष प्रदेश की कशेरूकाऐं (Thracic vertebrae) कहते है। कटि प्रदेश या कमरवाले प्रदेश में (Lumber region) में 5 कशेरूकाऐं होती है। तथा इसके बाद 5 अस्थियां आपस में संयुक्त होकर त्रिक प्रदेश (sacrum region) का भाग बनाती है सबसे अंत में पूंछ वाली कशेरूकाऐं(Coccygeal vertebrae) होती है जो 4 अस्थियों के मिलने से बनती है। इस प्रकार कुछ लेखकों के द्वारा कशेरूक दण्ड की अस्थियों को निम्न पांच मुख्य प्रदेशों में बांटा गया है।

(i) ग्रीवा प्रदेश की कशेरूकाऐं (Cervical vertebrae) 7
(ii) वक्ष प्रदेश की कशेरूकाऐं (Vertebrae of thoracic region)12
(iii) कटि प्रदेश की कशेरूकाऐं (vertebrae of lumbar region) 5
(iv) त्रिक प्रदेश की कशेरूकाऐं (vertebrae of sacral region) 5
(v) पूंछ प्रदेश की कशेरूकाऐं (vertebrae of coccygeal region) 4

कुल अस्थियां = 33

इन 33 अस्थियों में से चलने वाली अस्थियां 24 होती हैं तथा 9 अस्थियां ऐसी हैं जो नहीं चलती है।

24 चलने वाली अस्थियां तीन प्रान्तों में सजी रहती है। इनमें से 7 ग्रीवा प्रदेश में, 12 वक्ष प्रदेश में , तथा 5 कमर प्रदेश की अस्थियां चलती है। इन्हीं अस्थियों के चलने से हमारे शरीर में लचक पैदा होती है। तथा हमारा अंग अंग नृत्य कर उठता है। अगर ये अस्थियां न चलें तो नृत्य करना, कमर झुकाना, गर्दन को हिलाना डुलाना, पेट के बल झुकना संभवन हों।

त्रिक प्रदेश (sacral region) तथा पूंछ प्रदेश वाली (coccygeal region) अस्थियां बचपन में तो अलग अलग होती है। तरन्तु बाद में जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है आपसे में जुड़कर स्वतंत्र अस्थियों का निर्माण करती है। रीढ बनाने वाली प्रत्येक हड्डी की कशेरूका (vertebrae) कहते है। पूंछ प्रदेश वाली अस्थि का निर्माण 4 अस्थियों के मिलने से होता है। जो आपस में संयुक्त होकर एक ही अस्थि कोसिक्स(Cocyx) का निर्माण करती है। यही पूंछ वाली अस्थि यह दर्शाती है कि मानव का विकास बंदरें से हुआ है जिसमें अब यह पूंछ धीरे धीरे लुप्त हो गयी है।

(चित्र-कशेरूक दंड)

कशेरूक दंड की विशेषता

(Characteristics of a typical vertebrae)

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि रीढ बनाने वाली प्रत्येक हड्डी को कशेरूक (vertebrae) कहते है। प्रत्येक कशेरूका का कशेरूक काय (the body) आगे की और अवस्थित होता है कशैरूका का आकार इनकी

अवस्थिति पर निर्भर करता है ग्रीवा प्रदेश की कशेरूकाऐं छौटी तथा कमर प्रदेश वाली कशेरूकाऐं बड़े आकार की होती है।

प्रत्येक कशेरूका के बीच में एक गोलाकार छिद्र होता है। जिसके कारण ये अंगूठी के समान (Ring like) दिखाई देती है। इन मोहरों के बीच में रेशेदार मुलायम हड्डियों की गद्दी लगी होती है। जिससे उछलने कूदने में आसानी होती है। इनकी आकृति नगदार अंगूंठी में कुछ हद तक मिलती जुलती है। इसका बीच वाला भाग खाली रहता है। प्रत्येक कशेरूका एक-दूसरे से जुड़ा हुआ रहता है कि इनके बीच में एक नली सी बन जाती है जिससे होकर स्पाइनल कोर्ड (spinal cord) खोपड़ी (skull) से निकल कर कटि कशेरूका (Lumbar verebrae) के सामने तक जाती है।

(i) ग्रीवा प्रदेश की कशेरूका (cervical vertebrae)- कशेरूका के ऊपर से नीचे के पहली सात कशेरूकाऐं ग्रीवा प्रदेश की कशेरूकाऐं कहलाती है। ये कशेरूकाऐं आकार में छोटी होती है। पहली कशेरूका को शीर्षधर कशेरूका या एटलस (atlas) कहते है। इसी कशेरूका पर खोपड़ी टिकी रहती है। ग्रीवा प्रदेश की कशेरूकाओं में निम्न कशेरूकाऐं मुख्य है-

(क) शीर्षधर या एटलस कशेरूका (Atlas vertebrae)- यह ग्रीवा प्रदेश की पहली कशेरूका (First vertebrae of cervical region) है। इसका आकार अंगूठी से मिलता जुलता है। जिसमें दो छोटे-छोटे अनुप्रस्थ प्रवर्ध (Transverse processes) होते है। अनुप्रस्थ प्रवर्ध तल के आधार पर तल वर्टीबारटिरियल कैनेल (vertebarterial canal)के लिए छिद्र होते है। वर्टीबरल फोरामेन (Vertibral foramen) का अग्रभाग अक्ष कशेरूका (axis vertebrae) के ओडोन्टॉयड प्रवर्ध (Odontid process) द्वारा जुड़ा रहता है। तथा यह

चित्र : एटलस कशेरुका (अग्र सतह)

अनप्रस्थ लिगामेन्ट (Transverse ligament) द्वारा संबंधित रहता है। इस प्रकार ओडोन्टॉयड प्रवर्ध एटलस कशेरूका के बॉडी (body) को दर्शाता है। वटीबरल फेरामेन (vertibral foramen) के पश्च भाग से होकर स्पाइनल कोर्ड(spinal cord) गुजरता है। तथा इसके अग्र भाग पर दो संधि तल (Facests) होते है। जो खोपड़ी के ऑक्सीपीटल कोन्डाइल (Occipital cndyle) से संधि करते है। इन्हीं संधि स्थलों पर एटलस कशेरूका खोपड़ी से जुड़ी होती है। तथा इसी पर सिर का इधर उधर घूमना एवं हिलना डुलना निर्भर करता है।

(ख) अक्ष कशेरूका (Axis vertebrae)-यह कशेरूका ग्रीवा प्रदेश की दूसरी कशेरूका है। इसकी बॉडी(body) छोटी होती है। इसका अग्रभाग नुकीला होता है जिसे ओडोन्टॉयड प्रवर्ध (Odontoid process) कहते है। इसी प्रवर्ध की सहायता से ग्रीवा प्रदेश की पहली कशेरूका एटलस जुड़ी होती है।

इसका अग्र भाग तीनों तलों द्वारा एटलस कशेरूका से संधि करता है। इसी संधि के कारण खोपड़ी अगल बगल अथवा बांये दांये दिशा में घूमती है।

चित्र: (A) अक्ष कशेरूका (अग्र सतह)

चित्र: (B) अक्ष कशेरूका (ऊपर से देखने पर)

(ग) प्ररूपी ग्रीवा कशेरूकाऐं (Typical cervical vertebrae) - शीर्षधर तथा अक्ष कशेरूका (Atlas and axis vertebrae) को छोड़कर शेष कशेरूकाओं को प्ररूपी सरवाइकल कशेरूकाऐं (Typical cervical vertebrae) कहते है। प्रत्येक प्ररूपी ग्रीवा कशेरूका की न्यूरल स्पाइन (Neural spine) नुकीली एवं छोटी होती है।

(2) वक्षीय प्रदेश की कशेरूका(thoracic vertebrae)- ग्रीवा कशेरूकाओं के ठीक नीचे की और 12 कशेरूकाऐं उपस्थित होती है जिन्हें वक्षीय प्रदेश की कशेरूकाऐं कहते है। ये आकार में कुछ बड़ी होती है। इनमें बॉडी तथा अनुप्रस्थ प्रवर्ध होते है। इनके अनुप्रस्थ प्रवर्ध छोटे एवं चपटे होते है। जिन पर पसलियां से संधि हेतु संधि तल (Facet) लगे होते है। इन्हीं संधि तलों से पसलियां (Ribs) जुड़ी होती है।

गात्र
अनुप्रस्थ
प्रवर्ध
कशेरूक
धमनी रंध्र
पेडीसील
लैमिना
कशेरूक
रंध्रक
द्विशाखा कंटक
कंटक प्रवर्ध
(A)

चित्र: (A) तथा (B) : वक्ष प्रदेश की कशेरूका

(4) कटि या कमर प्रदेश की कशेरूकाऐं (Lumber vertbrae) -ये कशेरूकाऐं संख्या में 5 होती है। प्रत्येक कशेरूका मोटी, मजबूत, बड़ी एवं प्रवर्ध युक्त होती है। इन्हीं कशेरूकाऐं पर शरीर का पूरा भार रहता है। अत: ये कशेरूकाऐं शरीर के भार को वहन करने की क्षमता रखती है।

रखती हैं।

चित्र : कटि प्रदेश की कशेरुका

(5) त्रिक कशेरूकाऐं (Sacral vertebrae) -ये कशेरूकाऐं भी संख्या में पांच होती हैं तथा त्रिकास्थि (sacrum) का निर्माण करती है। अय अस्थि पांच कशेरूकाओं के मिलने से बनती है। इसका ऊपरी भाग कटि प्रदेश (Lumbar vertebrae) के 5 वें कशेरूका से संधि करता है। तथा इसका दांया एवं बांया

चित्र: त्रिकास्थि एवं अनुत्रिकास्थि

सिरा नितम्बास्थि (Hip bone) से संधि करता है। इसमें भी वर्टीबरल फेरामेन (vertebral foramen) होता है। जिससे होकर तंत्रिकाऐं (nervus) गुजरती है। सेक्रम अस्थि ही रीढ़ की हड्डी का पूरा बोझढाती है। तथा स्वंय पैर की हड्डियों पर टिकी होती है। सेक्रम का अनुप्रस्थ प्रवर्ध चौड़ा एवं बड़ा होता है। इसमें श्रोणि मेखला (Pelvic girdle) की इलियम (Ilium) हेतु संधि तल भी उपस्थित होता है।

(6) अनुत्रिक कशेरूका (coccygeal vertebrae) -रीढ़ की हड्डी का अंतिम सिरा, अनुत्रिक कशेरूका कहलाती है। यह चार अस्थियों के आपसी संयोग से बनती है। यह छोटी एंव तिकोनी अस्थि है। इसका चौड़ा भाग सैक्रम के साथ संधि करता है।

(चित्र: अनुत्रिकास्थि)

कशेरूक दण्ड या रीढ़ की हड्डी के कार्य
(Functions of Vertebral Column)

(i) कशेरूक दण्ड शरीर में एक शक्तिशाली स्तम्भ (pilar) की तरह कार्य करता है। अत: यह शरीर के पीठ वाले भाग में एक अस्थि नली (Bone tube) का निर्माण करता है।

(ii) रीढ़ की हड्डी पर ही खोपड़ी (skull) टिकी रहती है। तथा इसी से होकर मेरू रज्जु (Spinal cord) गुजरता है। अत: यह मेरू रज्जु को एक मजबूत अस्थि आवरण प्रदान करता है जिससे मेरू रज्जु Spinal cord) पूरी तरह सुरक्षित रह सके। इस तरह यह मेरू रज्जु को दुर्घटना, शॉक, खरोंच, रगड़ इत्यादि से सुरक्षा प्रदान करता है।

(iii) कशेरूक दण्ड का बीच वाला भाग खोखला होता है। जिससे होकर रक्त वाहिनियां (Blood vessels) लिम्फ वाहिनियां (Lymph vessels)तंत्रिकाऐं (Nerves) इत्यादि गुजरती है।

(iv) रीढ़ की हड्डी से ही पसलियां जुड़ी होती है। इसके अलावा इससे गर्दन, छाती, एवं पीठ की मांसपेशियां भली प्रकार जुड़ी रहती है।

(v) कशेरूक दण्ड की प्रत्येक कशेरूका आपस में इस प्रकार से जुड़ी होती है। कि हमारा शरीर आसानी से हिल डुल सके। यह सम्पूर्ण शरीर में एक लचक प्रदान करती है। इनके इन्हीं गुणों के कारण हमारा नृत्य करना संभव है।

रीढ़ की हड्डीयां ही धड़ का मुख्य भाग बनाती है तथा इसी से कंधे, कूल्हे, ऊपरी बांह, टांगे इत्यादि की अस्थियां जुड़ी होती है।

वक्ष (Thorax)

वक्ष का अस्थि पंजर कठोर तथा मुलायम अस्थियों का बना हुआ एक पिंजड़ा जैसा (cage like) खोल होता है जिसे थोरेसिक केज (Thoracic cage) कहते है। इसी थोरेसिक केज में 1 स्टरनम (Sternum) 12 जोड़ी पसलियां (Ribs) तथा 12 वक्ष प्रदेश की कशेरूकाऐं (Thracic vertebrae) उपस्थित होती है।

उरोस्थि या स्टरनम (sternum)

स्टरनम (Sternum) वक्ष की एक अस्थि है जिसकी लम्बाई 6-7 इंच होती है ताि ा इसकी संख्या एक है। यह एक चौड़ी अस्थि है जो छाती के ठीक सामने, मध्यम में अस्थित होता है। इसका ऊपरी हिस्सा चौड़ा परन्तु निचला हिस्सा पतला होता है। इसके ऊपरी चौड़े एवं अग्र भाग को मैनुब्रीयम (manubrium) कहते है। जो क्लेविकल (clavicle) से संधि करता है, तथा इसका मध्य भाग पसलियों से जुड़ा रहता है। इसमें जिफॉयड प्रवर्ध (Xiphoid prcess)होता है। जिससे वक्षोदर पेशी (Diaphram) जुड़ी होती है।

थोरेसिक केज हृदय और फेफड़े जैसे जरूरी कोमल अंगो की रगड़, घर्षण, चोट शॉक दुर्घटना इत्यादि से सुरक्षा करता है।

चित्र: उरोस्थि से जुड़ी हुई पर्शुका उपास्थि

पसलियां (Ribs) : वक्ष में 12 जोड़ी पसलियां होती है जो लचक दार एवं पतली होती है। तथा पीछे की और रीढ की हड्डियों से जुड़ी होती है। इसमें प्रथम 10 जोड़ी पसलियां स्टरनम के अग्र भाग से कोएस्टल कार्टिलेज (coastal cartilate) द्वारा जुड़ी होती है। तथा दो जोड़ी पसलियां किसी भी अस्थि से संधी नहीं करती है। अत: ये अलग रहती है जिसे मुक्त पसलियां (Free rubs) भी कहते है। इन पसलियों के बीच की जगह एक विशेष प्रकार की पेशियों से भरी होती है जिन्हें इन्टर कोस्टल पेशियां (Inter castal muscles) कहते है। पसलियां काफी लचकदार होती है। यह कारण है कि सांस लेते वक्त ये पसलियां उठती है तथा संसा छोड़ते वक्त गिरती है। परन्तु प्रथम पसली सांस लेन अथवा छोड़ने पर न तो उठती ही है और न ही गिरती है।

चित्र : एक पर्शुका

अनुबंधी कंकाल (Appendicular Skeleton)

अनुबंधी कंकाल के अन्तर्गत अंस मेखला (pectoral girdle)तथा श्रोणी मेखला (Pelvic girdle) आती है।

अंसमेखला तथा ऊपरी भुजा

(Pectoral girdle and upper limb)

प्रत्येक अंसमेखला में निम्न भाग होते है:-

संख्या

हंसेली या कॉलर बोन (Cllar bone) :	1
पखुरा या कंधे की हड्डियां (Scapulla) :	1

प्रत्येक हाथ में 30 अस्थियां होती है जिनकी संख्या निम्नानुसार है।

	संख्या
बांह के ऊपरी भाग की अस्थि (Humerus) :	1
बांह के निचले भाग की बाहरी अस्थि(Radius) :	1
बांह के निचले भाग की भीतरी अस्थि(Ulna) :	1
कलाई की अस्थि (Carpal) :	8
हथेली की अस्थि (Meta Carpal) :	5
अंगुली की अस्थि (Phalanges) :	14
कुल अस्थियां:	30

इस तरह दोनों हाथों में मेखलाओं को छोड़कर 60 अस्थियां उपस्थित होती है।

(i) पखुरा या कंधे की हड्डियां (Scapulla) : पंखुरा की अस्थि तिकोनी और चपटी होती है जो छाती के पश्च भाग में अवस्थित होती है। तथा पसलियों से मांसपेशियों द्वारा अलग रहती है। ये अस्थि संख्या में दो होती है तथा दोनों और एक बांये और दूसरी दांये और अवस्थित होती है। पखुरा के आधार शीर्ष पर एक अंस उलूखल (Glenoid cavity) होती है जिससे कि ह्यूमरस (Humerus) का शीर्ष (हेड) जुड़ा रहता है तथा दोनों मिलकर कंधे का जोड़(shoulder joint) बनाते है। इन्हीं के द्वारा बाहु धड़ के साथ जुड़ा रहता है।

चित्र : स्कंधास्थि (पश्च सतह)

(ii) हंसली (Cllar bone) : हंसली एक लम्बी अस्थि है जिसका आकार अंग्रेजी के 'j' अक्षर के जैसा होता है। इसमें दोहरा वक्र (double curve) होता है जिससे ये अस्थियं एक और छाती की हड्डी (Sternum)से तथा दूसरी कंधे की हड्डी (scapula)से जुड़ी होती है। सिर्फ हंसली ही ऊपरी बांह (Upper extremity)तथा अक्ष कंकाल (Axial skeleton)के बीच एक अस्थि लिंक (Bony link) प्रदान करता है।

(चित्र: हसंली या क्लैकिल अस्थि)

(iii) बांह के उपरी भाग की हड्डी, ह्यूमरस (Humerus) : बांह के उपरी भाग की अस्थि ह्यूमरस (Humerus) कहलाती है। ये अस्थि संख्या में दो होती है तथा एक दांये व दूसरी बांये और अस्थित होती है। ह्यूमरस का सिर कंधे की अस्थि में उपस्थित अंस उलूखल (glenoid cavity) द्वारा कंधे से जुड़ा रहता है। तथा कंधे का जोड़ (shoulder joint) बनाता है। ह्यूमरस का दूसरा सिरा रेडियस तथा अल्ना (radius and ulna) से जुड़ा रहता है। और कुहनी का जोड़ (Elbow joint) बनाता है।

चित्र : ह्यूमरस, (अग्र सतह)

(iv) बांह के निचले भाग की बाहरी और भीतरी अस्थि या रेडियस और अल्ना (Radius and ulna) - बांह के निचले भाग की बाहरी अस्थि रेडियस (radius) तथा भीतरी अस्थि अल्ना (ulna) कहलाती है। ये दोनों की अस्थियां कलाई और कुहनी के बीच अवस्थित होती है रेडियस अंगूठे की ओर तथा अल्ना कानी उंगली (Little finger) की और अवस्थित होती है। रेडियस अस्थि कलाई के पास अधिक चौड़ी होती है। तथा अल्ना अस्थि की चौड़ाई कुहनी के पास अधिक होती है। ये अस्थियां संख्या में चार होती हैं जो दो-दो की संख्या में दोनों भुजाओं में अवस्थित होती है।

चित्र : रेडियस तथा अल्ना (अग्र सतह)

(v) कलाई की हड्डियां (carpal)- ये अस्थियां कलाई का निर्माण करती है तथा संख्या में 16 होती है। ये 8-8 की संख्या में दोनों हाथों की कलाईयों में उपस्थित होती है। ये अस्थियां दोनों किनारों में आपस में सजाकर इस तरह से बंधी रहती है कि कलाईयों को आजादी से इधर उधर घुमाया जा सके। ये अस्थियां आपस में लिगामेन्ट (ligaments) द्वारा जुड़ी रहती है जिससे कलाइयों को हिलाने डुलाने में आसानी होती है।

(चित्र- हाथ की अस्थियां)

(कलाई की अस्थि, करभास्थियां तथा अंगुन्या स्थियां

(vi) हथेली की अस्थियां(Metacarpals)- हथेली की अस्थियां संख्या में 10 होती हैं तथा प्रत्येक हथेली में 5-5 की संख्या में इस तरह से व्यवस्थित रहती है कि ये अस्थियां हथेली को एक निश्चित आकार प्रदान कर सकें। ये अस्थियां एक और कलाई की हड्डियों (carpal) से तथा दूसरी और अंगुली की हड्डियों (phalanges) से जुड़ी रहती है।

(vii) अंगुली की हड्डियां (phalanges)- ये अस्थियां 28 होती है। जो दोनों हाथों की अंगुलियों में 14-14 की संख्या के अनुसार इस प्रकार से सजी रहती है कि उंगलियों को आसानी से मोड़ा जा सके। ये अंगूठे में

दो तथा शेष 8 अंगुलियों में तीन के हिसाब से व्यवस्थित होती है। इन्हीं हड्डियों की सहायता से अंगुलियां मुड़ती एंव झुकती है।

श्रोणि मेखला और निचली भुजा की अस्थियां

(Pelvic girldle and Lower Limb)

श्रोणि मेखला और निचली भुजा की अस्थियां

(Pelvic girldle and Lower Limb)

श्रोणि मेखला में इन्नोमिनेट अस्थि (Innominate bone) तथा एक सैक्रम (Secrum) होती है ।

निचली शाखा या पैर की अस्थियों में निम्न अस्थियां उपस्थित होती है।

		संख्या
जांघ की अस्थियां (Femur)	-	2
टीबिया(Tibia)	-	2
फिबुला (Fibula)	-	2
टेहुना की हड्डियां या पटेला(Pattela)	-	2
घुट्टी या तलवे की हड्डियां (Tarasal Bones)	-	14
सुपली की हड्डियां (Metatarsals)	-	10
पैर की उंगली की हड्डियां (Phalanges)	-	28
कुल अस्थियां	-	60

इस तरह पैर की अस्थियों में 60 अस्थियां उपस्थित होती है।

(i) इन्नोमिनेट या कूल्हे की अस्थियां (Innominate r Hip bones)- श्रोणि मेखला में ये दो अस्थियां कूल्हे की अस्थियां होती है जो तीन अस्थियों-इलियम (illium), इश्चियम(Ischium), तथा प्यूबिस (Pubis) के मिलने से बनती है यह सैक्रम से जुड़ी हुई पेर के ऊपर की अस्थियं है। इलियम एक बड़ी पंख रूपी, कठोर, चौड़ी अस्थि है जो श्रोणि मेखला (Pelvic girdle) का ऊपरी भाग बनाती है। प्यूबिस अस्थि (Pubis bone) कूल्हे की अस्थि का अग्र भाग तथा इश्चियम पश्च भाग बनाती है।

इस प्रकार यह गुदा प्रान्त की सबसे चौडी अस्थि है जिसमें मलाशय, मूत्राशय, एवं गर्भाशय सुरक्षित रहते है। कूल्हे की अस्थि ही पूरे रीढ का बोझ ढोते है तथा स्वयं पैर की हड्डियों पर लदे होते है।

(ii) श्रोणि (Pelvic)- श्रोणि मेखला (Pelvic girdle) दो समान अध्दाशों, कूल्हे की अस्थियों की बनी होती है। ये दोनों अध्दाश मध्य रेखा में अग्र भाग में एक दूसरे से प्यूबिक सिम्फाइसिस (Public symphysis) द्वारा जुड़े रहेते है। तथा पश्च भाग में सैक्रोइलिएक बंधन (Sacroiliac joints) द्वारा सैक्रम से जुड़े होते है।

चित्र : इनोमिनेट (कूल्हे की अस्थि) (पार्श्व से)

(iii) जांघ की अस्थियां (Femur)-जांघ की अस्थि फीमर (Femur) कहलाती है यह संख्या में दो होती है तथा शरीर की सबसे लम्बी एवं मजबूत हड्डी (long and strong bone) है। यह अस्थि जांघ का कंकाल बनाती है। इसका समीपस्थ सिरा (Prximal end) शीर्ष (Head) तथा दूसरा सिरा (Distal end) गिरारी रूपी (Pulley like) सिरे की बनी होती है। इसका शीर्ष (Head) श्रोणि मेखला (Pelvic girldle) के एसिटाबुलम (Acetabulum) से संधि करता है तथा कूल्हे का जोड़ (Hip joint) बनाता है।

(Head) और मेखला (Pelvic girdle) के एसटाबुलम

चित्र : जघनास्थि एवं सम्बन्धित अंग

फीमर (Fimar) का दूरस्थ सिरा (Distal end) टीबिया फीबुला (Tibia fibula) से संधि करता है। तथा टेहुना का जोड़ (knee point) बनाता है। इसका दूरस्थ सिरा चौड़ा एवं तिकोना होता है जिसे पोप्लिटिएल सतह (Popliteal surface) कहते है। इसके दूरस्थ अन्त पर दो कन्द (condyles) होते है जिनके बीच एक खांच (groove) होता है। जिसे इन्टरकोन्डाइलर खांच (Intercondyler groove) कहते है। इसी खांच से टिबिया-फिबुला (Tibia fibula) संधि करता है तथा टेहुना का जोड़ (Knee Point) बनाता है।

चित्र : फीमर, (पश्च से)

चित्र:फीमर (पश्च)

(iv) टेहुना की हड्डियां(Pattela)- ये हड्डियां संख्या मे दो होती है। ये तिकोनी चपटी परन्तु पतली अस्थियां है। जो फीमर और टिबिया से जोड़ वाले स्थान पर सामने की तरफ एक ढाल की तरह कार्य करती है। तथा टेहुनों की चोटों इत्यादि से सुरक्षा करती है।

(v) टेहुना की नीचे की हड्डियां(Tibia and fibula)- ये अस्थियां संख्या में चार होती है, दो बायें तथा दो दायें पैर में। टिबिया टेहुना से प्रारम्भ होकर प्रत्येक घुड्डी के पास पैर के अंगूठे की तरफ आकर खत्म होती है। तथा फिबुला (Fibula) कानी उंगली के पास आकर खत्म होती है।

चित्र : टिबिया और फिबुला (अग्र से)

टिबिया -फिबुला (Tibia Fibula) का समीपस्थ सिरा(proximal end) फीमर (Femar) से तथा दूरस्थ सिरा (Distal end) घुट्टि की अस्थि (Tarsals) से संधि करता है।

टिबिया (Tibia)- इसके '' अन्तर्जघिका'' (tibiya) कहते है। यह दोनों पैरों में एक एक ही संख्या में उपस्थित होती है। इस प्रकार पैरों मे टिबिया की संख्या दो है। यह अस्थि अभिमध्य (Medial) की तरफ रहती है। यह एक लम्बी अस्थि है। तथा टांग से घुटने (knee) से लेकर तलवे (गुल्फ)(Tarsus Bone) एक अवस्थित रहती है। यह अस्थि ''फिबुला'' बिहर्जधिका से थोडी मोटी एवं मजबूत होती है। अन्तर्जधिंका (tibia) का अरी आंत सिरा ''अंगात'' (End rgans) चौड़ा होता है इसका एक सिरा शीर्ष कहलाता है। इसके शीर्ष पर दो कन्द (Condyles) होते है। ये दोनों कन्द है-1. अभिमध्य कन्द(Medial condyles) ताकि 2. पाश्र्व कंद (Lateral condyles)। इन्हीं स्थानों पर 'उरू अस्थि'(Femar) के कंद संधि बनाने के लिए संधि पृष्ठक होता है। प्रत्येक कंद से दो अध्र्द चन्द्राकार उपास्थियां (Semi-Lunar Cartilage) लगी होती है। निसे घुटने के जोड़ के निर्माण में सहायता मिलती है। दोनों कंद के बीच में अन्र्तकंद खांच (Intercodylar Notch) रहती है। पाश्र्व कंद (lateral condyle) के नीचे एक छोटा सा संधि पृष्ठक होता है। इसी से फिबुला का शीर्ष जुटता है।

टिबिया में दंड (shaft) होता है। दंड का निचला भाग कुछ कुछ गोलाकार एवं ऊपरी हिस्सा त्रिकोणाकार होता है। इस प्रकार दंड में तीन किनारे (Border) एवं तीन सतहें होती है। इसका अग्र किनारा(Anterir Border) एक अस्थि गंडक (Bone Tubersity) से आरम्भ होता है। इसको घुटने के स्नायु (knee ligament) तथा चुतर्शिरस्का पेशी (Fourcips Muscles) की कंडराऐं (Tendons) जुड़ती है। इसकी मध्य सतह चिकनी होती है। पश्च सतह रूखड़ा होती है जिसका उपरी भाग त्रिकोणाकार होता है। रूखड़ा भाग पेशियों को बांधने का काम करता है। अन्तर्जधिंका (tibia) का निचला अंत सिरा अंगात (End Organs) थोड़ा फैला रहता है। इनमें भी संधि पृष्ठक होते है। यह भाग घुटिकास्थि (Talus) से संधि करता है और गुल्फ यादिन तलवे की संधि (Ankle Joint) के निर्माण में भाग लेता है। टिबिया शरीर भार को पृथ्ी तक पारेषित (transmit)करती है।

2. फिबुला (Fibula)- इसे 'बहिर्जधिका'' (Fibula) कहते है। यह टिबिया की तरह दोनों पैरो में एक एक की संख्या में उपस्थित रहता है। इसकी स्थिति प्रत्येक पेरों में बाहर की और (पाश्र्व की तरफ) रहती है। यह अस्थि टिबिया से थेड़ी पतली अस्थि है। इसके भी दोनों सिरों पर अंगात (End Organs) तथा बीच में दंड (shaft) होता है। फिबुला के डपरी सिरे पर शीर्ष रहता है जो फेला रहता है। इसी फेले भाग में संधि पृष्ठक होता है जो टिबिया के पाश्र्व कंद (latereal condyle) के निचले सतह से जुड़ा रहता है। परन्तु यह टुटने की संधि के निर्माण में भाग नहीं लेता है। फिबुला अस्थि (Fibula bone) शरीर भार को पृथ्वी तक पारेषित (transmit) नहीं करता है। बल्कि शरीर के सम्पूर्ण भार पृथ्वी तक टिबिया अस्थि द्वारा ही पारेषित होता है। फिबुला का निचला अंगात भी थोड़ा फैला रहाता है। और यह पाश्र्व गुल्फिका (Lateral malleous) के रूप में उठा दिखाई देता है। इसके नीचे के तरफ घुटिकास्थि (Talus bone) से संधि करने के लिए संधि तल होता है।

गुल्फ या तलवे की अस्थियां (Bnes of Ankle or Tarsal Bones) - पैरों में भी हाथों के समान ही अस्थियों की रचना होती है जिस प्रकार से कलाइयां कई अस्थियों के मिलने से बनती है ठीक उसी प्रकार से पैरों में भी तलवे की अस्थियां ''गुल्फिकास्थियां'' (Tarsus) होती है जो तलवे की अस्थि 'गुल्फ' (Ankle) बनाती है। इसी तरह हाथ के मेटाकरपल अस्थियों के सदृश पेरों मे भी अनुगुल्फिकाि्स्थ्यां (Metacarpul bnes) होती है। पैरों की अंगूठे एवं अंगुलियों में अस्थियों की संख्या उतनी ही होती है जितनी कि हाथों की अंगुलियों एवं अंगूठे में होती है। अन्तर केवल इतना ही है कि पैरों के अंगूठे एवं अंगुलियों की अस्थियं हाथ से अस्थियोंकी अपेक्षा थोड़ी मजबूत मोटी और छोटी होती है। गुल्फ अस्थि (Tarsal Bne) कुल सात अस्थियों के मिलने से बनता है ये सातों अस्थियां पैरों में अभिमध्य तथा पाश्र्व श्रृंखला (Medial and latcual series) में सजे रहते हे। अभिमध्य श्रृंखला में घुटिकास्थि, नौकाभ अस्थि एवं तीनों कीलकास्थियों सजी रहती है। इसी तरह पाश्र्व श्रृंखला में पा ि्ष्णकास्थि एवं घनास्थि सजे रहते है। गुल्फ अस्थि को निर्माण करने वाली सातों अस्थियां है:-

घुटिकास्थि (Talsus)		1
नौकाभ अस्थि (Naricular or scaphoid)	1	
कीलकास्थि (Cuneiform)		3
प्राणि कास्थि (Calcaneous)	1	
घनास्थि (Cuboid)		1
कुल अस्थि	7	

(1) घुटिकास्थि (Talsus)- यह अस्थि दोनो पेरों में एक-एक की संख्या में सजी होती है। इसका आकार टेढ़ा बैडौल होता है। इसमें कई संधि पृष्ठक हैं इसमें संधि पृष्ठक है-

सामने से-नौकाभ अस्थि के लिए

ऊपर से-टिबिया के लिए

नीचे की तरफ- पार्षिकास्थि के लिए तथा

दोनों तरफ-अभिमध्य तथा पाि्श्वक गुल्फिका (Medical and Latcual Malleous)

(2) नौकाभ अस्थि (Naricular Bne or Scaphoid bone)- इसका आकार डिस्क (Disc) की तरह होता है। इसका पश्च सतह अवतल (concave) एंव अग्र सतह उत्तल (Convex) होता है। इसमें भी कई संधि पृष्ठक होते हैं सामने से यह तीनों कीलकास्थियों (cuneiform) से पीछे की तरफ घुटिकास्थि (Talsus) से तथा पाश्र्व की तरफ घनास्थि(Cuboid) से संधि करता है।

(3) कीलकास्थि (Cuneiform)- यह अस्थि दोनों पैरो में तीन-तीन की संख्या में अस्थित होती है। ये तीनों अस्थियां है-अभिमध्य, मध्य तथा पाश्र्व। इसका आकार वेज (Wedge shaped) की तरह होता है। इसमें भी कई संधि पृष्ठक होते है। पीछे से यह नौकाभ अस्थि से तथा सामने से तीन अभिमध्य अनुगुलिफ्का की अस्थियों (Metacarpal bones) से जुड़े रहती है। ये तीनों अनुगुल्फिका अस्थियां अंगूठे से लेकर मध्य अंगुली तक रहती है।

(4) पाि्ष्णकास्थि (calcaneous) -यह अस्थि भी आकार में टेढ़ी मेढ़ी और बैडोल होती है यह घुटिकास्थि (Talsus) के नीचे अवस्थित रहती है। यह अस्थि थोड़ा पीछे की तरफ बढ़कर एड़ी का निर्माण करती है । इसके पिछले सिरे से 'एकीलिज कंडरा' (Tendons of Achilies) जुटे रहते है। सामने से यह घनास्थि (Cuboid bone) से संधि करता है।

(7) घनास्थि (Cuboid bone) -यह अस्थि घनाकार(cuboidal shaped) होती है। पीछे की तरफ यह पा ि्ष्णकास्थि (Calcanesous bone) से आगे की तरफ से अनुगुल्फिकास्थियों (चौथी एवं पांचवी) (4th & 5th Metacarpal) के तल से जुड़ी रहती है। इसका अभिमध्य भाग (Medial) नौकाभ अस्थि से तथा पाश्र्व भाग (Latcual part) कीलकास्थि(Cunieform bone) के संपर्क में रहता है।पैर के तलवे की रचना को ध्यान से देखने पर स्पष्ट पता चलता है कि तले बिल्कुल सीधे नहीं होते है। बल्कि इनमें चाप होता है। ये चाप (Arch) अनुदेध्र्य एवं अनुप्रस्थ दोनों ही दिशाओं में रहता है। चाप दृढ़ एवं कड़े स्नायुओं (Hard and strong ligament) तथा पेशिंयों (Muscles) के बने होते है। इनमें कठोर आघात, चोट, रगड़ एवं धक्के सहने की विलक्षण क्षमता होती है। तेज दोड़ना, नंगे पां, ऊबड़ खाबड़ जगहों पर चलना, ऊंचाई से कूदना आदि इन्हीं चापों के कारण सम्भव होता है। अगर किन्हीं कारणों से

तलवे की पेशियां एवं स्नायु निर्बल एवं कमजोर पड़ जाते है तो फलैट फुट (Falt Foot) का रोग हो जाता है।

(8) सुपली की हड्डियां (Matatarsals)- ये अस्थियां पैर के तलवों का निर्माण करती है। इसकी संख्या 10 होती है जो प्रत्येक पैर में 5-5 के हिसाब से व्यवस्थित होती है। इनका समीपस्थ टारसल्स (Tarsals) से तथा दूरस्थ सिरा अंगुली की अस्थियों (Phalanges) से जुड़ा होता है। पैर में इन अस्थियों का कार्य वही है जो हाथ में मेटाकारपल का है।

(9) अंगुली की हड्डियां(Phalanges)- ये अस्थियां संख्या में 28 होती है। जो प्रत्येक पैर की अंगुलियों में 14-14 की संख्या में व्यवस्थित होती है। अंगूठे में दो तथा शेष 8 अंगुलियोंं में तीन-तीन के हिसाब से ये अस्थियां इस प्रकार सजी रहती है कि पैर की अंगुलियां आसानी से हिलाया -डुलाया व मोड़ा जा सके।

पुरूष एंव स्त्रियों के श्रोणि मेखला में अन्तर (Difference between male and female pelves)

स्त्रियों की श्रोणि मेखला इस तरह की बनी होती है जिससे कि गर्भावस्था के दौरान (Pregnancy) के दौरान यह स्वंय ही बढ़ती जाती है तथा गर्भावस्था में यह बच्चे के विकास के लिए पर्याप्त स्थान प्रदान करती है। इसके अलावा ये अस्थियां हल्की होती है।

चित्र : (अ) स्त्री का श्रोणि मेखला

चित्र : (ब) पुरुष का श्रोणि मेखला

पुरूषों की श्रोणि मेखला भारी अस्थियों की बनी होती है तथा उसमें कोई रिक्त स्थान नहीं होता है।

अस्थि तथा उपास्थि में अन्तर

(Difference between Bone and Cartilage)

अस्थि(Bone)	उपास्थि (Cartilage)
1- अस्थि बाहर से कड़ी (Hard) परन्तु भीतर से छिद्रदार (Prous) होती है।	1- यह कड़ी परन्तु लचीली (elastic) होती है तथा इसमें कोई छिद्र नहीं पाया जाता है।
2- यह बाहर से हल्की गुलाबी (Light Pink) परन्तु अन्दर से गहली लाल (Dark Red) होती है।	2- यह सफेद या हल्के गुलाबी रंग की होती है।
3- अस्थियां सम्पूर्ण शरीर में पायी जाती है तथा यह शरीर को एक आकार ढांचा (Skeleton) प्रदान करती है।	3- यह कुछ निश्चित जगहों मे ही और अस्थियों की संधियों (Joints) के मध्य पायी जाती है।
4- यह विभिन्न नाजुक अंगो, जैसे-हृदय फेफड़ा, गर्भाशय, इत्यादि की सुरक्षा करती है।	4- यह विभिन्न नाजुक अंगों के निर्माण में सहायता करती है जैसे-कर्ण पल्ल, नाक का ऊपरी हिस्सा इत्यादि।
5- यह काफी मजबूत एंव कठोर होती है।	5- यह मजबूत एवं लचीली होती है।
6- अस्थि कभी उपास्थि में कभी नहीं बदलती।	6- उपास्थि धीरे-धीरे कैल्सियम लवण के जमाव के कारण अस्थि में बदल जाती है। उदाहरण- नवजात शिशु का अधिकांश भाग उपास्थियों का बना होता है जो बाद में अस्थि का रूप धारण कर लेता है।

रिकेट (Ricket)

रिकेट बीमारी विटामिन D की कमी के कारण होती है तथा यह बीमारी तब होती है जब आहार में पर्याप्त दूध, मक्खन, घी न हो। इसके अलावा सूर्य की रोशनी , स्वच्छ वायु तथा दोषपूर्ण अवशेषण भी अस बीमारी का एक प्रमुख कारण है।

भोजन में विटामिन D की कमी के कारण कैल्सियम तथा फासफोरस का अवशोषण नहीं हो पाता है जिससे कैल्सियम तथा फासफोरस शरीर से अधिक निष्कासन हो जाता है। यह बिमारी खासकर बच्चों में होती है। इस

बिमारी से ग्रस्त बच्चों की अस्थियां कमजोर हो जाती है जिससे वे देर से चल पाते है यकृत तथा तिल्ली अक्सन बढ़ जाती है दांत देर से निकलते है। खोपड़ी की अस्थियां अत्यंत ही कोमल हो जाती है सिर में गड्ढे पड़ने लगते है व सिर की आकृति भी बिगड़ जाती है। व्यस्कों में विटामिन डी की कमी से जो रोग होता है उसे ऑस्टोमलेशिया कहते है। इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति की हड्डियां कमजोर हो जाती है तथा जरा से गिरने पर टूट जाती है। कमजोर अ ि्स्थ्यां शरीर का भार नहीं सह पाती जिससे उनमें कई विकृतियां उत्पन्न हो जाती है।

निवारण (Treatment) - (1) कम से कम छ: माह तक के शिशु को मां का दूध अवश्य पिलावें तथा माता के खानपान पर विशेष ध्यान दें जिससे उसका दूध अत्यधिक पौष्टिक तथा विटामिन D युक्त हो । विटामिन D की पूर्ति मां को केाड लीवर तेल खिलावें तथा शिशु को भी कोड लीवर तेल का सेवन करावें।

(2) बच्चे को सरसों तेल अथवा नारियल तेल की मालिश कर धूप में लिटायें क्योंकि सूर्य की किरणों की उपस्थिति में अरगोस्टीरोल (Ergosterol) विटामिन D में बदल जाता है। जिससे बच्चे को पर्याप्त मात्रा में विटामिन डी मिलता है। परन्तु ध्यान रखें, सूर्य की सुबह वाली किरणें ही सबसे ज्यादा फायदेमंद है।

(3)भोजन में दूध, मक्खन, घी एवं कोड लीवर तेल का प्रयोग करें।

(4) बच्चे को मां के दूध के अलावा ऊपरी आहार भी अवश्य देंवे।

दांत (Teeth)

दांत भोजन को पीसने, कूटने एवं चबाने का कार्य करते है। जब हम भोजन करते हैं तो सर्वप्रथम दांत ही उस भोजन को काटता है व पीसकर महीन कणों में बदलता है जिसे लार की सहायता से सानकर लोई के समान बना दिया जाता है। अब यह भोजन पचने लायक हो जाता है।

भोजन के महीन कण दांतो मे फंस जाते है व संड़ांधउप्पन्न करते है जिससे मुंह से दुर्ा्ान्ध आने लगती है। इतना ही नही भोजन के सड़ने से दांतो के अंदर कई प्रकार के बैक्टीरिया उत्पन्न हो जाते है। जो भोजन के साथ मिलकर पेट मे पहुंचते है व विभिन्न प्रकार की बिमारियों को जन्म देते है। अत: प्रतिदिन दांतो की सफाई अत्यंत ही आवश्यक है। इसलिए सुबह तथा रात्रि में भोजन के बाद दांतों की सफाई अवश्य करनी चाहिए।

मनुष्य में चार प्रकार के दांत पाये जाते है-

(i) काटने वाला दॉत (Incisor teeth)
(ii) फाड़ने वाला दां ॅत(Canine teeth)
(iii) कूटने, फोड़ने व पीसने वाला दांत (Premolar teeth)
(iv) पीसने वाला दांत(Molar)

चित्र : दाँतों के प्रकार

बच्चों में 20 दांत होते है जिन्हें दूध के दांत (Milk teeth) कहा जाता है। ये दांत एक निश्चित उम्र 7'8 साल में आकर टूट जाते है तथा स्थायी दांत निकलते है। दूध के दांत (Milk teeth) 20 की संख्या में होते है जिनमें 8 काटने वाले, 4 फाड़ने वाले, तथा 8 पीसने वाले दांत होते है। व्यस्कों में 32 दांत होते है जिसमें 8 काटने वाले, 4 फाड़ने वाले, 8 कूटने, फोड़ने व पीसने तथा 12 पीसने वाले दांत होते है। ये दांत दोनो जबड़ों में 16-16 की संख्या में क्रम बध्द रूप से सजे होते है।

दांतों का विकास और बनावट(Development and structure of teeth)- दांतो का विकास जन्म काल से ही होने लगता है। निचले जबडत्रे के दांत पहले निकलते है परन्तु ऐसा हर बार नहीं होता। यों तो दांतो के आकार में विभिन्नताऐं दिखाई देती है परन्तु मूल संरचना में कोई विशेष अंतर नहीं होता। प्रत्येक दांत को मुख्यत: तीन भागों में बांटा गया है-

(i) दंत शिखर (Crown)

(ii) दंत ग्रीवा (Neck)

(iii) दंत मूल (Root)

दंत शिखर
या क्राउन
डेन्टाइन
पल्प गुहा
दंत ग्रीवा
डेन्टाइन
सीमेन्टम
दंत शिखर
या क्राउन
दंत ग्रीवा
दंत मूल
रक्त वाहिकाएँ एवं तंत्रिकाएँ

चित्र : दाँत की बनावट

चित्र : दाँत की लम्बवत् काट

दंत शिखर (Crown)- मसूढ़ों के बाहर दिखाई देते है जो सफेद एवं चमकदार होते है। दंत मूल (Root) जबडों के अन्दर गड्ढों में फंसा रहता है और दांतों काके स्थिर रखने का कार्य करता है। दंत शिखर और दंत मूल (Crown and root) के बीच वाला भाग को दंत ग्रीवा कहते है।ै, यह भाग मसूढों से ढका रहता है।

सभी दांत रदिन (Dentine) नामक पदार्थ के बने होते है। रदिन (Dentine) काफी खोखला होता है जिसे दंत गुहा (Dental cavity) कहते है। इनमें पल्प भरा रहता है। इसी गुहा में सूक्ष्म रक्त कोशिकाऐं (Blood capillaries), स्नायु तंत्र (Nerve filament) आदि विद्यमान रहते है। रक्त केशिकाओं के द्वारा ही दांतों का पोषण होता है।

दंत शिखर (Crown) के चमकीले भाग पर इनेमल (Enamel) की परत चढी होती है जिससे दांत चमकीला दिखाई पढ़ता है दंत ग्रीवा (neck) एवं दंत मूल (Root) पर सीमेन्टम (Cementum) का परत चढा होता है।

दांतो में खोढ़र होना (Dental caries) - दांत जब सड़ जाते हैऔर उनमें गड्ढें या खोढ़र हो जाते है उसे डेन्टर केरिज (Dental caries) कहते है। खोढ़र के द्वारा हानिकारक बैक्टिरिया डेन्टाइन तक पहुंचकर फोड़ा या दंत शूल उत्पन्न कर देते हैं जिससे मुंह से दुर्गन्ध आने लगती है। डेन्टल कैरिज से बचने के लिए आहार में विटामिन ए, विटामिन डी, विटामिन सी अवश्य पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए। इसके अलावा जल में पर्याप्त मात्रा में फ्लोरिन (Flourine) होना चाहिए।

प्रतिदिन दांतो को सुबह-शाम नीम के दातुन अथवा अच्छे ब्रश से साफ करना चाहिए इससे फंसे हुए अन्न कण बाहर निकल जाते है व सड़ नहीं पाते है। चीनी का अधिक सेवन दांतों के एनेमल (Enamel) को नष्ट कर देता है क्योंकि चीनी दांत के सम्पर्क में आकर अम्ल का निर्माण करती है। इसी तरह बच्चों को कम से कम चॉकलेट, चीनी या टॉफी खाने को देनी चाहिएतथा उन्हें मुलायम ब्रश से दांतों की सफाई करनी चाहिए।

4.3 अस्थि संधियॉं (Joints of the Skeleton)

सम्पूर्ण मानव शरीर अस्थियों के समूह से ही बना होता है। अस्थि शरीर को एक निश्चित आकार प्रदान करती है। परन्तु अधिकांश अस्थियां पृथक पृथक होती है जो संधि तलों (Facets) द्वारा परस्पर जुड़कर सम्पूर्ण अंत: कंकाल (Endo skeleton) की संरचना करती ह। अत: जिस स्थान पर पृथक अस्थियां परस्पर जुड़ती है उसे जोड़ या संधि कहते है।

जोड़ शरीर में इच्छानुसार गति लाते है। इन्हीं जोडों की सहायता से हमारा उठना, बैठना, चलना-फिरना, उंगलियों को मोड़ना, सिर को घुमाना, नृत्य करना इत्यादि संभव है कुछ जोड़ तो अचल (Immovable) होते है तथा कुछ चल (Movable) होते है। जोड़ों को उनकी गति के आधार पर दो प्रमुख भागों में बांटा गया है-

(1) अचल संधि (Fibrous or Immovbable joints)

(2) चल संधि (Movable joints)

पुन: चल संधि (Movable joints)को दो भागों में बांटा गया है- (अ) पूर्ण चल संधि (Synovial or freely movable joints) तथा (ब) अध्दचल संधि (Gliding joints)

(1) अचल संधि (Fibrous or Immovbable joints)- इस प्रकार के संधियों से जुड़ने वाली अस्थियों के बीच किसी प्रकार की गति नहीं होती है। अस्थियों के संधि तलों

चित्र : अचल संधि

(facets) पर सीवनें या सूचर (sutures) उपस्थित होते है। जो एक दूसरे के साथ इस प्रकार से फिट हो जाते है कि अस्थियां आपस में हिल डुल न सकें। कपाल की अस्थियां अचल संधि द्वारा ही परस्पर जुड़े होते है तथा कपाल (Cranium) की रचना करते हैं अचल संधि के अस्थियों के बीच तन्तुमय ऊतक (Fibrous tissue) उपस्थित होते है तथा इनमें उपास्थि (cartilage) का अभाव होता है।

(2) चल संधि (Movable joints)-इस प्रकार की संधि द्वारा जुड़ी अस्थियां गतिशील होती है तथा शरीर को गति प्रदान करती है यह दो प्रकार की होती है-(अ) पूर्णचल संधि तथा (ब) अध्दचल संधि।

(अ) पूर्णचल संधि (Structure of freely movable joints)-इस प्रकार की संधि में अस्थियां गतिशील होती है तथा इनमें चारों तरफ मुड़ने एवं गति करने की क्षमता होती है।

पूर्णचल संधि की रचना (Structure of synovial joints)- ये संधियां अस्थि बंधनों की संरचना द्वारा दो या दो से अधिक अस्थियों के द्वारा निर्मित होती है। इन अस्थियों के सिरे आपस में दृढ़ बंधनों -अस्थि बंध (Ligament) द्वारा जुड़े होते है। इस प्रकार की संधि बनने वाली अस्थियों का आकार इस प्रकार का होता है जिससे ये आपस में अच्छी तरह समायोजित (adjust and fit) हो सकें। अस्थियों के सिरे हायलिन उपास्थि (hayline cartilage) की एक मोटी, चिकनी, एवं चमकदार सतह से ढकी रहती है जिसे जोड़ बनाने वाली उपास्थि (Articular cartilage) कहते है। यह उपास्थि कड़ी अस्थियों की रगड़, चोट, एवं आघात से रक्षा करती है तथा घर्षण सहित सतह प्रदान करती है जिससे हड्डियों को आसानी से हिलने-डुलने में सहायता होती है। इनका पोषण स्त्राव द्रव (Synoivial fluid) द्वारा होता है।

चित्र : सिनोवियल संधि

अस्थियों के संधि तलों (Facets) पर उपास्थि की गद्दी लगी होती है तथा इनके बीच एक छोटी सी गुहा (Cavity) होती है जिसे साइनोवियल गुहिका (Synovial cavity) कहते है। यह गुहिका चारों ओर से एक झिल्ली होती है जिसे साइनोवियल झिल्ली(Synovial membrane) कहते है। यह झिल्ली द्वारा रेखित होती है जिसे साइनोवियल द्रव (synovial fluid) को स्त्रावित करती है जो साइनोवियल गुहिका में भरता जाता है यह द्रव जोड़ बनाने वाले विभिन्न अवयवों को चिकना रखता है व पोषण प्रदान करता है। अत: साइनोवियल द्रव युक्त थैली को साइनोवियल संपुट (synovial capsule) कहते है। इस संपुट के बाहर जुड़ने वाली अस्थियां एक-दूसरे के लिगामेन्टस द्वारा जुड़ी रहती है। इनकी विशिष्ट रचना के कारण इस र्ग की संधियों को सिनोवियल संधि (synovial joints) कहते है।

पूर्णचल संधि के प्रकार (Types of synovial joints)- पूर्णचल संधि निम्न प्रकार के होते है-

(i) गेंद गड्ढा संधि (Ball and socket joint)

(ii) चूल एंव कब्जेदार संधि (Hinge joint)

(iii) कील संधि (Pivot joint)

(iv) फिसलने वाली संधि(Sliding joint)

(v) सैडल संधि (Saddle joint)

(i) गेंद गड्ढा संधि (Ball and socket joint)- इस प्रकार की संधियों में एक अस्थि का संधि तल एक प्याले के गड्ढे के समान (Cavity or socket like) तथा दूसरी का संधि तल एक गोलाकार गेंद (ball) के रूप में होता है। इससे गोल गेंद वाला हिस्सा प्याले वाले गड्ढे मे अच्छी तरह फंसा रहता है। जिससे ये आसानी से कई दिशाओं में घूम सकते है।

चित्र : गेंद गड्ढा संधि

चित्र: गेंद गड्ढा संधि

उदाहरणस्वरूप: अंसमेखला (Pectoral girldle) एंव हयूमरस अस्थि तथा श्रोणि मेखला (Pelvic girdle) तथा फीमर अस्थि (Femur bone)।

(ii) चूल एंव कब्जेदार संधि (Hinge joint)- इसे कोर संधि भी कहते है। ऐसी संधियां कब्जे दार किवाड़ों की तरह एक ही दिशा में घूम सकती है तथा दूसरी दिशा में नहीं घूमती है न ही ऐसी संधियां चारों ओर ही घूम सकती है। उदाहरण-कुहनी (Elbow), घुटने(Knee), जबड़े (Jaw), तथा उंगली की संधियां (Joints of fingers)।

चित्र : कोर संधि या चूल संधि

चित्र: कोर संधि या चूल संधि

(iii) कील संधि (Pivot joint)- इस प्रकार संधि में एक अस्थि एक खूंटी या कील (Pivot like) का संधि तल (Fecet) बनाती है जिस पर दूसरी अस्थि इस संधि तल पर आसानी से इधर-उधर घूम सकती है। पहली कशेरूका शीर्षधर (Atlas) तथा दूसरी कशेरूका, अक्ष (Axis) इसी प्रकार के संधि द्वारा जुड़े होते है।

चित्र : कील संधि

(iv) फिसलने वाला जोड़(Sliding point) - इस प्रकार की संधि में दोनों अस्थियां संधि तलों पर एक-दूसरे पर फिसल सकती है। इनके बीच कार्टिलेज (Cartilage) भरा रहता है। उदाहरण-कलाई का जोड़ (Wrist joint) रीढ़ का जोड़ (Vertebral joint)।

(v) सैडल संधि (Saddle point)- ये गेंद गड्ढा संधि से मिलती-जुलती है परन्तु इनके गेंद (ball) गड्ढा (socket) अपेक्षाकृत चपटे होते है जिसके फलस्वरूप् इन संधियों से निर्मित अस्थियों में गति कम होती है। हाथ के अंगूठे की मेटाकार्पल (Metacarpal) एवं कार्पल (carpal) अस्थियों के बीच इसी प्रकार की संधि होती है जिसके कारण अंगूठा अन्य उंगलियों की अपेक्षा अधिक दिशाओं में घूम सकता है।

चित्र : सैडल संधि

चित्र: सैडल संधि

(ब) अल्पचल या अध्दचल संधि (Cartilaginus or slightly movable joint)- शरीर में कुछ संधियां ऐसी होती है जिनमें गति हल्की होती है। दो हड्डियों के बीच कार्टिलेज रहने के कारण हड्डियों के दबाव से कार्टिलेज दब जाती है और दूसरी हड्डी पर झुक जाती है जिसे अल्पचल या अध्दचल संधि कहते है।

उदाहरण -कशेरूकों की संधि (Joints of vertebrae)

चित्र : (A) कार्टिलेटिनस संधि, (B) सिन्डीमोसिस,
(C) सिम्फाइसस, (D) ससंर्पी या अर्द्धचल संधि

चित्र (A) कार्टिलेटिनस संधि (B) सिन्डीमोसिस, (C) सिम्फाइसस (D) संसर्पीया अध्दचल संधि

अस्थि संधि की बनावट (Structure of bone joints)- हड्डियों को आपस में बांधने वाली निम्न चीजें होती है।

(i) संधि-बंध (Lingament)- यह जोड़ों को आपस में बांधने का कार्य करते है। यह सफेद सूत जैसा मजबूत पदार्थ होता है जो उपर से मांसपेशियों द्वारा ढका रहता है। प्रत्येक संधि इसी के द्वारा बंधी रहती है। ये बंधन लचली ि एवं गतिशील होते है।

(ii) कण्डरा (Tendon)- कण्डरा अस्थियों को मांसपेशियों से बांधने का कार्य करता है। यह भी संधि-बंध की तरह सफेद सूत के समान मजबूत पदार्थ होता है तथा यह केवल मांसपेशियों को हड्डियों को जोड़ता है जबकि संधि-बंध दो या दो से अधिक अस्थि को परस्पर जोड़ने का कार्य करता है।

(iii) उपास्थि (Cartilage)- यह हड्डियों के जोडों को बांधने का कार्य करता है पसलियों से स्टर्नम (sternum) अस्थियों द्वारा ही जुड़ी रहती हैं यह एक प्रकार का सफेद रंग का लचीला मजबूत पदार्थ होता है। जो अस्थियों से कम कड़ा होता है। इसके लचीलेपन की वजह से ही अंगो में दृढता उत्पन्न होती है। इसके अलावा यह हड्डियों को टूटने से बचाता है तथा जोडों को चोट, आघात इत्यादि से सुरक्षा प्रदान करता है। रीढ की हड्डी के कशेरूकाओं (Vertebrae) के बीच उपास्थियों की ही गद्दी सी लगी होती है जो हड्डियों को चोट, दुर्घटना इत्यादि से बचाती है। जोड़ की सतह को छोड़कर अन्य स्थ्ज्ञानों में उपास्थि के ऊपर एक आवरण होता है जिसे सृति आवरण (Perchondrium) कहते है। इसी आवरण में रक्त कोशिकाओं (Blood capillaries) का एक जाल सा बिछा रहता है जिससे इन हड्डियों का पोषण होता है।

मानव शरीर में विभिन्न जोड़

(Defferent joints of Human Body)

ऊपरी शाखा का जोड़ (Joint of upper extremity)

(1) कंधे का जोड़ (Shoulder joint)- इसे ह्यूमेरो स्कैपुलर जोड़ (Humer scapular joint) भी कहते है। इसमें स्कैपुला एवं ह्यूमरस की अस्थि आपस में संधि-बंध (Lingaments) द्वारा जुड़ी रहती है। इसमें ह्यूमरस का सिरा अच्छी तरह स्कैपुला के ग्लैनॉइड कैटी (Glenoid cavity) में फंसा रहता है। जिससे कि ह्यूमरस आसानी से घूम सके। इसका जोड़ गेंद गड्ढा जोड़ (Ball and socket joint) का उदाहरण है।

(2) कुहनी का जोड़ (Elbow joint)- इसे ह्यूमेरो अल्नर जोड़ (Humero-ulnar joint) भी कहते है। इसमें ह्यूमरस (Humerus), का निचला सिरा अल्ना(Ulna) के ऊपरी सिरे से चूल संधि (Hinge joints), द्वारा जुड़ा रहता है।

(3) रेडियों अल्नर जोड़ (Radio ulnar joint)- इसमें दो चल संधि होते है- एक सुपीरियर (Superior) तथा दूसरा इनफीरियर (Inferior) रेडियो अल्नर जोड़ होता है इनफीरियर रेडियो अल्नर जोड़ में रेडियस का निचला सिरा अल्ना (Alna) के सिरे से इस तरह फंसा रहता है कि यह आसानी से घूम सके। सुपीरियर रेडियों अल्नर जोड़ (Superior radio ulnar joint) में इनफीरियर रेडियो अल्नर (Inferior radio ulnar) की अपेक्षाकृत कम गति होती है।

चित्र : कलाई और रेडियो अल्नर संधि (अग्र से)

चित्र: कलाई और रेडियो अल्नर संधि

(4) कलाईयों का जोड़ (Wrist joint) - इसे रेडियों कारपल जोड़ (Radio carpal joint) भी कहते है। इसमें कॉन्डिलॉयड संधि (Condyloid joint) द्वारा रेडियसा का निचला सिरा कारपल्स (Carpals) के आरटिकुलर डिस्क (Articular discs) के साथ अल्ना के सिर के नीचे संधि करता है।

(5) हाथ और अंगुलियों का जोड़ (Joints of Hands and fingers)- कारपल अस्थियों के बीच कारपल तथा मेटाकारपल अस्थियों के बीच मेटाकारपल अस्थियों के बीच, मैटाकारपल अस्थियों और फैलेन्जेज के बीच और स्वंय फैलेन्जेज के बीच का जोड़ पूर्णचल संधि (Synovial joint) द्वारा परस्पर जुड़ा रहता है। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

(i) कलाई अस्थियों के बीच का जोड़ (Inter carpal joint) -इसमें फिसलने वाला संधि (Sliding joint) द्वारा कारपल का चपटा एवं चिकना सिरा दूसरे चपटे एवं चिकने सिरे से जुड़ा रहता है । इससे एक चिकना एवं चपटा सिरा दूसरे सिरे पर आसानी से फिसल सकता है।

चित्र : कॉन्डीलॉयड संधि

(ii) कलाई व हथेली का जोड़(Carpal and metacarpal joint)- इसमें भी फिसलने वाली संधि (Gliding joint) के द्वारा कलाई का दूरस्थ निचला सिरा पांचो हथेली की अस्थियों (Metacarpal) से जुड़ा रहता है।

(iii) हथेली एंव उंगली का जोड़ (Metacarpal and phalangeal joints)- इसमें कॉन्डीलॉयड (Condyloid) प्रकार की संधि के द्वारा हथेली का सिरा आपस में जुड़ कर अंगुली के पास वाले सिरे से संधि करता है।

(iv) अंगुली के बीच का जोड़ (Interphallangeal joint)- इसमें चूल संधि (Hing joint) के द्वारा अंगुली के पास का एक सिरा दूर के सिरे से जुड़ा रहता है।

निचली शाखा की अस्थियों के जोड़

(Joint of the Lower extremity)

(1) कूल्हे का जोड़ (Hip joint)- इसमें गेंद और गड्ढा संधि (Ball and socket joint) द्वारा जांघ की हड्डी फीमर (Femur) कूल्हे की अस्थि हिप बोन (Hip bone) के एसिटाबुलम (Acetabulum) में इस तरह मजबूती से फंसा रहता है कि यह आसानी से घूम-फिर सके। तन्तुमय उपास्थि (Fibrcartilage) प्रकार के संधि-बंध (Ligament) के द्वारा जांघ की अस्थि, फीमर (Femur) कूल्हे की अस्थि हिप बोन (Hip bone) से बंधा रहता है।

(2) घुटने का जोड़(Knee joint) - इसमें चूल संधि द्वारा जांघ की दोनों कोन्डाइल्स (Condyles) टिबिया की सुपीरियर सतह (Superior surface) से जुड़ा रहता है टेहूने की हड्डी, पटेला(pattela) फीमर की चिकनी सतह से संधि करता है जिससे कि ये हड्डी परस्पर फिसल सके।

चित्र : घुटने का जोड़ (एक काट सामने से)

(3) टिबियोफिबुलर जोड़ (Tibifibular joint)-यह जोड़ अचल संधि (immovable joint) द्वारा जुड़ा रहता है।

(4) घुण्डी का जोड़(knee joint)- इसमें चलदार संधि के द्वारा टिबिया का निचला सिरा तले की हड्डी (Tarsal) के द्वारा जुड़ा रहता है।

(5) पैर की अंगुलियों का जोड़ (joints of Phalanges)- ये आपस में फिसलने वाली जोड़ (sliding joint) द्वारा जुड़ी रहती है।

4.4 सारांश :

कपाल की अस्थियां (Skull bones)	संख्या	चेहरे की अस्थियां (Facial Bones)	संख्या
ललाटस्थि (Frontal)	- 1	ऊपर का जबड़ा(Maxilla)-	2
अगल-बगल वाली अस्थि (Parietal bone)	- 2	नीचे का जबड़ा(Mandible)-	1
कनपटी वाली अस्थि (Temporal bone)	- 2	जाइगोमैटिक अस्थि (कपोलस्थि)- (Zygomatic bone)	2
खोपड़ी के पीछे की हाि (Occipital bone)	- 1	तालू की अस्थियां (Palatine)	- 2
तितलीनुमा अस्थि (Sphenoid)	- 1	नाक की अस्थि (Nasal) -	2
चलनीदार अस्थि (Ethmoid bone)	- 1	आंसूबलीहड्डी (Lachrymal)-	2
		टरबिनल अस्थि (Turbinal)-	2
		वोमर (Vomer) -	1
कुल अस्थियां	- 8	कुल अस्थियां -	14

रीढ़ की हड्डी (Vertebral column)

ग्रीवा प्रदेश की कशेरूकाऐं (Cervical vertebrae)	-	7
वक्ष प्रदेश की कशेरूकाऐं (Thoracic vertebrae)	-	12
कटि प्रदेश की कशेरूकाऐं (lumbar vertebrae)	-	5
त्रिक प्रदेश की कशेरूकाऐं (sacral vertebrae)	-	5

पूंछ वाली कशेरूकाऐं (Coccyx vertebrae)	-	4
	कुल अस्थियां-	33

वक्ष प्रदेश की हड्डी

(Thorax)

छाती की हड्डी (Sternum)	-	1
पसलियां(Ribs)	-	12जोड़ी
असली पसलियां (True costae)	-	7 जोड़ी
नकली पसलियां (False cartilages)	-	5 जोड़ी
थोरेसिक कशैरूका	-	12

अंसमेखला और ऊपरी शाखा की हड्डी

(Bones of Pectoral girdle and Upper Limb)

		संख्या
हंसली (Collar bone)	:	1
पखुरा (Scapulla)	:	1
ह्यूमरस (Humerus)	:	1
रेडियस (Radius)	:	1
अल्ना (Ulna)	:	1
कारपल्स (Carpals)	:	8
मेटा कारपल्स (Meta Carpals)	:	5

अंगुली की अस्थि (Phalanges)	:	14
कुल अस्थिया	:	32

इस तरह दोनों हाथों को मिलाकर 64 अस्थियां है।

श्रोणि मेखला

(Pelvic girdle)

		संख्या
कूल्हे की अस्थि (Hip bones)	:	2
सैक्रम (Secrum)	:	1
कोसिक्स(Cosics)	:	1
कुल अस्थियां	:	4

निचली शाखा या पैर की हड्डियां

(Lower Extremities or lower limb)

		संख्या
कूल्हे की अस्थि (Hip bones)	:	1
जांघ की हड्डी (Femur)	:	1
टेहुना की हड्डी (Patela)	:	1
टिबिया (Tibia)	:	1
फिबुला(Fibula)	:	1
तलवे की हड्डी (Tarsals)	:	7
सुपली की हड्डी (Metatarsals)	:	5
अंगुली की हड्डी(Phalanges)	:	14

कुल अस्थियां : 31

इस प्रकार दोनों पैरो में 62 अस्थियां है।

4.5 निबंधात्मक प्रश्न

1- कंकाल के क्या कार्य है?

2- मानव अस्थि पंजर की क्या विशेषताऐं है? पैर बनाने वाली अस्थियों के नाम लिखें।

3- अस्थि के मजबूत गठन के लिए आवश्यक वस्तुओं का वर्णन करें।

4- अस्थियां कितने प्रकार की होती है? ऑसीफिकेशन (कला अस्थि भवन) का संक्षेप में वर्णन करें।

5- मानव खोपड़ी का सचित्र वर्णन करें।

6- कशेरूक दण्ड (vetebral column) की रचना व कार्य समझाऐं।

7- मेरूदण्ड (Spinal cord) की रचना कार्य का संक्षिप्त में वर्णन करें।

8- अग्रबाहु की अस्थियों की बनावट और कार्यों का सचित्र वर्णन करें।

9- निचली शाखा या पैर (leg) की हड्डियों का नाम लिखें व संक्षिप्त वर्णन करें।

10- वक्ष तथा उसकी अस्थियों का संक्षिप्त वर्णन करें।

11- मनुष्य की अंस मेखला (Pectoral girdle) की रचना एवं कार्यों का सचित्र वर्णन कीजिए।

12- श्रोणि मेखला (Pelvic girdle) की बनावट व कार्यों का सचित्र वर्णन करें।

13- संक्षिप्त टिप्पणी लिखें-

(i) थोरेंसिक कशेरूका

(ii) पसलियां

(iii) शीर्षधर कशेरूका (Atlas vertebrae)

(iv) एक्सिस कशेरूका (Axis vertebrae)

(v) कशेरूक दण्ड(vertebral column)

(vi) मेरूदण्ड(Spinal Cord)

(vii) पसलियां

14- दांत कितने प्रकार के होते है इनकी रचना व कार्य समझाइयें।

15- दांत की संरचना का वर्णन कीजिए। दंत क्षय के क्या कारण है? इसकी रोकथाम किस प्रकार कर सकते है।

16- संधि क्या है? शरीर में पाये जाने वाली विभिन्न प्राकर की संधियों का वर्णन करें। पूर्णचल संधि की रचना समझायें।

17- हमारे शरीर की विभिन्न अस्थि संधियों के नाम बतायें व उदाहरण सहित समझायें।

18-निम्नलिखित संधियां बनाने वाली अस्थियों के नाम लिखे। ये भी बतायें कि ये किस संधि में आती है।

(i) जानु

(ii) शीर्षधर अक्षक

(iii) अंगुल्यास्थि

(iv) कोहनी का जोड़

(v) घुर्ी का जोड़

(vi) कूल्हे का जोड़

19-संक्षिप्त टिप्पणी लिखें-

(i) संधि-बंध

(ii) उपास्थि

(iii) कण्डरा

(iv) अस्थि मज्जा या लाल अस्थि मज्जा का महत्व

20-प्ररूपी साइनोवियल संधि का विस्तृत वर्णन सचित्र करें।

21-मानव शरीर मं संधि का क्या महत्व है? उदाहरण देकर समझायें।

4.6संदर्भ ग्रन्थ

---

1. अर्थर सी. गुयटन एण्ड जान एडवर्ड हाल (2006), ट ेक्सटब ुक आॅफ मेडिकल फीजियोलॅजी, फ्लोरिडा, अमेरिका, एल्जेवियर स्टैंडर्डस

2. सुरिन्दर एच सिंह और कृष्ण गर्ग (2008), एनाटाॅमी, एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर नर्सेज और एलाॅइड हेल्थ सर्इंसेज, नई दिल्ली, सीबीएस पब्लिशर्स

3. शिवरामकृष्णन एस. (2006), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर फीजिकल एजुकेशन, नई दिल्ली, फ्रेंड्स पब्लिशर्स

4. अन्ने वाॅ और एल्सन ग्राउंट (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी इन हेल्थ एण्ड वेलनेस, इलाहाबाद, चर्चिल लिविंगस्टोन

5. क्लार्क राॅबर्ट के. (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी - अंदरस्टैंडिंग द ह्यूमन बाॅडी, सडरी, यूर्नाइ टेड स्टेट्स, जाॅनस एण्ड बारटियट

6. श्री कृष्ण (1985), नोट्स आॅन स्ट्रक्चर एण्ड फंक्शन्स आॅफ ह्यूमन बाॅडी एंड इफेक्ट्स आॅफ योगिक प्रेक्टिसेज इन इट, मुंबई र्‍ आइ .सी.वाई.एच सी. कैवल्यधाम

7. दत्ता रे (2001), योगिक एक्सरसाईजेज, नई दिल्लीः जेपी ब्रदर्स

8. शीर्ले टेलेस (2006), ए गिलम्पस आॅफ द ह्यूमन, बंगलोरः स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन

9. लेस्ली केमिनोफ (2007), योग एनाटामी, कैम्पेनः ह्यूमन कॉइ नेटिक्स

10. पीटर आई विलियम्स और रोगर वास्वी (1988), ग्रेज एनाटॅमी, एडीनबर्गः चर्चिल लिविंगस्टोन

11. एवीलीन ब् पीएर्स (1997), एनाटामी एंड फीजियोलाजी फार नर्सेज, नई दिल्लीःजेपी ब्रदर्स

12. गेरे एम.एम. (2003), एनाटॅमी एण्ड फीजियोलॅजी फॅर योगिक पै्रक्टिसेज, लुनावालाः काम्हान प्रकाशन

13. शरीर- रचना विज्ञान एवं शरीर-क्रिया विज्ञान (2003), श्री नन्दन बंसल, जेपी ब्रदर्सः नई दिल्ली

अध्याय - 5

श्वसन तंत्र (Respiratory System)

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2श्वसन तंत्र के विभिन्न अंग

5.3श्वसन की क्रिया विधि

5.4 कृत्रिम श्वसन

5.5 सारांश

5.6 प्रश्न

5.7 संदर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

- श्वसन तंत्र के विभिन्न अंग की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे|
- श्वसन की क्रिया विधि के बारे में जान सकेंगे|
- कृत्रिम श्वसन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे |

5.1 प्रस्तावना

ऑक्सीजन हमारे शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना हम जीवित ही नहीं रह सकते। ऑक्सीजन गैस हम सॉस के साथ शरीर में लेते हैं। कार्बनडाईऑक्साइड को बाहर निकालते हैं। ऑक्सीजन (O_2)

को लेने तथा कार्बनडाईऑक्साइड (CO_2) को बाहर छोड़ने की यह क्रिया की श्वसन (Respiration) कहलाती है। श्वसन क्रिया में भाग लेने वाले अंग श्वसन अंग (Respiratory organs) कहलाते हैं। अत: श्वसन तंत्र के अन्तर्गत शरीर की सभी कोशिकाएँ ऑक्सीजन को अन्त्रग्रहण करती हैं। तथा कार्बनडाइऑक्साइड गैस को बाहर की और निकालती हैं।

हवा में ऑक्सीजन मिली रहती है। साँस होने के दौरान यह हवा फेफड़ो के प्रत्येक हवा कोष (Alveoli) में जाती है। जैसे ही हवा फेफड़े के हवा कोषों की दीवार के सम्पर्क में आती है तो रक्त द्वारा परिसंचरण (Blood circulation) के माध्यम से यह ऑक्सीजन शरीर की प्रत्येक कोशिका में पहुंचाई जाती है। यह क्रिया रक्त में उपस्थित हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) के माध्यम से होती है। हीमोग्लोबिन में ऑक्सीजन से संयाग की अद्भूत प्राकृतिक क्षमता होती है। अत: यह ऑक्सीजन के संयोग करके ऑक्सीहीमोग्लोबिन (Oxyhaemoglobin) बनाता हें यह ऑक्सीहीमोग्लोबिन (Oxyhaemoglobin) कोशिकाओं को ऑक्सीजन प्रदान करता है तथा वहाँ पर उपस्थित कार्बन डाईऑक्साइड गैस से संयोग करके कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन (Carboxyhaemogliobin) बनाता है। कार्बनडाईऑक्साइड युक्त रक्त अशुद्ध माना जाता है जो जीवन के लिए अहितकर होता है। यह जहरीला और जानलेवा होता ा है। कार्बोक्सीहीमोग्लोबिन रक्त परिसंचरण के माध्यम से शिराओं द्वारा फेफड़ो में पहुंचता है। यहाँ आकर कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन कार्बनडाईऑक्साइड को मुक्त कर देता हे तथा स्वयं ऑक्सीजन के साथ संयोग कर लेता है फेफड़ो में उपस्थित कार्बनडाईऑक्साइड सॉस छोड़ते समय शरीर से बाहर निकल जाती है। यह क्रिया निरंतर पर्यन्त चलती रहती है, और इसी प्रक्रिया को 'श्वसन' कहते है। अत: साँस लेना और साँस छोड़ना सभी सजीव प्राणियों का एक विलक्षण गुण है जो जन्म लेते ही आरम्भ होकर जीवन पर्यन्त बना रहता है। साँस न होना व छोड़ना मृत्यु का द्योतक है। श्वसन क्रिया से ही प्रत्येक जीव को ऑक्सीजन प्राप्त होती है। यह ऑक्सीजन भोजन को दहन के दौरान ऊर्जा में परिवर्तित करती है जिससे हमारे शरीर को ऊर्जा एवं ताप मिलता है। दहन क्रिया के फलस्वरूप भोजन टूटकर ऊर्जा देता है तथा इस क्रिया के दौरान कार्बनडाईऑक्साइड (Co_2) एवं जल (H_2O) प्राप्त होता है।

भोजन + O_2 □□CO_2 +H_2O + □ ऊर्जा

कार्बनडाईऑक्साइड दूषित गैस के रूप में फेफड़ो द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। अत: वायुमंडल की शुद्ध वायु के फेफड़ो में पहँुचने तथा अशुद्ध वायु के फेफड़ों से बाहर निकालने की क्रिया की 'श्वसन' कहलाती है। ऑक्सीजन को फेफड़े में ग्रहण करने की क्रिया अन्त:श्वसन (Inspiration) तथा कार्बनडाईऑक्साइड को बाहर छोड़ने की क्रिया उच्छवसन (Expiration) कहलाती है। श्वसन में भाग लेने वाले सभी अंगो को श्वसन अंग (Respiratory organs) तथा इस तंत्र को श्वसन तंत्र (Respiratory system) कहते है - अत: वायुमंण्डल की शुद्ध वायु के फेफड़ो में पहँचने तथा अशुद्ध वायु के फेफड़ों से बाहर निकालने को क्रिया

की 'श्वसन' कहलाती है। ऑक्सीजन को फेफड़े में ग्रहण करने की क्रिया अन्त:श्वसन (Inspiration) तथा कार्बनडाईऑक्साइड को बाहर छोड़ने की क्रिया उच्छवसन (Expiration) कहलाती है। श्वसन में भाग लेने वाले सभी अंगो को श्वसन अंग (Respiatory organs) तथा इस तंत्र को श्वसन तंत्र (Respiratory system) कहते है।

5.2श्वसन तंत्र के विभिन्न अंग

श्वसन तंत्र (Respiratory System) के अन्तर्गत निम्न अंग आते है -

नासिका या नाक (Nose), नासामार्ग (Nasal Passage), ग्रसनी या फैरिन्वस (Pharynx), स्वरयंत्र या लैरिन्क्स (Laynx), श्वासनली (Trachea), ब्रोन्काई (Bronchi), फेफड़े (Lungs)

चित्र : श्वसन अंग

नाक व नासा मार्ग (Nose and nasal passage) – नाम हमारी घ्राणेन्द्रिय है तथा श्वसन का प्रथम मुख्य मार्ग है। यहीं वायु को छानकर आवश्यकतानुसार गर्म, आदर्् र किया जाता है।

नाक में दो नासागुहा (Nasal cavity) होते है। नाक को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा गया है- वाह्य नाक (External nose) व आंतरिक नाक (Internal nose)।

आंतरिक नाक में श्लेष्मिक कला (Mucous membrane) की एक स्तर होती है। नीचे क तरफ दो नासाछिद्र (Nostrils) होते हैं जिसमें बाल (Hair) उगे होते है। जैसे ही वायुमण्डल से वायु नासाछिन्द्रो में पहुंचती है, यहाँ वायु बालों (Hair) द्वारा छान दिया जाता है तथा धूलकण इत्यादि बालों में फंसकर रह जाते है। इसके बाद वायु श्लेष्मिक कला (Mucous membrane) के सम्पर्क में आती हे। यहाँ हानिकारक कीटाणुओं जीवाणुओ, वाइरस इत्यादि का नाश कर दिया जाता है। अब यहाँ पर वायु को आवश्यकतानुसार समशीतोष्ण, उष्ण अथवा आदर्् र कर दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप अगर वायु ठंडी हैं तो गरम, और गरम है तो आर्द्र करके अंदर की ओर भेज दी जाती है ताकि श्वसन अंग के नाजुक एवं कोमल अंगो को कोई क्षति नहीं पहुंचे।

ग्रसनी या फैरिन्क्स (Pharynx)- ग्रसनी 12-14 सेन्टीमीटर लम्बी एक नली है। यह पाचन एवं श्वसन (digestion and respiration) दोनों का ही कार्य करती है। ग्रसनी के सिरे पर, कोमल तालु (Soft palate) के ठीक पीछे अंत: नसिका छिद्र (Nasopharyngeal openings) होते हैं जिनके द्वारा श्वास मार्ग (Respiratory passage) मुख ग्रासन गुहिका (Bucco pharyngeal cavity) में आकर खुलता है। ग्रसनी के अंत पर दो द्वार होते है- (i) ऊपरी द्वार तथा (ii) निचला द्वार।

ऊपरी द्वार को गलट (Gullet) तथा निचले द्वार को घांटिद्वार या ग्लॉटिस (Glottis) कहते है। गलट को ''निगलक द्वार'' भी कहते है। यह ग्रासनली (Oesophagus) में आकर खुलता है। ग्लॉटिस को ''घांटिद्वार' कहते है। ग्लॉटिस ट्रेरकिया में जाकर खुलता है। ग्लॉटिस के ऊपर उपास्थि का एक द्विपिंडकीय ढक्कन होता है जिसे एपीग्लॉटिस (Epiglottis) अथवा ''घांटिढ़ापन'' कहते हैं।

साधारण: एपीग्लॉटिस खड़ी रहती है और सॉस की क्रिया में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करती है तथ हवा को स्वरयंत्र में जाने देती हे। परन्तु भोजन निगलते समय कोमल तालु सरक करर अंत: नासाछिद्रो को ढ़क लेती है। ग्लॉटिस एपीग्लॉटिस के पास आकर सट जाती है जिससे भोजन केवल ग्रासनली (Oesophagus) में ही जाता है तथा श्वासनली (Traches) में जा सकता है जिससे वह कण फेफड़ो में भी पहँुच सकता है। फलत: मृत्यु की भी संभावना रहती है। अत: खाना खाते समय बोलना अथवा हँसना नही चाहिए। समन्वय की कमी से भी

कभी-कभी खाद्य कण श्वासनली में चल जाते है जो विपरीत क्रमानुकुंचनी गतियों में तत्काल बाहर फेंक दिये जाते है।

लैरिन्क्स **(Larynx)** – लैरिन्क्स को स्वरयंत्र का बक्सा (Vocal Box) भी कहा जाता है। यह ग्लॉटिस द्वारा ग्रसनी (Pharynx) के पश्च भाग में खुलता है। यह भोजन को श्वासनली में ं जाने से रोकता है। लैरिन्क्स की भित्ति का कंकाल चार उपास्थियों का बना होता है जिसमें एक थायरॉयड उपास्थि, एक क्रीकोयॉड उपास्थि तथा दो एरीटिनॉयड उपास्थियाँ होती हैं। ये चारो उपास्थियाँ हायलिन प्रकार की उपास्थियाँ होती है।

लैरिन्क्स गुहा को लैरिन्जयल कोष (Laryngeal chamber) भी कहते हैं। इसमें दे जोड़ी लचीली स्तर पट्टियां (Vocal cords) होती है। पहली जोड़ी पट्टियां कृत्रिम स्वर पट्टियां तथा दूसरी जोड़ी वास्तविक स्वर पट्टियां कहलाती हैं। ये दोनों जोड़ी स्वर पट्टियां एरीटिनॉयड (Arytenoid cartilage) उपास्थियों से, थायरॉयड उपास्थि तक फैली रहती है तथा ये एक-दूसरे के आगे-पीछे स्थित होती है। ये दोनो जोड़ी स्वर पट्टियां लैरिन्कस गुहा के सिरे पर इस तरह व्यवस्थित होती है कि इनके बीच एक पतली-सी दरार बन जाती हे। इसी द्वार को ग्लॉटिस कहते है।

लैरिन्क्स (Larynx) से ही स्वर की उत्पत्ति होती है। बोलते समय लैरिन्क्स में स्थित स्वर राजुको (Vocal Cords) में कम्पन्न होता है। जिससे ध्वनि (Sound) उत्पन्न होती है।

निम्नलिखित अंग लैरिन्क्स का निर्माण करते है-

(1) क्रीकोयॉड उपास्थि **(Cricoid Cartilage) -** यह उपास्थि थाएरॉइड उपास्थि के ठीक नीचे स्थित रहती है। यह लैरिन्क्स का निचला हिस्सा बनाती है। श्वासनली से भी सम्बन्धित रहता है। इसकी आकृति सिगनेट रिंग (Signet Ring) जैसी होती है। यही एक ऐसी उपास्थि है जो सम्पूर्ण वायु मार्ग तथा श्वासनली में एक पूर्ण छल्ले (Complete Ring) के समान है।

चित्र : क्रीकोयॉड उपास्थि

(2) थाएरॉइड उपास्थि **(Thyroid Cartilage)** – यह उपास्थि श्वासनली के शीर्ष पर स्थित प्रथम उपास्थि का छल्ला है। इसका छल्ला आकार में सबसे बड़ा होता है और इसकी दो बड़ी भुजाएँ (Wide Wings of Laminae) होती है। ये दोनों भुजाएँ जुड़ती है। वहाँ एक उभार-सा दिखाई देता है, जिसे एडम्स एपल (Adam's Apple) कहते हैं।

थाएरॉयड उपास्थि सौत्रिक बाँधनी (Fibro Ligament) तथा पेशियों (Muscles) द्वारा हायवॉयड अस्थि (Hyoid Bone) से जुड़ी रहती है।

चित्र : थाएरॉयड उपास्थि

(3) एरीटिनॉयड उपास्थि **(Arytenoid Cartilage) -** यह उपास्थि वास्तव में छोटी-छोटी उपास्थियों में निर्मित दो रचनाएँ हैं जो क्रीकोयॉड के ऊपर के चौड़े भाग पर अवस्थित रहती है। इसका आकार पिरामिड की तरह होता है। इसी में स्वर पॉि्यों (Vocal Cards) की पाश्र्व छोर (Posterior ends) बँधे रहते है। सामने से, स्वर प ि्ट्यों का छोर थाएरॉयड उपास्थि की पाश्र्व सतह से जुड़ा रहता है।

एरीटिनॉयड उपास्थि में पेशियाँ होती है। इन्हीं पेशियों की उपस्थिति के कारण इनमें गति होती है तथा स्वर पट्टियों के तनाव (Tension of vocal Cords) में परिवर्तन होता है। इसी कारण आवाज के पिच (Pitch of the Voice) में भी परिवर्तन आ जाता है।

(4) एपीग्लॉटिस **(Epiglottis) -** एपीग्लॉटिस को कंठच्छद अथवा घांटिढ़ापन (Epiglottis) भी कहते हैं। यह पीले प्रत्यास्थ उपास्थि (Yellow Elastic Cautilage) की पत्ती के आकार की एक प्लेट की तरह होती है। यह स्तरित उपकला कोशिकाओं (Stratified Epithelical Cells) से आच्छावदित रहती है। इसकी स्थिति जीभ के ठीक पीछे और स्वय यंत्र के ऊपर सीधी खड़ी रहती है। इसका निचला सिरा डंठल के आकार का होता है जो लिगामेट (Ligment) के द्वारा थाएरॉयड उपास्थि से बँधा रहता है।

एपाग्लॉटिस का मुख्य काम निगलने के समय, भोजन को केवल ग्रसनी में जाने देता है और स्वर यंत्र तथा श्वासनली में भोजन जाने देने का रोकता है। श्वसन क्रिया के दौरान यह ग्रासनली को ग्रासनली (Oesophagus) के ढकने का कार्य भी करता है। शायद इसीलिए इसे घांटीढ़ापन भी कहते है।

(5) हायवॉयड अस्थि **(Hyoid Bone) -** यह नाल की आकार की एक छोटी सी अस्थि है जो ऊपर से निचले जबड़े की अस्थि तक तथा नीचे से ट्रेकिया तक स्थित रहती है। वास्तव में यह अस्थि बंधक के रूप में कार्य करती है। यह कई तरफ की पेशियों को बाँधने के लिए एक खूँटे की तरह काम करती है।

(6) स्वर पट्टियां **(Vocal Cords)** – इन्हें स्वर-रज्ज् भी कहा जाता है। ये इलासिटक सूत्रों (Elastic Fibres) की बनी होती हैं। ये सामने से थाएरॉयड उपास्थि तक फैली रहती है। स्वर पÍियों के कम्पन्न (Vibration) से ध्वनि उत्पन्न होती है। लैरिन्क्स से सम्बन्धित सभी पेशियाँ स्वर की उत्पत्ति को नियंत्रित करती है तथा भोजन निगलने की क्रिया के समय स्वर यंत्र के द्वार बन्द करने का काम करती है।

चित्र (A) लैरिन्कस स्वर यंत्र, पीछे से देखने पर

(b)) लैरिन्क्स स्वर यंत्र, सामने से देखने पर

लैरिन्क्स के कार्य -

1- यह ट्रैरकिया में खाद्यकण व पानी जाने से रोकता है।

2- यह हवा को ग्रसनी तथा ट्रैरकिया में जाने हेतु मार्ग प्रशस्त करता है। जैसे ही हवा लैरिन्क्स से होकर गुजरती है, यह हवा को आवश्यकतानुसार आदर्् र अथवा गर्म कर देता है। यह हवा को छानने का भी कार्य करता है।

3- स्वर पट्टियां (vocal Cards) विभिन्न प्रकार की ध्वनियों (Sound) का उत्पादन करती है।

4- भोजन निगलते समय लैरिन्क्स ऊपर की ओर उठ जाता है जिससे श्वासनली का मार्ग एपीग्लॉटिस या घांटी द्वार द्वारा ढ़क दिया जाता हे जिससे भोजन केवल ग्रासनली में ही जाता है और श्वासनली में नहीं घुस पाता। श्वासनली में केवल हवा ही प्रवेश पा सकती है।

श्वासनली तथा ब्रोन्काई **(Trachea and Bronchi)** – श्वासनली (Trachea) की लम्बाई 4 इंच तथा चौड़ाई 1 इंच होती है। यह उपास्थियों (cartilages) एवं झिल्लियों (Membrane) की बनी होती है। यह लैरिन्क्स से लेकर 5वीं थोरेसिक कशेरूका (5th Thoracic vertebrae) तक फैली रहती है तथा यहीं से दो नलिकाओं से विभक्त हो जाती है। ये दोनों नलिकाएँ क्रमश: एक बाँयी व दूसरी दाँयी ओर से फेफड़ो में जाती है।

चित्र : श्वासनली के साथ अन्य सम्बन्धित रचनाएँ

श्वासनली का अग्रभाग (पारदर्शक उपास्थियों से बना) 16-20 अपूर्ण अँगूठी की तरह गोल उपास्थियों से बना होता है तथा पश्च भाग तन्तुक ऊतक (Fibrous tissue) का बना होता है। ये अपूर्ण अंगूठी ही श्वासनली (Trachea) को पिचकने से रोकते है तथा हवा आसानी से स्वतंत्रतापूर्वक फेफड़ो में आ जा सकती है।

अपूर्ण अंगूठी सदृश उपास्थियाँ व तन्तुक ऊतक लचकदार होती है, जिसके कारण ग्रासनली (Oesophagus) फैल जाती है और भोजन आसानी से आमाशय की ओर चला जाता हैं।

श्वासनली (Trachea) तथा ब्रोन्काई की भित्ति का भीतरी स्तर स्तरित रोमाधि उपकला (Stratified eiliated epithelium) का बना होता है। भित्ति का शेष भाग संयोजी ऊतक (Connective tissue) का बना होता हे। इसकी भित्ति में कई सूचक गं्रथियाँ पायी जाती है। संयोजी ऊतक में अनेको श्लेष्मिक ग्रंथियाँ (Mucous Glands) तथा रोम (Hair) पाये जाते है। इन ग्रंथियों के द्वारा ही वायु में उपस्थित धूलकण (dust) रोक लिये जाते हे जो छींकते अथवा खाँसते समय बाहर आ जाते हैं। फलत: धूलकण फेफड़े के भीतरी भाग तक नहीं पहुंचपाते।

फेफड़े **(Lungs)**– वक्ष (Thorax) में एक जोड़ी गुलाबी रंग के फेफडे उपस्थित होते हैं जो एक दाहिनी तथा दूसरी बांयी ओर होते हैं। दोनों फेफड़ो के बीच के भाग में श्वासनली (Trachea), ग्रासनली (Oesophagus), महाधमनी (Vena cava) तथा महाशिरा उपस्थित होता है। फेफड़े एक कीप के आकार (cone) के स्पंजी अंग है जिनका आधार भाग नतोदर (Conecave) मध्यस्थ पेशी पर अवस्थित होता हैं। इसका शीर्ष भाग नुकीला होता है जो गर्दन के पास रहता है। प्रत्येक फेफड़ा एक वायुरूद्ध (Air tight) प्लूरल गुहा (Pleural vcavity) में बंद रहता है तथा प्रत्येक फेफड़ा एक दोहरी प्लूरल झिल्ली द्वारा पूर्णतया आवेष्टित रहता है। प्लूरल गुहा में लसदार लसीका भरी होती है। दाहिने फेफड़े में तीन पिण्ड तथा बाँये फेफड़े मे दो पिण्ड होते है। प्रत्येक पिण्ड गई उपपिण्डों में बँटे रहते हे। प्रत्येक ब्रोन्कस अपनी तरफ के फेफड़े में पहुंचकर कई छोटी-छोटी छल्लेदार शाखाओं में बँट जाता है जिन्हें ब्रोन्किओल्स कहते है। पुन: ये ब्रोन्किओल्स अनेकों छोटी-छोटी शाखाओं में बँट जाता है जिसे श्वसन ब्रोि्न्काओल्स (Respiratory bronehioles) कहते हैं। इन ब्रोन्किओल्स में उपास्थीय छल्लो का पूर्ण अभाव रहता है।

चित्र : फेफड़ा, श्वासनली तथा ब्रोन्कस

प्रत्येक ब्रोन्किओल पुन: अनेक वायुकोष नलिकाओं (Alveolar ducts) में बँट जाता है। इन्हीं वायुकोष नलिकाओं में सूक्ष्म एवं गोलाकार आयुकोष (Alveoli) खुलते हे। वायुकोष की भित्ति में असंख्य महीन रक्त केशिकाओं (Blood capillaries) का जाल बिछा रहता है। चूँकि फेफड़े असंख्य वायुकोषो के बने होते हैं। फलत: इसकी संरचना एक स्पंज की भाँति होती है। जिससे ये दबाने से दब जाते हैं। इन वायुकोषों में हवा भरी रहती है।

एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति के फेफड़े में 350 मिलियन वायुकोष उपस्थित होते हें तथा उसमें हवा के लिए 100 वर्गमीटर क्षेत्र उपस्थित होता हैं

चित्र : फेफड़ा का एक सामान्य खंड

चित्र : फेफड़े की एक काट

फेफड़े के कार्य (Functions of Lungs) –

1- यह रक्त को ऑक्सीजन में संयुक्त करता है तथा कार्बनडाइऑक्साइड जैसी विकारयुक्त गैसों को निमुक्त करता है।

2- यह रक्त को साफ करने में अहम् भूमिका निभाता है। रक्त द्वारा लाया गया कार्बनडाईऑक्साइड तथा वाष्प् फेफड़े में पहुंचती हे जहाँ ये साँस छोड़ने की प्रक्रिया में फेफड़े से नाक द्वारा उच्छवास (Expiration) कहलाती है।

3- यह शारीरिक ताप को सन्तुलित रखता है।

4- वयस्को में श्वासगति एक मिनट में 15 से 18 बार होती है तथा बच्चों में इसकी गति इससे अधिक बार होती है।

5.3 **श्वसन की क्रियाविधि (Mechanism of Respiration)**

श्वसन क्रिया के दौरान हम निरंतर ही वायु को फेफड़ो में भरते हे तथा निकालते हैं। फेफड़ो में वायु भरने व निकालने की क्रिया को ''श्वास-प्रश्वास की क्रिया'' फेफड़े फैल जाते है। साँस छोड़ते समय हवा फेफड़ो से बाहर निकलती है जिससे फेफड़े सिकुड़ जाते हैं। साँस लेने की क्रिया नि:श्वसन तथा छोड़ने की क्रिया उच्छवसन कहलाती है।

नि:श्वसन (Inspiration)- वक्ष गुहा (Thoracie cavity) एक बन्द बक्से की तरफ होती है जो अग्र से ग्रीवा, पश्च से डाएफ्रास अधर से स्टरनम (Sternum), पाश्र्वो से पसलियों (Ribs) तथा पृष्ठ से कशेरूक दण्ड (Vertebral coloumn) द्वारा घिरा रहता है। साँस लेते वक्त यह सभी दिशाओं में फैल जाता है तथा साँस छोड़ते वक्त पुन: अपनी वास्तविक स्थिति में आ जाता है।

चित्र : इन्टर कोस्टल पेशियाँ तथा पसलियाँ

सामान्य स्थिति में वक्ष गुहा की प्रत्येक पसली कुछ पीछे तथा बाहर की ओर तिरछी झुकी होती है जिन्हें बाह्य इन्टकोस्टल पेशियाँ (External Intercoastal muscle) कहते है। प्रत्येक दो पसलियों के बीच दो पेशी समूह आपस में क्रॉस का चिन्ह बनाते हुए अवस्थित होती है जिसे अन्त: इन्टरकोस्टल पेशियाँ (Internal Intercoastal muscles) कहते है। सामान्य स्थिति में डाएफ्रास (Diaphragm) भी वक्ष गृहा में एक गुम्बज की भाँति रहता है।

चित्र : हवा का श्वसन मार्ग में प्रवेश का चित्रण तीर के निशान के द्वारा दर्शाया गया है।

जब हम साँस लेते हैं तो बाह्य इन्टरकोस्टल पेशियों में संकुचन होता है जिससे पसलियाँ बाहर तथा कुछ आगे की ओर जाती हैं तथा स्टरनम कुछ अधर दिशा की ओर सरक जाता हैं। इसके साथ ही डाएफ्राम की पेशियों में संकुचन होता है जिससे वक्षगुहा के अधर भाग तथा पश्च भाग का आयतन बढ़ जाता है। फलत: वक्षगुहा में वायु का दबाव वायुमंडल के हवा के दबाव से कम हो जाता है और फेफड़े फूलकर बड़े हो जाते हैं। फेफड़े के फूलते ही वायुमंडल से हवा नाक द्वारा साँस के रूप में खींच ली जाती है जो नासिका मार्ग (Nasal passage), ग्रसनी

(Pharynx), लैरिन्क्स (Larynx), श्वासनली (Trachea), ब्रोन्काई (Bronchi) इत्यादि से होते हुए फेफड़ो के वायुकोषों में भर जाती है। इस प्रकार साँस लेने की क्रिया (Breathing in) या नि: श्वसन (Inspiration) का कार्य पूरा होता है। इसे अग्र रेखीय चित्रण द्वारा दर्शाया गया है-

साँस लेने की क्रिया

बाह्य इन्टरकोस्टल पेशियों का संकुचन

⇩

पसलियों को बाहर की ओर फैलना

⇩

स्टरनम का अधर दिशा में सरकना

⇩

डाएफ्राम की पेशियों में संकुचन

⇩

वक्ष गुहा का आयतन बढ़ना

⇩

वक्ष गुहा में वायु दाब वायुमंडल की दाब के अपेक्षाकृत घटना

फेफड़ो का फूलना

⇩

नाक द्वारा हवा खींचा जाना

⇩

श्वास मार्ग व श्वसन अंगो द्वारा फेफड़ो में पहुंचना

$$Hb + 4O_2 \xrightarrow{\text{संयोग}} Hb(O_2)_4$$

हीमोग्लोबिन + ऑक्सीजन — ऑक्सीहीमोग्लोबिन

$$Hb(O_2)_4 \longrightarrow \text{कोशिका व ऊतक} \longrightarrow Hb + O_2$$

हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन

$$\text{भोज्य पदार्थ} + O_2 \xrightarrow{\text{दहन क्रिया}} H_2O\uparrow + CO_2 + \text{ताप}$$

वाष्प

$$Hb + CO_2 \xrightarrow{\text{संयोग}} Hb(CO_2)$$

हीमोग्लोबिन + कार्बनडाइऑक्साइड — कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन

$$Hb(CO_2) \xrightarrow{\text{रक्त केशिकाओं}} \text{शिराओं} \longrightarrow \text{फेफड़ों}$$

कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन

$$Hb(CO_2) \longrightarrow Hb + CO_2\uparrow$$

कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन — हीमोग्लोबिन मुक्त

$$CO_2 \longrightarrow \text{नासामार्ग व नाक द्वारा बाहर}$$

कार्बनडाइऑक्साइड

चित्र : नि:श्वसन का रेखीय निरूपण

उच्छवन **(Expiration)-** साँस छोड़ने की क्रिया (Breathing out) में अंत: इन्टरकोस्टल पेशियों (Internal Intercoatal muscles) में संकुचन होता है जिससे पसलियाँ व स्टरनम खिसकर सामान्य स्थिति में आ जाती हैं। डाएफ्राम ऊपर की ओर चली जाती है जिससे डाएफ्राम की पेशियों में शिथिलन (Expansion) होता है जिससे यह पुन: अपनी वास्तविक स्थिति में आ जाता है। वक्षगुहा में आयतन में कमी हो जाती है। जिससे अपनी वास्तविक स्थिति में आ जाता है। वक्षगुहा के आयतन में कमी हो जाती है जिससे वक्षगुहा में वायु का दाब वायुमंडल के दाब में बढ़ जाता है। फलत: फेफड़ो पर दबाव पड़ता है। अत: फेफड़े पिचक जाते हैं। फेफड़ो के पिचकने से वायुकोषों में भरी वायु ब्रोन्काई, श्वासनली, लैरिन्क्स, ग्रसनी, नासाछिद्र होते हुए बाहर निकल जाती है। इस प्रकार साँस छोड़ने की क्रिया (Breathing out) या उच्छवसन (Expiration) का कार्य सम्पन्न होता हैं इसे निम्न रेखीय निरूपण द्वारा दर्शाया गया है -\

साँस छोड़ने की क्रिया में

⇩

अत: इन्टरकोस्टल पेशियों में संकुचन

⇩

पसलियों व स्टरनम का सामान्य स्थिति में आना

⇩

डाएफ्राम का ऊपर उठना

⇩

डाएफ्राम की पेशियों में शिथिलन

⇩

वक्षगुहा के आयतन में कमी

⇩

वक्ष गुहा में वायुदाब, वायुमंडल दाब से अधिक

⇩

फेफड़ो पर दाब पड़ना

⇩

फेफड़ो का पिचकना

⇩

हवा का फेफड़ो से बाहर निकलना

⇩

श्वसन अंगो द्वारा हवा का बाहर निकलना

चित्र : उच्छवसन क्रिया का रेखीय निरूपण

बाहरी तथा आंतरिक श्वसन क्रिया (External and Internal Respiration)

एक स्वस्थ युवा मनुष्य एक मिनट में 15 से 18 बार साँस लेता है। परन्तु श्वसन की सम्पूर्ण क्रिया तीन चरणों में सम्पन्न होती हे, जो निम्नानुसार है -

1- मनुष्य तथा वायुमंडल के बीच गैस का आदान-प्रदान

2- वायु से प्राप्त ऑक्सीजन रक्त द्वारा ऊतको में पहँुचना

3- ऊतको तथा रक्त कोशिकाओं के बीच ऑक्सीजन तथा कार्बनडाईआक्साइड का आदान-प्रदान।

इसमें पहले क्रिया श्वसन की, दूसरी रक्त परिसंचरण की तथा तीसरी क्रिया आन्तरिक श्वसन क्रिया है। श्वसन क्रिया के अन्तर्गत वायुमंडल से वायु फेफड़ो में नासाछिद्रों से होते हुए जाती है तथा फेफड़ो से अशुद्ध वायु (Co_2 वाष्प इत्यादि) नासाछिद्रों से होते हुए बाहर की और जाती है। फेफड़ो में वायुकोषों से शुद्ध आयु, ऑक्सीजन (O_2) रक्त मे उपस्थित हीमोग्लोबिन द्वारा ग्रहण कर ली जाती है जो रक्त परिसंचरण के दौरान शरीर के सभी ऊतको एव कोशिकाओं में जाती है जहाँ ऊतको एवं उनकी कोशिकाओं द्वारा ऑक्सीजन ग्रहण कर ली जाती है। यही ऑक्सीजन भोज्य पदार्थो का दहन करती है फलत: ऊर्जा एवं ताप की उत्पत्ति होती है। भोज्य पदार्थो के दहन की क्रिया के फलस्वरूप कार्बनडाईऑक्साइड एवं जल वाष्प का निर्माण होता है।

रक्त के हीमोग्लोबिन में कार्बनडाईआक्साइड से संयोग करने की अद्भूत क्षमता होती है। फलत: इन कोशिकाओं में उपस्थित कार्बनडाईऑक्साइड हीमोग्लोबिन के साथ संयुक्त होकर कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन बनाती है। अत: कोशिकाओं तथा रक्त कोशिकाओं (Blood capillaries) के मध्य गैसीय आदान-प्रदान भी अन्तर्श्वसन (Internal respiration) का एक भाग है। अब कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन युक्त रक्त शिराओं द्वारा फेफड़ो में पहुंचता है तथा यह कार्बनडाईऑक्साइड से मुक्त हो जाता है यह कार्बनडाईऑक्साइड गैस साँस छोड़ने की क्रिया में फेफड़े से बाहर नासिक मार्ग होतु हुए नाक से बाहर निकाल दिया जाता है।

नि: श्वसन एवं उच्छवसन की हवा की बनावट (The composition of Inspired and Expired air)

	नि: श्वसन (Inspired air)	उच्छवसन (Expired air)
ऑक्सीजन (O_2)	21%	16%

कार्बनडाइऑक्साइड (CO_2)	0.05%	4.1%
नाइट्रोजन (N_2)	78%	78.5%
जलवाष्ण (H_2O□)	अनिश्चित मात्रा	संतृप्त (Saturated)

फेफड़े की वायुधारिता **(vital capacity of lungs)** – वक्ष गुहा (Thoracic cavity) के फैलने से फेफड़े भी फूल जाते हे जिससे फेफड़े वक्षगुहा के बड़े हुए भाग में पूर्ण रूप फैल जाते हे। प्रत्येक श्वसन के दौरान हवा का परिमाण बढ़ता है। सामान्यत: एक स्वस्थ युवक 15-18 बार साँस लेता है। प्रत्येक बार साँस लेने के दौरान 350 से 500 घन सेन्टीमीटर हवा अंदर जाती व बाहर आती है। इस हवा को प्राण वायु (टायडल वायु) (Tidal air) कहते है। परन्तु गहरी साँस लेने पर 1600 घन सेन्टीमीटर वायु फेफड़े में आती व जाती है। इस हवा को अनुपूरक हवा (Compementary air) कहते है। गहरी साँस छोड़ने पर फेफड़ो से 1600 घन सेन्टीमीटर वायु बाहर की और जाती है जिसे परिपूरक वायु (Supplementary air) कहते है। इसके बावजूद भी फेफड़े में 1300 घन सेन्टीमीटर वायु बच जाती है जिसे अवशिष्ट वायु (Residual air) कहते हे। मनुष्य की जीवन वायुधारिता (vital capacity) 5000 घन से.मी. है।

इस प्रकार पूरी हवा तो फेफड़े से एक बार में निकल पाती है और न ही अंदर जा पाती है जिससे ठंड या सर्द हवा के आकस्मिक प्रवेश में फेफड़ो को कोई नुकसान नहीं पहुंचता है तथा हवा के तापमान का बहुत हद तक नियमन हो जाता है।

जैसा कि पूर्व में ही बताया जा चुका है कि मनुष्य की जीवन वायुधारिता 5000 घन सेन्टीमीटर है तथा इसे जानना महत्वपूर्ण है। सामान्यत: एक स्वस्थ मनुष्य 1600 घन सेन्टीमीटर वायु फेफड़ो से बाहर निकाल सकता हे। अत: जितनी अधिक गहरी साँस ली जाए और छोड़ो जाए उतना ही स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। इससे फेफड़ों की जीवन क्षमता (Vital capacity) बढ़ती है।

फेफड़े की वायुधारिता **:** मुख्य बिन्दू

(i) प्राण वायु या टायडल वायु (Tidal air) – 350-500 घन सेन्टीमीटर

(ii) अनुपूरक आयु (Complementary air)- 1600 घन सेन्टीमीटर

(iii) परिपूरक वायु (Supplementary air)- 1600 घन सेन्टीमीटर

(iv) अवशिष्ट वायु (Residual air)- 1300 घन सेन्टीमीटर

(v) जीवन वायुधारिता (vital capacity)- 500 घन सेन्टीमीटर

श्वसन क्रिया नियमन (Regulation of Respiration)

श्वसन क्रिया (Respiration) एक अनैच्छिक (Involuntary) एवं स्वचालित (Automatic) क्रिया हे। यही कारण हे कि जब हम सोते रहते हैं अथवा शारीरिक या मानसिक कार्य में व्यस्त रहते हैं तो भी श्वसन क्रिया स्वत: ही होती रहती हे। परन्तु इसके साथ ही श्वसन क्रिया ही श्वसन एक सीमित रूप में ऐच्छिक भी होती है। इसे हम इच्छानुसार अल्प समय के लिए रोक भी सकते है।

श्वसन क्रिया के नियमन को दो भागों में बाँटा गया है -

(1) तंत्रिक नियमन (Nervous regulation) तथा

(2) रासायनिक नियमन (Chemical regulation)-

(1) तंत्रिकी नियमन **(Nervous regulation)** – इसका नियमन वितरित तंत्रिका (vagus nerve) तथा साइनुएओरटिक तंत्रिका (Sinoaortic nerve) द्वारा होता है। इन्हीं तंत्रिकाओं द्वारा श्वसन केन्द उत्तेजित होते हैं। श्वसन केन्द्र (Respiratory centre) पश्च मस्तिष्क के सुषुम्ना शीर्ष (Medulla oblongata) में अवस्थित रहता है। यह श्वसन क्रिया में भाग लेने वाली सभी मांसपेशियों को नियंत्रित करता है। श्वसन केन्द्र में एक नि:श्वसन केन्द्र (Inspiration centre) तथा एक उच्छवास केन्द्र (Expiration centre) होता है। नि:श्वसन केन्द्र डाएफ्राम एवं इन्टरकॉस्टल पेशियों से तंत्रिका द्वारा सम्बन्धित होता है। इसी भांति उच्छवसन केन्द्र (Expiratory centre) फेफड़े में स्थित ग्राही केन्द्रों (Receptor centres) से तंत्रिका द्वारा सम्बन्धित रहता है। साँस लेने के दौरान नि: श्वसन केन्द्र से प्रेरणाएँ निकलती हैं जिसमें डाएफ्राम एवं बाह्य इन्टरकॉस्टल पेशियों में संकुचन होता है जिससे वायु फेफड़ो में भरी जाती है और फेफड़े फूल जाते हैं। फलत: फेफड़े में अधिक रक्त आकार शुद्ध होने लगता है। साथ ही साथ ह्रदय भी अधिक रक्त पम्प करने लगता है। इस तरह ह्रदय की यह क्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि फेफड़े के वायुकोषों में कार्बनडाईऑक्साइड की मात्रा उचित अनुपात में न जाए। अब नि:श्वसन केन्द्र की क्रिया बंद हो जाती है और डाएफ्राम एवं बाह्य इंटरकॉस्टल पेशियों में शिथिलन हो जाता है।

उच्छवसन (Expiration) के दौरान उच्छवसन केन्द्र (Expiratory centre) उत्तेजित हो जाता है जिससे फेफड़े पिचक जाते है व फेफड़े के वायुकोषों में भरी कार्बनडाईऑक्साइड विभिन्न मार्गो मे होते हुए नासाछिद्र द्वारा बाहर निकल जाती है। यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है।

(2) रासायनिक नियमन (Chemical regulation) – श्वसन क्रिया को मात्र तंत्रिका ही नही बल्कि इसकी गति व नियमन को कुछ रासायनिक एवं भौतिक दशाएँ भी प्रभावित करती है। रक्त मे उपस्थित कार्बनआक्साइड की मात्रा

श्वसन गति को सबसे अधिक प्रभावित करती है। रक्त में जैसे की कार्बनडाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है, मस्तिष्क को श्वसन केन्द्र उत्तेजित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप श्वसन गति तब तक बढ़ी रहती है जब तक रक्त में उपस्थित Co2 की मात्रा सामान्य न हो जाए। इसके अतिरिक्त भोतिक कार्य करने पर भी श्वसन गति बढ़ जाती है, जैसे- तेज दौड़ने, तेज चलने, सीढ़ियाँ चढ़ने, भारी बोझ, उठाने आदि। मानसिक उद्वेग, भय आवेश, क्रोध इत्यादि की स्थिति में भी श्वसन गति में अंतर हो जाता है। जीवन वायुधारिता (vital capacity) – जीवन वायुधारिता (vital capacity) हवा का वह आयतन है जो कि गहरी साँस लेने के उपरांत गहरी साँस छोड़ने से प्राप्त होता है। "It is the volume of air that can be breathed out by forced expiration after the deepest possible inspiration."

चित्र: स्पाइरोमीटर

सामान्य तौर पर पुरूष वायुधारिता 4300 घन सेन्टीमीटर तथा स्त्री की 3100 घन सेन्टीमीटर है। स्पाइरोमीटर (Spirometer) नामक यंत्र से जीवन वायुधारिता को नापा जाता है। जीवन वावुधारिता (vital capacity) अग्र कारकों पर निर्भर करती है-

(1) डीलडोल **(Size) -** यह व्यक्ति के डीलडौल पर निर्भर करती है।

(2) लिंग (sex)- पुरूष की जीवन वायुधारित महिला की जीवन वायुधारिता से अधिक होती है।

(3) शरीर की संस्थिति (Posture)- जीवन वायुधारित खड़े होने की स्थिति में सबसे अधिक होती है।

(4) सतह का क्षेत्रफल (Surface area)- सामान्यत: पुरूष के शरीर की सतह का क्षेत्रफल 1.8 वर्गमीटर होता है परन्तु महिला के शरीर की सतह का क्षेत्रफल पुरूष से कम होता है। पुरूष की जीवन वायुधारिता (Vital capacity) 2500 से.मी. प्रति वर्गमीटर तथा महिला की 200 से.मी. प्रति वर्गमीटर होती है।

(5) निद्रा (Sleep) निद्रा के दौरान जीवन वायुधारिता कम हो जाती है।

(6) रोग (Disease) – न्यूमोनिया (Pneumonia), यक्ष्मा (T.B.) और हृदयावरोध (Heart failure) के रोग में जीवन वायुधारिता सबसे कम हो जाती है।

श्वसन दर तथा उसका नियंत्रण (Respiration Rate and Its Control)

साँस लेने की क्रिया में हवा श्वास मार्ग (Respiratory Passage) से होकर फेफड़ो में अन्दर जाती हैं जिसे अन्त: श्वसन या नि:श्वसन (Inspiration) कहते है। साँस छोड़ते समय हवा (Co_2) फेफड़ों से, श्वास मार्ग से होकर बाहर निकलते है। साँस छोड़ने की क्रिया उच्छ्वसन (Expiration) कहलाती है। इस प्रकार एक नि: श्वसन तथा एक उच्छ्वसन मिलकर एव श्वसन क्रिया बनाते हैं। नवजात शिशुओं एवं छोटे-छोटे बच्चों में श्वसन दर एक मिनट में 25 से 40 बार होती हैं वयस्कों में श्वसन दर बच्चों की अपेक्षा कम व प्रति मिनट 18 बार होती है महिलाओं में पुरूषों की अपेक्षा श्वसन दर अधिक होती है। दौड़-धूप, कठिन व्यायाम, योग, सीढ़ियाँ चढ़ने, घुड़सवारी करने, बोझा ढ़ोने, साइकिल चलाने आदि के समय श्वसन दर बढ़ जाती है।

सामान्यत: श्वसन क्रिया की दर शरीर की O_2 सम्बन्धी आवश्यकतानुसार घटती बढती रहती है। शारीरिक श्रम, व्यायाम आदि के समय कोशिकाओं एवं उत्तको को अधिक कार्य करना पड़ता है। फलत: उन्हें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। इससे उनकी ऑक्सीजन की माँग बढ़ जाती है। कोशिकाओं को ऑक्सीजन की पूर्ति के लिए जल्दी-जल्दी साँस लेना एवं छोड़ना पड़ता है। इस कारण श्वसन दर बढ़ जाती है। इससे ठीक विपरीत निद्रा अथवा विश्राम की अवस्था में कोशिकाओं को अत्यधिक कार्य नहीं करना पड़ता है जिससे उन्हें अत्यधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता नही होती है। फलत: साँस लेने एवं छोड़ने की क्रिया सामान्य हो जाती है और श्वसन दर सामान्य हो जाती है। श्वसन क्रिया एवं उसकी दर का घटना-बढ़ना ऑक्सीजन तथा कार्बनडाइआक्साइड की

मात्रा द्वारा स्वत: नियंत्रित (Automatically Regulated) होता है। मस्तिष्क में श्वसन केन्द्र होते हैं। ये श्वसन केन्द्र (Respiratory Centres) इन गैसों की कम अथवा अधिक मात्रा में अवसापित या उत्तेजित होते हैं। जब शरीर में Co_2 की मात्रा की अधिकता हो जाती है, तो श्वसन केन्द उत्तेजित हो जाते है जिससे साँस लेने की क्रिया बढ़ जाती है। फलत: श्वसन दर बढ़ जाती है जैसा कि कठिन परिश्रम और व्यायाम की अवस्था में होता है। व्यायाम अथवा कठिन श्रम के समय कोशिकाओं एवं उतको में अधिक Co_2 की मात्रा बढ़ते ही श्वसन केन्द्र (Respiratory Centres) उत्तेजित हो जाते है। फलत: श्वसन दर तीव्र हो जाती है और अधिक मात्रा में ऑक्सीजन फेफड़ो में जाने लगता है तथा कार्बनडाईऑक्साइड निष्कासित होने लगता हे। फलस्वरूप साँस लेने एवं छोड़ने की क्रिया तेज हो जाती है। पेशियों के अधिक सक्रिय होने से रक्त परिसंचरण (Blood Circulation) भी बढ़ जाता है और इससे फेफड़ो में फुफ्फसीय धमनी (Pulmonry Atrery) से तेजी से रक्त पहुंचने लगता है।

श्वसन क्रिया जीवनपर्यन्त निरन्तर चलती रहती है। श्वसन क्रिया का एक लम्बे समय तक नहीं होना मृत्यु का सूचक होता है। केवल 4-6 मिनट तक ही शरीर की सभी कोशिकाएँ बिना श्वसन क्रिया के रह सकती है तत्पश्चात् वे मरने लगती हैं। यद्यपि श्वसन क्रिया अनैच्छिक क्रिया (Involuntary Action) है। फिर भी, कुछ समय तक श्वसन क्रिया की दर एवं गहराई को स्वेच्छा से रोककर रखा जा सकता है। परन्तु यह क्रिया भी तंत्रिका तत्र के अचेतन नियंत्रण (Unconsious Control of Nervous System) द्वारा स्वत: नियंत्रित होता है।

श्वसन केन्द्र (Respiratory Control) मस्तिष्क में उपस्थित तंत्रिका तंत्र के मेरू शीर्ष (Medulla oblongata) में उपस्थित रहता है। मध्यच्छद पेशी (Diapharagm) तथा अन्त पशुका पेशियाँ (Intercoastal Muscles) तंत्रिका तंत्र द्वारा मेरू शीर्ष से सम्बन्धित रहते है। अपवाही तंत्रिका 9Efferent Nerves) संवेगो (Impulses) को श्वसन पेशियों (Respiratory MNuscles) तक ले जाते है। मध्यच्छद तंत्रिका (Phremic Nerves) ग्रैव तंत्रिका मूल (Cervical Nerve Root) से कुछ संवेगो को लेकर मध्यच्छद पेशी (Diaphragm) तक पहँचते है। अन्तर पशुका तंत्रिकाएँ (Intea Coastal Nerves) संवेगों को सुषुम्ना (spiral Cord) के निचले भाग से अन्तर प पशुका पेशी (Inter coastal Muscles) तक ले जाते है। इन संवेगो के पहुंचते ही मध्यच्छद पेशी एवं अन्तर पशुका का पेशी में ताललयबद्ध संकुचन (Rhythmical Contraction) होने लगते हैं। यह दर लगभग एक मिनट में 15-18 बार होती हे। इस प्रकार मस्तिष्क में उपस्थित केन्द्रग (Respiratonry Centors) के द्वारा श्वसन (Rate of Respiration) नियंत्रित होता है।

5.4 **कृत्रिम श्वसन** (Artificial Respiration)

जब किन्हीं-न- किन्हीं कारणों से स्वत: साँस लेने की क्रिया रूक जाती है परन्तु हद्रय का धकड़ना (Heart Beat) जारी रहता है तो ऐसी परिस्थिति में कृत्रिम श्वसन (Artificical Respiration) देखकर रोगी की

जान की रक्षा की जाती है। प्राय: चोट, सदमा, विद्युत आघात (Electric Shock), किसी औषधि के अत्यधिक सेवन आदि कारणों से श्वसन क्रिया रूक जाती है। मुख अथवा गले मे कीचड़, बालू, म्यूकस, रक्त, पानी आदि के जारी रहती है। जब तक हृदय धड़कता रहता है जब तक कृत्रिम श्वसन देकर व्यक्ति के जान बचाने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए। क्योंकि जबतक हद्रय स्पन्दित होता रहता हैतब तक शरीर के ऊतकों एवं कोशिकाओं को परिसंचरित रक्त से थोड़ा-थोड़ा ऑक्सीजन मिलता रहता है जिससे वे अपना कार्य करते रहते हैं और वे जीवित रहते हैं। जैसे ही उन्हें ऑक्सीजन मिलना बन्द हो जाता है तो निष्क्रिय हो जाते है और अन्तत: मर जाते हैं। तंत्रिका तंत्र भी आक्सीजन के अभाव में कुछ ही मिनट तक जीवित रह पाते हैं। सबसे ज्यादा नुकसान हद्रय को पहुंचता है और ऑक्सीजन के अभाव में धड़कता बन्द कर देता है। सॉस गति का न होना, हृदय का नही धड़कना ये दोनों ही लक्षण मृत्यु का संकेत देते है। इसलिए आक्रान्त व्यक्ति की कीमती जान को बचाने के लिए यथा शीघ्र कृत्रिम श्वसन शुरू कर देनी चाहिए। साँस रूकने के पश्चात् केवल 4-8 मिपट तक हर हद्रय स्पन्दित होता रहता है और शरीर के ऊतकों, कोशिकाओं एवं जैविक अंगो (vital Organs) को रक्त मिलता है। इसके पश्चात् हृदय स्पन्दित होना बन्द कर देता है और व्यक्ति को अपने जान से हाथ धोना पड़ता है। अत: कृत्रिम श्वसन न केवल गृह विज्ञानियों, चिकित्सको, स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं, नसों को ही देनी आनी चाहिए बल्कि यह सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक है। आजकल के भाग-दौड़ की जिन्दगी में महिलाएँ घर से बाहर नौकरी करने जाती है और अपने बच्चों को आया (नौकरानी) के भरोसे छोड़ जाती है। इस बीच अगर बच्चे को चोट लग जाती है अथवा विद्युत आघात लग जाता है अथवा बच्चा गले में कोई मटर, चना जैसी चीजें अटका लेता है तो तुरन्त ही नौकरानी को देखना चाहिए कि बच्चा साँस ले पा रहा है नही। जब तक बच्चे की मृत्यु को चुकी होगी। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को कृत्रिम श्वसन देना अवश्य आना चाहिए ताकि आक्रांता व्यक्ति की अनमोल जान की रक्षा की जा सके।

कृत्रिम श्वसन देने से पूर्व यह देख लेना चाहिए कि व्यक्ति को हृदय धड़क रहा है अथवा नहीं। अगर हृदय का धकड़ना बन्द हो गया है तो कृत्रिम श्वसन देने से कोई लाभ नहीं है। अत: हद्रय की धड़कन की जाँच के बिना हाथ की नाड़ियों को कलाई के ठीक नीचे अँगूठे से पकड़कर देखना चाहिए। अगर हृदय का धड़कना जारी है तो इसका आभास नाड़ी गति से हो जाता है। अगर नाड़ी गति धीमी है और स्पष्ट पता नहीं चल पा रहा है तो परिचारक को अपना कान आक्रांत व्यक्ति के वक्षस्थल पर रखकर ध्यान से हद्रय की धड़कन को सुनना चाहिए। अगर हृदय में स्पन्दन होता रहता है तो धक्-धक् की आवाज सुनाई पड़ेगी और पसलियाँ ऊपर-नीचे होती रहती है। अत: प्राण रक्षा की दृष्टि से कृत्रिम श्वसन की क्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

सहनशीलता, कृत्रिम श्वसन को देने में दूरदर्शिता व धैर्य, विवके और बुद्धिमानी की आवश्यकता है। यों तो देखने में कृत्रिम श्वसन देना अत्यन्त सहज और तरल सरल लगता है परन्तु इन्हें सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए पर्याप्त प्रतिशक्षण एवं अभ्यास की आवश्यकता है। कृत्रिम श्वसन तब तक जारी रखना चाहिए जब तक कि व्यक्ति स्वत:

की साँस नहीं लेने लगे अथवा चिकित्सक आकर उसका इलाज आरम्भ नहीं कर दें। परन्तु कृत्रिम श्वसन देने से पूर्व दो बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए -

(1) ह्रदय स्पन्दित हो रहा है या नही।

(2) श्वास मार्ग कहीं अवरूद्ध तो नहीं है।

उपरोक्त दोनों बातों की जाँच करने के उपरान्त शीघ्रातिशीघ्र कृत्रिम श्वसन प्रारम्भ कर देनी चाहिए। जरा-सी विलम्ब से व्यक्ति की जान जा सकती है।

कृत्रिम श्वसन का उद्देश्य (Objectives of Artificial Respiration)

कृत्रिम श्वसन देने की कई विधियाँ हैं परन्तु सभी का उद्देश्य केवल एक ही है और वह है आक्रान्त व्यक्ति की जान की रक्षा करना (To Protect the Costly Life of a Patient)

कृत्रिम श्वसन के निम्न उद्देश्य हैं -

(1) कृत्रिम श्वसन द्वारा वक्षस्थल पर उसी क्रम से दबाव डाला जाता है जिस क्रम से मध्यच्छद पेशी (डाएफ्राम) (Diaphragm) तथा पशुकान्तर पेशियाँ (Intercoastal Muscles), दोनों सम्मिलित रूप से दबाव डालकर वक्ष गुहा (Thoracic Cavity) को क्रमानुसार कम करती है और पुन: उन्हे बढ़ती हैं। फलत: हवा का आवागमन स्वाभाविक रूप से फेफड़ो में होने लगता है।

(2) शरीर के कई अति महत्वपूर्ण जैविक केन्द्रो एवं अंगो (vital Centres and Organs) को जीवित रखा जा सकता है।

(3) कृत्रिम श्वसन द्वारा श्वसन केन्द्रों को उत्तेजित किया जाता हे जिसस श्वसन क्रिया स्वत: ही प्रारम्भ हो जाती हैं

(4) कृत्रिम श्वसन धैयपूर्वक निरन्तर दी जानी चाहिए। जब तक विधि से लाभ नहीं हो तो दूसरी विधि से उपयोग किया जाना चाहिए।

(5) कृत्रिम श्वसन तब तक दी जानी चाहिए जब तक कि आक्रान्त व्यक्ति स्वत: ही साँस नहीं लेने लगे।

(6) कृत्रिम श्वसन जितना जल्दी हो शुरू कर देना चाहिए क्योंकि श्वास अवरोध की दशा में हद्रय मात्र 4-8 मिनट तक की स्पन्दित होता है। इसके पश्चात् ह्रदय कार्य करना बन्द कर देता हे। इसके बाद कृत्रिम श्वसन देने से कोई लाभ नहीं है क्योंकि व्यक्ति की मृत्यु हो चुकी होता है।

इसलिए कृत्रिम श्वसन देना शीघ्रातिशीघ्र आरम्भ कर देनी चाहिए। परन्तु कृत्रिम श्वसन देने से पूर्व निम्न बातो पर विशेष ध्यान देना चाहिए -

(1) आक्रांत व्यक्ति के गले, वक्ष तथा कमर पर की वस्तु या अन्य सामानों को शीघ्रता से ढ़ीला कर देना चाहिए।

(2) मुँह अथवा गले में पानी, बालू, रक्त, म्यूकस, कीचड़ या अन्य चीज अटका हो तो साफ कर देना चाहिए। इसके बाद गीले साफ कपड़े से मुँह पोंछ देना चाहिए।

(3) श्वास मार्ग (Respiratory Passage) को साफ कर देना चाहिए ताकि वायु का आवागमन हो सके।

(4) डूबे हुए व्यक्ति के शरीर से जल को बाहर निकाल देना चाहिए। इसके लिए रोगी व्यक्ति के पैरों को पकड़कर थोड़ा गोलाकार चक्कर लगाते हुए घुमना चाहिए।

(5) रोगी को गर्म रखना चाहिए। अगर हाथ-पाँव ठण्डे हो गये हो तो इन्हे हाथों में मलकर गर्मी प्रदान करना चाहिए। गर्म वस्त्र, जैसे - ऊनी चादर, कम्बल आदि ओढ़ा देनी चाहिए।

(6) रोगी व्यक्ति की जीभ अक्सर उलट जाती हे जिससे श्वास मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। इसलिए जीभ को खींचकर थोड़ा बाहर की ओर कर देना चाहिए।

(7) अगर कृत्रिम श्वसन सफल हो जाती है और आक्रांत व्यक्ति स्वत: साँस लेने लगता है, उसमें चेतना लौट आती है तो उसे गर्म पेय पदार्थ (चाय, कॉपी, दूध) पीने को देना चाहिए।

कृत्रिम श्वसन देने की गई विधियाँ हैं। कुछ विधियों में केवल उपचारक अथवा परिचारक एवं सहायक की आवश्यकता होती है जबकि कुछ विधियाँ में यांत्रिक उपकरण की जरूरत पड़ती है। कृत्रिम श्वसन विधि जिन्हें यांत्रिक उपकरण की सहायता से दी जाती है उन्हें यांत्रिक विधि (Instrumental Method) कहते है। यह उन जगहों पर दी जाती है जहाँ लम्बे समय (Long Period) तक कृत्रिम की आवश्यकता पड़ती है जैसे बाल पक्षाघात अथवा पोलियों की अवस्था में।

इस प्रकार कृत्रिम श्वसन विधियों को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है-

1. उपचारक द्वारा हाथों से अथवा अन्य तरीकों से कृत्रिम श्वसन देने की विधि (Mannual Method)- इसके अन्तर्गत निम्न विधियाँ आती है -

(1) शेफर विधि (Schafer's Method)

(2) इव राकिग विधि (Eve's Rocking Method)

(3) सिलवेस्टर विधि (Sylvesters Method)

(4) मुख से मुख श्वसन विधि (Mouth to mouth Respiration Method)

(5) होल्गर नेलसन विधि (Holgor Neilson method)

(2) यांत्रिक उपकरणों द्वारा श्वसन विधि **(Instrumental Method)** – अन्तर्गत मुख्य दो विधियाँ आती है।

1. ड्रिकर विधि (Mrinker's Method)

2. ब्रेग पाल पल्सेटर विधि (Bragg Pal Pulsator Method)

उपरोक्त सभी प्रकार के कृत्रिम श्वसन देने की विधियाँ का संक्षिप्त वितरण किया जा रहा है।

(1) शेफर विधि (Schafer's Method) – कुछ समय पूर्व तक शेफर विधि द्वारा कृत्रिम श्वसन देना अत्धधिक प्रचिलत था। परन्तु आजकल होल्ग नेलसन विधि का प्रचलन अधिक बढ़ गया है। ऐसा माना जाता है कि होल्गर नेलसन विधि द्वारा कृत्रिम श्वसन देना ज्यादा प्रभावी है क्योंकि फेफड़ो का संवातन (Ventilation of Lungs) अतिशीध्रता से और सफलतापूर्वक सम्पन्न होता है। शेफर विधि द्वारा कृत्रिम श्वसन देना सरल है और यह अत्यन्त प्रचलित विधि है। यह घरेलू विधि है। थोड़ी सी प्रशिक्षण एवं अभ्यास से इस विधि से कृत्रिम श्वसन देकर आक्रान्त की जान बचा ली जा सकती हे। यह विधि सम्पूर्ण विष्व भर में प्रचलित है। शेफर विधि से कृत्रिम श्वसन देने के लिए आक्रान्त अथवा रोगी व्यक्ति को पेट के बल में लिटा दिया जाता है। छाती के नीचे एक छोटा सा तकिया अथवा गद्दी रख दी जाती है। सिर को एक ओर मोड़ दिया जाता है जिससे कि यह पृथ्वी से थोड़ा ऊपर पर रहे। रोग के हाथों को सीधा ऊपर की और फैला दिया जाता है। गद्दी अथवा तकिया नहीं मिलने पर हाथों को ही मोड़कर धरती के नीचे रखा जाता है। उपचारक को रोगी व्यक्ति के बायीं और उसकी जाँच के पास, सिर की और मुँह करके बैठना चाहिए। अब उपचारक को अपने दोनों हाथों को रोगी की पीठ पर, निचली पसलियों के समीप, कमर के पास इस प्रकार से रखना चाहिए कि दोनों अंगूठे रोगी के पीठ के मध्य रीढ़ की हड्डी को ऊपर एक-दूसरे से सटे रहे तथा अँगुलियाँ फैली हुई दोनों बगलों की और लटकी रहे। उपचारक को बिना कुहनी मोड़े घुटनों के ऊपर खड़े होते हुए कुछ आगे की ओर इस प्रकार से झुकना चाहिए कि उसका सिर कंधो के बराबर रेखा पर आ जाए तथा रोगी की पीठ पर पूरा दबाव डालना चाहिए। ऐसा करने से उपचार के शरीर भार का पूरा दबाव (Whole Pressure) रोगी व्यक्ति के नीचे पसलियाँ पर पड़ता है। इससे अन्त: उदरीय दबाव (Inter abdominal Pressure) बढ़ता जाता है और मध्यच्छद पेशी (Duaphragm) ऊपर की ओर उठता हे फलत: हवा फेफड़े से बाहर निकल जाती है। इस क्रिया को लगभग दो सेकेण्ड तक करनी चाहिए।

दूसरी बार परिचारक अपने हाथ को बिना हटाये अपने "शरीर भार के दबाव को हल्का करता है और धीरे-धीरे पीछे की और लौटकर अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त करता है। इससे वक्ष गुहा (Thoracic Cavity) का दबाव कम हो जाता है। अत: वे फैल जाती है। फेफड़ा फैल जाता हा और मध्यच्छद पेशी (Diapragm) का दबाव कम हो जाता है जिससे वह नीचे झुककर अपने स्थान पर आ जाती हे। फलत5 वायु "वास मार्ग से होतु हुए फेफड़े में प्रवेश कर जाती है। इस क्रिया में भी दो सेकेण्ड का सयय लगता है। इसी क्रम में इस क्रिया को बार-बार दोहरायी जाती है। इस प्रक्रिया को एक मिनट में 12-15 बारर करनी चाहिए। इस प्रक्रिया द्वारा "वसन तब तक दी जानी चाहिए जब तक कि रोगी स्वत: ही साँस न लेने लगे और उसकी चेतना न लौट आये। शेफर विधि से फेफड़ो का

संवाहन 6500 C.C. प्रति मिनट तक हो जाता है जो रक्त के सम्पूर्ण वायु संचारण (Complete Aeration) के लिए पर्याप्त है।

(2) इव राकिंग विधि **(Eve's rocking Method)-** इस विधि में आक्रान्त व्यक्ति को पहले एक स्ट्रेचर पर लिटा दिया जाता है। फिर उसे कसक स्ट्रेचर पर बाँध दिया जाता है ताकि ऊपर-नीचे होने से रोगी नहं गिर पाये। परन्तु बाँधते वक्त यह ध्यान रखा जाता है कि उसके वक्षस्थल बन्धन मुक्त रहे। अब रोगी के सिर तथा पैर को एक के बार एक करके, बारी-बारी में 45 डिग्री के कोण पर झुकाया जाता है। जब सिर को झुकाया जाता है तो उदरांग (Abdominal Visceera) भीतर की और दब जाता हे औ मध्यच्छदे पेशी (diaphragm) पर दबाव पड़ता है। जिससे फेफड़ो पर दबाव पड़ता है और फेफड़ो के भीतर के हवा बाहर की ओर निकल जाती है।जब रोगी के पैरो को 45^0 के कोण से झुकाया जाता हे तो मध्यच्छद पेशी (diaphragm) नीचे की ओर झु कजाते है। इसके झुकने से वक्ष गुहा (Thoracic Cavity) फैल जाती है और फेफड़े भी फैलने लगते हैं तथा वे बाहरी वायु को श्वास मार्ग की ओर से से खींचने लगते हैं जिससे कि फेफड़े में वायु प्रवेश कर जाती है। सिर और पैरों को झुकाने की इस सम्पूर्ण क्रिया को करने में कु7 सैकेण्ड का समय लगता है। इनमें से पैरो को झुकाने में 3 सैकेण्ड तथा सिर को झुकाने का समय लगता है। अत: इस क्रिया को एक मिनट में 8-9 बार करनी चाहिए। इस क्रिया को तब तक करते रहना चाहिए जब तक कि आक्रान्त व्यक्ति स्वयं साँस नही लेगे लगे अथवा चिकित्सक न आ जावें।

(3) सिल्वेस्टर विधि (Sylvester's Method)- इस विधि में रोगी व्यक्ति को पीठ के बल (Supine Position) लिटा दिया जाता है। इस विधि को सफलतापूर्वक करने के लिए एक सहायक की आवश्यकता पड़ती है। सहायक रोगी व्यक्ति के जीभ को कपड़े से पकड़कर बाहर की ओर खींचे रहता है। रोगी व्यक्ति के कंधो के नीचे तकिया अथवा गद्दी लगा दी जाती है जिससे कि उसका सिर कंधे से नीचा हो जाए। उपचारक अथवा परिचारक रोगी व्यक्ति के सिर के पास घुटने के बल बैठता है और उसके दोनों बाँहो को पकड़ लेता है। इसके बाद परिचारक रोगी व्यक्ति की बाँहों को मोड़ते हुए उसके वक्ष पर ले जाता है और धीरे-धीरे वक्ष पर दबाव डालता है। दूसरी बार परिचारक रोगी व्यक्ति के बाँह को धीरे-धीरे उठाकर दबाव कम करते हुए सिर के पास लाकर पृथ्वी से सटा देता है। ऐसा करने से वक्ष गुहा पर दबाव पड़ता है जिससे फेफड़े से वायु बाहर की ओर निकल जाती है। दबाव हटाने से वक्ष गुहा (Thoracic Cavity) फैल जाती है जिससे फेफड़े भी फैलने लगते हैं और फेफड़े बाहरी वायु को श्वास मार्ग से होकर ऊपर की ओर खींचने लगते हैं। इस प्रकार इस सम्पूर्ण क्रिया को करने में 3-4 सैकेण्ड का समय लगता है। अत: प्रति मिनट इस क्रिया को 12-15 बार करनी चाहिए। इस क्रिया को भी तक तक दुहराते रहना चाहिए जब तक कि स्वत: श्वसन प्रारम्भ न हो जाए।

(4) मुख से मुख में कृत्रिम श्वसन देने की विधि (Mouth to Mouth Respiration Method)- यह विधि अत्यन्त सरल एवं प्रभावी विधि है। इस विधि में रोगी व्यक्ति को पीठ के बल (Supine Position) में लिटा दिया

जाता है और उसके कंधे के नीचे एक छोटा-सा तकिया अथवा गद्दी लगा दी जाती है जिससे उसका सिर कंधो से थोड़ा नीचे जाए। रोगी के मुँह को अच्छे से साफ कर दिया जाता है। अगर मुँह में कीचड़, बालू, म्यूकस रक्त आदि फँसा हो तो निकाल दिया जाता है। रोगी का पूरा मुँह खोलकर उस पर पतला साफ कपड़ा अथवा रूमाल रख देना चाहिए।परिचारक को अपना मुँह खोलकर तथा गहरी साँस भरते हुए अपने मुँह को रोगी के खुले मुँह पर रखना चाहिए। परिचारक द्वारा अपने दाँये हाथ से रोगी की नाक को अच्छी प्रकार से कसकर बन्द कर देनी चाहिए ताकि हवा नासा मार्ग से होकर बाहर नहीं निकल पाये। परिचारक गहरी साँस भरकर रोगी के मुँह पर लाकर छोड़ देता है जिससे कि रोगी की छाती फूल जाती है। इसके बाद परिचालक अपने मुख से रोगी के मुँह की वायु को खींचता है। इसी क्रम में इस क्रिया को बार-बार दुहरायी जाती है। इस क्रिया को प्रति मिनट 10-12 बार करनी चाहिए।अन्य विधियों से यह विधि ज्यादा आधुनिक है। इसका प्रयोग करने से परिणाम बहुत अच्छे मिलते हैं। आजकल इस विधि का प्रचलन काफी बढ़ गया हे। इस विधि द्वारा कृत्रिम श्वसन देना अत्यन्त सहज और सरल है। रेडक्रास ने इस विधि को सबसे ज्यादा उपर्युक्त एवं विश्वसनीय माना है। रेडक्रास का नारा है - ''आपकी साँस एक जान बचा सकती है'' (Your Breath can save a life)

(5) होल्गर नेलसन विधि (Holger Neilson Method)- आजकल होल्गर नेलसन विधि द्वारा कृत्रिम श्वसन देने का प्रचलन काफी बढ़ गया है। ऐसा माना जाता है कि इस विधि द्वारा फेफड़े का संवाहन (Ventilation of Leungs) अत्यन्त सहजता एवं सरलतापूर्वक सम्पन्न होता है जिसे वायु का आवागमन फेफड़े से शीघ्रता से हो जाता है। इसे पीठ दाब एवं बाँह उठा (Back Pressure and Arm Lift Method) भी कहते है। इस विधि से कृत्रिम श्वसन देने से स बात की जाँच कर ली जाती है कि मुँह गले में कोई चीज तो नही अटकी हुई हैं अगर है तो उसे निकाल दी जाती है। मुँह को अच्छे प्रकार से सफ कर दिया जाता है। जीभ को कपड़े से पोंछकर बाहर की ओर खींचकर निकाल दिया जाता है। रोगी को पेट के बल (Prone Position) में लिटा दिया जाता है। उसके सिर की एक तरफ मोड़कर रखा जाता है। रोगी के दोनों को स्कन्ध संधि पर से अग्र बाहु को आंकुचित करके रखा जाता है। परिचारक रोगी के सिर की तरफ घुटने के बल बैठ जाता है तथा अपने दोनों हाथों को रोगी के पीठ पर इस प्रकार से रखता हे कि दोनों हाथों के अँगूठे के मध्य रेखा पर पास-पास सटे रहें और अँगुलियों फैली हुई तथा नीचे की और झुकी रहें। अब परिचारक धीरे-धीरे कुछ आगे की और झुकता है और रोगी के छाती पर दबाव डालता है। इसमें 2 सैकेण्ड का समय लगता है। पूरा दबाव डालने के बाद परिचारक दबाव को ढीला छोड़ते हुए पीछे की ओर धीरे-धीरे उठते हुए अपने हाथों को फिसलाते हुए रोगी के हाथों को कुहनी तक ले जाता है। इस प्रकार परिचारक अपने पूर्व स्थिति में आ जाता है। इस क्रिया को करने में उसे 1 सैकेण्ड का समय लगता हैं। इसके बाद परिचारक अतिशीघ्रता से रोगी के हाथों को कुहनी के थोड़ा ऊपर कसकर पकड़ लेता है और उन्हें सामने की तरह खींचते

हुए उठाता है तथा उसके वजन को 2 सैकेण्ड तक संभालता है। इसके बाद रोगी के हाथों को नीचे लाकर छोड़ देता है।वास्तव में इस विधि में तीन क्रियाओं की पुररावृत्ति होती रहती है, ये क्रियाएँ इस प्रकार से है -

(1) वक्ष पर दबाव डालना

(2) वक्ष पर से दबाव को हल्का करना, और

(3) हाथों को कसकर पकड़ना तथा उन्हें फैलाकर नीचे रखना।

इस प्रकार इस विधि में उपरोक्त तीनों प्रक्रियाओं की पुनरावृत्ति तब तक की जाती है जब तक कि आक्रान्त व्यक्ति स्वत: ही साँस नहीं लेगे लगे। स्वत: श्वसन क्रिया आरम्भ होने के बाद भी कुछ देर तक कृत्रिम श्वसन को जारी रखना चाहिए ताकि श्वसन क्रिया सामान्य हो जाए और सही ढ़ंग से होने लगे। इस विधि में, जब परिचारक रोगी की छाती (वक्ष) पर दबाव डालता है तो वक्ष गुहा (Thorcic Cavity) दब (Compressed) जाती हे जिससे फेफड़े की हवा बाहर निकल जाती है। फिर जब परिचारक दबाव को हल्का करते हुए हटा लेता है तो वक्षगुहा फैल जाती है। इसके फैलते फेफड़े फैल जाते है और बाहर से वायु फेफड़ो में प्रवेश कर जाते है। इस सम्पूर्ण क्रिया को करने में 5-6 सैकेण्ड का समय लगता है। इस क्रिया को प्रति मिनट 10-12 बार करनी चाहिए।

(2) यांत्रिक उपकरणों द्वारा कृत्रिम श्वसन **(Instrumental Method)** – इसमे कृत्रिम श्वसन देने के लिए या यांत्रिक उपकरणों की आवश्यकता होती है। इसमें भी प्राय: दो विधियों से कृत्रिम श्वसन दिया जाता है। ये दोनो विधियाँ निम्नानुसार है -

1. िड्रंकर रेसपिरेटर विधि (drinker's Respirator Method) – इस विधि से कृत्रिम श्वसन देने के लिए रोगी को एक वायुरूद्ध कक्ष में लिटा दिया जाता है। परन्तु उसका सिर बाहर की और रहता है। मशीनी पम्पों के द्वारा वायुरूद्ध कक्ष के दबाव को एक बार कम किया जाता है तो दूसरी बार बढ़ा दिया जाता है। इस प्रकार वक्षगुहा भी फैलते और संपीड़ित होते रहती है।जब वायुरूद्ध कक्ष का दबाव कम किया जाता है तो वक्षगुहा फैल जाती है। इसके फैलते ही फेफड़े फैल जाते हैं तथा बाहर से वायु फेफड़ो में प्रवेश करने लगती है। दूसरी बार जब वायुरूद्ध कक्ष के दबाव को बढ़ाया जाता है तो वक्षगुहा पर दबाव बढ़ जाता है जिससे वह संपीडित हो जाता है। वक्षगुहा में दबाव पड़ने से फेफड़े पर भी दबाव पड़ता है जिससे उसके भीतर की वायु श्वास मार्ग से होते हुए बाहर निकल जाती है। इस प्रकार मशीनों की सहायता से क्रमवार रूप में कृत्रिम श्वसन लगातर दीर्घकाल तक दिया जा सकता है। इस उपकरण द्वारा उन बीमारियों से ग्रस्त रोगियों को कृत्रिम श्वसन देना ज्यादा लाभकारी एवं उपयोगी साबित होता है जो श्वसन पेशियों के पक्षाघात (Paralysis of Respiratory muscles), पोलियोमायलाइटिस (Poliomyelitis) तथा मोरफिन विष (Morphin Poison) के शिकार होते है। िड्रंकर्स रेसपिरेटर मशीन में लोहे के बने फेफड़े होते हैं जिससे कृत्रिम श्वसन दिया जाता है। युद्ध के समय घायल तथा मूिर्च्छत अथवा अचेतावस्था में पड़े सैनिकों को लौहे के फेफड़े द्वारा ही कृत्रिम श्वसन देकर उनकी जान बचायी जाती है।

2. ब्रेग पाल पलसेटर विधि (Brag Paul'ss Pulsator Method) – इस विधि में रोगी व्यक्ति के छाती के चारों ओर एक रबर का थैला (Rubber Bag) लपेट दिया जाता है। इसके बाद एक उपयुक्त एवं अनुकूल पम्प की सहायता से रबर के थैले के भीतर की वायु को पहले बढ़ाया जाता है तथा इसके बाद कम किया जाता है जिससे वक्षगुहा एक बार फैलती है तथा दूसरी बार संपीड़ित होती है। जब रबर के थैले के भीतर की वायु को बढ़ाया जाता है तो वायु रबर के थैले में भर जाता है जिससे वक्षगुहा पर दबाव पड़ता है। फलत: फेफड़े भी दब जाते है और इसके भीतर की वायु बाहर निकल जाती है। दूसरे की क्षण जब रबर के थैले से हवा को खाली किया जाता है तो वक्षगुहा फैल जाती है। फलत: फेफड़े भी फैल जाते है और फेफड़े बाहरी वायु को वायु मार्ग से होकर भीतर की और खींचने लगते है जिससे हवा फेफड़ो में प्रवेश कर जाती है। इस प्रकार इस क्रिया को भी तब तक दोहराया जाता है जब तक कि रोगी व्यक्ति स्वत: ही साँस नहीं लेने लगे और उसकी श्वसन क्रिया पुन: स्थापित न हो जाए।

श्वसन क्रिया की अच्छी आदतें

(Good habits of respiration)

1. श्वसन क्रिया की अच्छी आदतें अच्छे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त ही आवश्यक है। अत: अच्छे श्वसन की आदत बचपन से ही डालनी चाहिए। क्योंकि उम्र्र बढ़ने के साथ-साथ आदतों को छुड़ाना थोड़ा कठिन एवं श्रमसाध्य व मुश्किल होता है।

2. साँस हमेशा नाक से ही लेनी चाहिए। इससे धूलकण, गर्म या एकदम ठंडी वायु नाक द्वारा प्रवेश करने पर फेफड़ो को नुकसान नहीं पहँुचा पाते क्योंकि श्वसन क्रिया के दौरान इन्हें श्वसन मार्गो से गुजरना पड़ता है जहाँ इन्हें रोक लिया जाता है। साथ ही साथ आवश्यकतानुसार गर्म वायु को आर्द्र तथा सर्द वायु को गर्म करके फेफड़ो में भेजा जाता है। जीवाणु, धूलकण, विषाणु इत्यादि श्लैष्मिक झिल्ली (Mucous Membrane) द्वारा स्वात्रित श्लेष्मा में चिपक जाते है। फलत: इनका प्रवेश फेफड़ो में नही हो पाता।

3. छींकने अथवा खाँसने **(Sneezing and coughing)** – के समय नाक तथा मुँह पर साफ-सुथरा रूमाल अवश्य रखनी चाहिए।

4. इसी तरह मोटर अथवा स्कूटर में मोबिल ऑयल जलने पर मुँह पर रूमाल अवश्य रखनी चाहिए। मोबिल ऑयल के जलने से वातावरण में अशुद्धियाँ अधिक हो जाती है, जिससे वायुमंण्डल की हवा दूषित हो जाती है।

5. सोते समय मुँह को ढ़ंकर नहीं सोना चाहिए।

6. खुली हवा में गहरी साँस लेनी व छोड़नी चाहिए तथा सुबह-शाम प्रकृति भ्रमण करना चाहिए।

श्वसन तंत्र के कार्य (Functions of Respiratory System)

(1) उत्सर्जन **(Excretion)** – श्वसन तंत्र द्वारा कई प्रकार के दूषित एवं व्यर्थ पदार्थ खासकर जो वाष्वशील होते है, शरीर के बाहर निष्कासित किये जाते है, जैसे- कीटोन बॉडीज, एल्कोहल, जलवाष्प, अमोनिया, कार्बन डाईऑक्साइड इत्यादि।

(2) अवशोषण (Absorption)- फेफड़ो के द्वारा कई प्रकार के गैसों एवं वाष्पशील दवाईयां रक्त मे अवशोषित कर लिये जाते हैं। दमा के रोगी को श्वास मार्ग से कई वाष्पशील दवाईया दी जाती है।

(3) अम्ल क्षार सन्तुलन (Manintenance of Acid- Base Balance)- श्वसन तंत्र द्वारा अम्ल-क्षार का भी सन्तुलन बना रहता है। रक्त में Co_2 की मात्रा को स्थिर रखने से रक्त का pH नियंत्रित रहता हे और क्षारीय आरक्षण (Alkaline Reserve) स्थिर रहता है।

(4) गैसों का आदान-प्रदान करना (Exchange of Gases)- श्वसन क्रिया मे O_2 एवं CO_2 का आदान-प्रदान होता रहता हैं नि:श्वसन की क्रिया में O2 फेफड़े के भीतर पहुंचता है और वहाँ से रक्त में उपस्थित हीमोग्लोबिन O2 के साथ संयोग करता है और ऑक्सी हीमोग्लोबिन (Oxyhaemoglobin) बना लेता है। रक्त परिसंचरण के दौरान O2 शरीर के सभी उत्तको एवं कोशिकाओं में पहुँचता है और वे अपना-अपना कार्य करते है। फलत: CO2 भी रक्त के माध्यम से ही शिराओं के द्वारा फेफड़ो तक ले जाया जाता है जहाँ इसका निष्कासन उच्छवसन क्रिया के दौरान हो जाता है। इस प्रकार गैसा का आदान-प्रदान जीवनपर्यन्त होता रहता है।

(5) ताप सन्तुलन **(Heat Balance)** – नि: श्वसित श्वसन यानि वे वायु जो साँस के रूप में आक्सीजन O_2 ग्रहण किये जाते हैं, उनका ताप शरीर के ताप से भिन्न होता है और वातावरणीय ताप से प्रभावित रहता हे। बाहरी वायु ठण्डे और गर्म भी हो सकते है। परन्तु उच्छवसित वायु (Expired Air) का ताप शरीर ताप के बराबर हो जाता है। उच्छवसित ह्रास से शरीर ताप पर भी श्वसन क्रिया नियंत्रण रहता है।

(6) जल सन्तुलन (Water Balance) – फेफड़े द्वारा भी शरीर में उपस्थित जल सन्तुलन को बनाये रखने में सहयोग करते है। साँस छोड़ने की क्रिया में CO_2 के साथ-साथ जलवाष्प् भी बाहर निकलता हे जिससे शरीर में जल सन्तुलन बना रहता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण सर्दियों में साँस छोड़कर जलवाष्प निकलते देखा जा सकता है।

(7) लसीका परिभ्रमण पर प्रभाव Effect on Lymph Circulation)- लसीका परिभ्रमण की गति एवं मात्रा अपरोक्ष रूप में श्वसन तंत्र क्षरा भी प्रभावित होती है।

(8) सामान्य रक्त परिसंचरण पर प्रभाव (Effect of General Blood Circulation)- श्वसन क्रिया द्वारा रक्त परिसंचरण क्रिया भी प्रभावित होती है। अगर किन्हीं कारणों से श्वसन केन्द्र उत्तेजित अथवा शिथिल हो जाते है तो रक्त परिसंचरण क्रिया में भी तेजी अथवा कमी आ जाती है। रक्त दाब का भी श्वसन क्रिया से सम्बन्ध है। रक्त चाप में भी, नि: श्वास तथा उच्छ्वास के साथ ही लहरों के समान उतार चढ़ाव आता है।

(9) छीकंना तथा खाँसना (Sneezing and Congling)- छींकना एव खाँसना दोनों ही श्वसन तंत्र की रक्षात्मक प्रतिवर्त क्रियाएँ (Protective Reflex Action) है। जब कोई वस्तु जो श्वास मार्ग को अवरूद्ध करना चाहता है वे छींकने एवं खाँसने में श्वास मार्ग से बाहर निकाल दिये जाते है।

(10) सँूघने का अंग या घ्राण अंग (Organ of Smell)- नाक या नासिका श्वसनन तंत्र के साथ-ही-साथ घ्राण-तंत्र (Olfactory Organs) का एक प्रमुख अंग है। नाक ही वायु का स्वाभाविक प्रवेश द्वार है। प्राण का ज्ञान द्वारा ही होता है। नाक में दो नासा-गुहा (Nosal Cavities) होते है। घ्राण के अंग (Organ of Smell) नासा श्लेंष्मक में स्थित होते है। इस प्रकार घ्राण-अंग श्वसन अंग तंत्र का ही एक भाग है। घ्राण तंत्रिकाओं के द्वारा प्राण कोशिकाएँ प्राण संबंधी आवेगों कका परिवहन करती है जिससे प्राण की संवेदना की अनुभूति होती है।

(11) स्त्रावण **(secretion)-** श्वसन मार्ग के ऊपरी भाग से श्लेष्ममा (Mucous) स्वावित होता है। साँस लेने की प्रक्रिया में वायु के साथ-साथ जब भी धूलकण, कीटाणु, जीवाणु, म्यूकस के सम्पर्क में आते है और वे उनसे चिपक जाते है तथा इन्हीं के माध्यम से निष्कासित भी हो जाते हैं।

(12) स्वर उत्पादन (Voice)- स्वर भी एक प्रकार की श्वसन क्रिया से ही उत्पन्न होता है। उच्छ्वास के साथ ही स्वर उत्पादन होता है।

5.5 सारांश

श्वसन अंग का नाम	संरचना	कार्य
1. नासाछिद्र	दो छिद्र	श्वसन तंत्र का द्वार
2. नासा गुहा	इसमें एक मीडियम सेप्टम होता है तथा तीन टरबिनेट्स सेप्टा एवं गुहा का निर्माण करते हैं।	वातावरण की हवा को आवश्यकतानुसार गर्म या आद्र करना तथा धूलकणों को हवा से अलग करना।
3. नैसोफैरिन्क्स	नाक तथा मुख गुहा के बीच का जंक्शन	हवा को श्वासनली की ओर भेजना।

4. लैरिन्क्स	थाएरॉइड तथा क्रीकॉयड उपास्थि का मुख्यत: बना हुआ।	भोजन को श्वासनली में जाने से रोकना।
5. श्वासनली	हवा की नली, 'C' आकार की उपास्थियों की बनी हुई।	हवा के आने-जाने का मार्ग।
6. ब्रोन्काई	बाँया ब्रोन्काई-2 भाग दाँया ब्रोन्काई-3 भाग उपास्थियों की बनी हुई	हवा के आने-जाने का मार्ग।
7. ब्रोन्कीओल्स	-	हवा के आने-जाने का मार्ग।
8.	बाँया फेफड़ा - 2 खंड दाँया फेफड़ा- 3 खंड	ऑक्सीजन तथा कार्बनडाइ ऑक्साइड का आदान-प्रदान करना।

5.6 **निबन्धात्मक प्रश्न**

1. शरीर के लिए ऑक्सीजन की क्या उपयोगिता है**?** इसका महत्व बताये।
2. शरीर को ऑक्सीजन कहां से प्राप्त होता है तथा यह ऑक्सीजन फेफड़े तक केसे पहुंचाता है**?** लिखे।
3. श्वसन क्रिया क्या है**?** इसके महत्व को बतायें।
4. श्वसन क्रिया के द्वारा गैसों का आदान प्रदान कैसे होता है**?** समझाये।
5. उच्छवसन तथा नि:श्वसन क्याह ै**?** विस्तार से समझाये।
6. फुफ़फुस श्वसन तथा ऊतक श्वसन में क्या अंतर है**?** लिखो।
7. श्वसन में भाग लेने वाले सभी अंगों के नाम लिखें तथा उनके बारे में संक्षिप्त जानकारी दें।
8. स्वरयंत्र तथा फेफड़े की रचना और कार्य लिखे।
9. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखें **-**

1 प्राण वायु

2 फेफड़े की वायुधारिता

3 तांत्रिक नियमन

4 रासायनिक नियमन

5 नि:श्वसन

10. श्वसन क्रिया का रासायनिक नियंत्रण समझाये।

11. प्राणवायु, अनुपूरकवायु, परिपूरक वायु तथा अवशिष्ट वायु क्या है? इसके बारे में लिखें।

12. फेफड़े की श्वास धारिता से आप क्या समझते है? लिखे

13. श्वसन की अच्छी आदतों के बारे में लिखें।

5.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. अर्थर सी. गुयटन एण्ड जान एडवर्ड हाल (2006), ट ेक्सटब ुक आॅफ मेडिकल फीजियोलॅजी, फ्लोरिडा, अमेरिका, एल्जेवियर स्टैंडर्डस

2. सुरिन्दर एच सिंह और कृष्ण गर्ग (2008), एनाटाॅमी, एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर नर्सेज और एलाॅइड हेल्थ सांइसेज, नई दिल्ली, सीबीएस पब्लिशर्स

3. शिवरामकृष्णन एस. (2006), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर फीजिकल एजुकेशन, नई दिल्ली, फ्रेंड्स पब्लिशर्स

4. अन्ने वाॅ और एल्सन ग्राउंट (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी इन हेल्थ एण्ड वेलनेस, इलाहाबाद, चर्चिल लिविंगस्टोन

5. क्लार्क राॅबर्ट के. (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी - अंदरस्टैंडिंग द ह्यूमन बाॅडी, सडरी, यूनाइ टेड स्टेट्स, जाॅनस एण्ड बारटियट

6. श्री कृष्ण (1985), नोट्स आॅन स्ट्रक्चर एण्ड फंक्शन्स आॅफ ह्यूमन बाॅडी एंड इफेक्ट्स आॅफ योगिक प्रेक्टिसेज इन इट, मुंबई र् आइ .सी.वाई.एच सी. कैवल्यधाम

7. दत्ता रे (2001), योगिक एक्सरसाईजेज, नई दिल्लीः जेपी ब्रदर्स

8. शीर्ले टेलेस (2006), ए गिलम्पस आॅफ द ह्यूमन, बंगलोरः स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन

9. लेस्ली केमिनोफ (2007), योग एनाटामी, कैम्पेनः ह्यूमन कॉइ नेटिक्स

10. पीटर आई विलियम्स और रोगर वास्वी (1988), ग्रेज एनाटॅमी, एडीनबर्गः चर्चिल लिविंगस्टोन

11. एवीलीन ब् पीएर्स (1997), एनाटामी एंड फीजियोलाजी फार नर्सेज, नई दिल्लीःजेपी ब्रदर्स

12. गेरे एम.एम. (2003), एनाटॅमी एण्ड फीजियोलॅजी फॅर योगिक पै्रक्टिसेज, लुनावालाः काम्हान प्रकाशन

13. शरीर- रचना विज्ञान एवं शरीर-क्रिया विज्ञान (2003), श्री नन्दन बंसल, जेपी ब्रदर्सः नई दिल्ली

इकाई 6

पाचन तन्त्र (Digestive System)

6.0 उद्देश्य
6.1प्रस्तावना
6.2 पाचन तंत्र के विभिन्न अंग
6.3 पाचन की क्रिया विधि
6.4 सारांश
6.5 प्रश्न
6.6 संदर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

- छात्र पाचन तंत्र के विभिन्न अंग के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे |
- पाचन की क्रिया विधि के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे |

6.1प्रस्तावना

मानव का पाचक नाल या **आहार नाल** (Digestive or Alimentary Canal) 25 से 30 फुट लंबी नाल है जो मुँह से लेकर मलाशय या गुदा के अंत तक विस्तृत है। यह एक संतत लंबी नली है, जिसमें आहार मुँह में प्रविष्ट होने के पश्चात् ग्रासनाल, आमाशय, ग्रहणी, क्षुद्रांत्र, बृहदांत्र, मलाशय और गुदा नामक अवयवों में होता हुआ गुदाद्वार से मल के रूप में बाहर निकल जाता है।भोजन सभी सजीवों की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। हमारे भोजन के मुख्य अवयव कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं वसा हैं। अल्प मात्रा में विटामिन एवं खनिज लवणों की भी आवश्यकता होती है। भोजन से ईर्जा एवं कई कच्चे कायिक पदार्थ प्राप्त होते हैं जो वृद्धि एवं ईतकों के मरम्मत के काम आते हैं। जो जल हम ग्रहण करते हैं, वह उपापचयी प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है एवं शरीर के निर्जलीकरण को भी रोकता है। हमारा शरीर भोजन में उपलब्ध जैव-रसायनों को उनके मूल रूप में उपयोग नहीं कर सकता। अत: पाचन तंत्र में छोटे अणुओं में विभाजित कर साधारण पदार्थों में परिवर्तित किया जाता है। जटिल पोषक पदार्थों को अवशोषण योग्य सरल रूप में परिवर्तित करने की इसी क्रिया को पाचन कहते हैं और हमारा पाचन तंत्र इसे यांत्रिक एवं रासायनिक विधियों द्वारा संपन्न करता है। मनुष्य का पाचन तंत्र चित्र में दर्शाया गया है।

मानव पाचन तंत्र

6.2 पाचन तंत्र के विभिन्न अंग

पाचन तंत्र

मनुष्य का पाचन तंत्र आहारनाल एवं सहायक ग्रंथियों से मिलकर बना होता है।

मुँह एक बड़ा कोटर (cavity) है, जिसके भीतर नीचे जिह्वा और ऊपर कठिन और कोमल तालु है तथा दोनों ओर कपोलों का प्रांतपृष्ठ है। जिह्वा पेशीनिर्मित स्वतंत्र अंग है, जो मुख कोटर में चारों ओर गति कर सकता है। इसके नीचे मुख का फर्श (ftoor) है। यह भी पेशियों का बना है। सामने तथा पार्श्व के अग्र भाग में, ऊपर और नीचे, 16-16 दाँत हैं, जिनके बीच में भोजन पीसा जाता है। इस कोटर में लाला ग्रंथियों (salivary glands) के जोडों से

लाला रस (saliva) आकर, आहार के ग्रास में मिलकर उसके पाचन में सहायता देता है। तीन ग्रंथियाँ दाहिनी ओर हैं और तीन बाईं ओर, जिनके नाम ये हैं : कपोल ग्रंथि (parotid), अधोहन्वीय (submaxillary) और अधोजिह्वा (sublingual) ग्रंथियाँ। इनकी रसवाहिकाओं द्वारा ग्रंथियों में बना हुआ रस मुखकोटर (buccal cavity) में पहुँचता रहता है।

जिह्वा और तालु से पीछे का कुप्पी के आकार का भाग ग्रसनी (pharynx) कहलाता है, जिसमें होकर भोजन ग्रासनाल में और वायु श्वासनाल में जाती है। इन दोनों नालों के मुख ग्रसनी के नीचे के भाग में स्थित हैं। श्वासनाल का मुख सामने और ग्रासनाल का उसके पीछे स्थित है।

ग्रासनली (oesophagus) मांसपेशी से निर्मित नौ या दस इंच लंबी नली है, जो ग्रसनी के निचले भाग से आरंभ होकर गले से वक्ष में होती हुई मध्यपट (diaphragm) के छिद्र से निकलकर उदर में पहुँचती और आमाशय में मिल जाती है। इसका अंतिम एक इंच का भाग उदर में रहता है।

आमाशय (stomach) भी मांसपेशी द्वारा निर्मित एक खोखला थैला है, जिसमें ग्रासनली से आहार पहुँचता है और उसका पाचन होता है। यह थैला उदर के ऊपरी भाग में बाईं ओर स्थित है। इसका ऊपर का चौड़ा भाग फंडस (fundus) कहलाता है तथा आहार के भरने पर और ऊपर की ओर की विस्तृत हो जाता है। इसके ऊपर जठर द्वार (cardiac orifice) है, जिसमें ग्रासनली खुलती है। आमाशय का दूसरा सिरा नलिका के समान हो गया है, जो जठरनिर्गम (pylorus) कहा जाता है। यह वास्तव में आधा इंच लंबा छिद्र है, जिसके चारों ओर की पेशियाँ मंडलाकार संवरणी पेशी(sphincter) बना देती हैं। खाली होने पर सारा आमाशय और विशेषकर यह भाग, एक नली के समान दिखाई देता है, किंतु आहार से भर जाने पर आमाशय विस्तार करके सेब के आकार का हो जाता है और जठरनिर्गम भी चौड़ा हो जाता है। आमाशय के ऊपरी जठर द्वार से जठरनिर्गम तक जानेवाला किनारा नतोदर (concave) होता है और लघु वक्र (lesser curvature) कहलाता है। नीचे का किनारा उन्नतोदर होता है और बृहद्वक्र कहा जाता है। उदर में आमाशय के सामने मध्यपट और यकृत हैं। खाली अवस्था में संकुचित होने पर अनुप्रस्थ बृहदांत्र (transverse colon) भी सामने आ जाता है। उसके पीछे की ओर आमाशय, प्लीहा (spleen), बायाँ वृक्क (kidney), बायाँ अधिवृक्क (suprarenal) बृहदांत्र और बृहदांत्र योजनी स्थित हैं जिनसे आमाशय आधार (stomach bed) बनता है। आमाशय में महाधमनी की जठरशाखाएँ (gastric branches) रक्त पहुँचाती हैं। आमाशय की सूक्ष्म रचना के निरीक्षण से पता चलता है कि इसमें चार स्तर होते हैं। सबसे भीतर श्लेष्मल कला का स्तर रहता है, जिसमें सिकुड़नें पड़ी रहती हैं। इसी स्तर में वे अनेक ग्रंथियाँ रहती हैं जिनसे आमाशय रस (gastric juice) बनता है। श्लेष्मल कला के बाहर वह प्रांत है जो अधोश्लेष्मल (submucous) कहलाता है। इसमें रक्तवाहिकाओं की शिराएँ तथा पायसनियों की शाखाएँ स्थित हैं। इसके बाहर तीन स्तरों में अनैच्छिक पेशीतंतु स्थित हैं। भीतर के तंतु तिर्यक् या टेढ़ी (oblique) दिशा में एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते दिखाई पड़ते हैं। इनके बाहर वृत्ताकार (circular) तंतुओं का स्तर है, जो आमाशय को चौड़ाई की दिशा में घेरे हुए हैं। इस स्तर से बाहर पेशीतंतु लंबाई की (longitudinal) दिशा में जाते दिखाई पड़ते हैं। ये तीनों पेशीस्तर जब संकोच करते हैं तब आमाशय के भीतर का आहार मथ सा जाता है और उसके कण तथा आमाशय रस का घनिष्ठ संपर्क हो जाता है। पेशी-तंतु-स्तर के बाहर आमाशय पर पेरिटोनियम (peritoneum) कला का एक स्तर चढ़ा रहता है।

आमाशय के जठर निर्गम के दूसरी ओर से **क्षुदांत्र** (small intestine) प्रारंभ होता हैं, जिसका 10 से 12 इंच का अर्धवृत्ताकार मुड़ा हुआ भाग ग्रहणी (duodenum) है। इसके मोड़ के भीतर अग्न्याशय ग्रंथि का सिर रहता है। इसका पहला अनुप्रस्थ भाग पित्ताशय के पीछे रहता है। दूसरा भाग नीचे को चला जाता है। इसी भाग में पित्तवाहिनी और अग्न्याशयवाहिनी (pancreatic duct) नलिकाएँ एक ही छिद्र द्वारा खुलती हैं। तीसरा भाग फिर महाधमनी औरमहाशिरा के सामने, भीतर या पृष्ठवंश की ओर को मुड़ता है और चौथा भाग दूसरे कटि कशेरुक तक ऊपर को चढ़ सा जाता है, जहाँ वह क्षुद्रांत्र (Jejunum) के साथ मिलकर ग्रहणी क्षुद्रांत्र-मोड़ (duodeno-jejunal flextur) बनाता है।

ग्रहणी को छोड़कर क्षुदांत्र केप्रथम भाग का नाम अग्रछुदांत्र है। शेष भाग क्षुदांत्र (ileum) कहलाता है। दोनों की रचना में न तो कोई भेद होता है और न दोनों के बीच कोई विशेष सीमा रहती है। केवल प्रथम भाग को, जो उदर के ऊपरी और बाएँ भाग में बढ़ता है, अग्रक्षुदांत्र का नाम दे दिया गया है। और उदर के निचले दाहिने भाग में स्थित क्षुदांत्र कहलाता है, जो त्रिकांत्री कपाटिका (ileocaecal valve) द्वारा बृहदांत्र की अंधनाल (caecum) नामक प्रथम भाग में खुलता है।

क्षुदांत्र की सूक्ष्म रचना आमाशय के ही समान होती है। सबसे भीतर श्लेष्मल स्तर है, जिसकी मात्रा अत्यधिक होने से गहरी सिकुड़नें बन जाती हैं और उनपर अंकुर सदृश उभार भी बने होते हैं। ये उद्वर्ध (villi) हैं जिनका मुख्य कर्म पाचित आहार रस का अवशोषण (absorption) है। इसके बाहर अधोश्लेष्मल प्रांत के पश्चात् वृत्ताकार और उससे बाहर अनुदैर्ध्य मांससूत्रों के स्तर हैं। सबसे बाहर पैरिटोनियम की एक परत चढ़ी रहती है जिसकी अंत्रियाँ चिकनीं और चमकती हुई गुलाबी रंग की दीखती हैं।

क्षुदांत्र की 20, 22 फुट लंबी नली कुंडलियों के रूप में, जैसे सर्प कुंडली बनाकर बैठता है, उदर में रहती है। इसी कारण इतनी लंबी नली थोड़े से स्थान में एकत्र हो जाती है। ये कुंडलियाँ उदर के पीछे की भित्ति से आंत्रयोजनी (mesentery) नामक कला से जुड़ी हुई हैं।

बृहदांत्र (colon) का प्रथम भाग त्रिकांत्र दाहिने श्रोणिखात (iliac fossa) में स्थित है, जहाँ क्षुदांत्र उससे मिलता है। इसके तनिक नीचे और भीतर की ओर से 4 या 5 इंच लंबा, नली के आकार का, केंचुए के समान, एक अंग निकला रहता है, जो कृमिरूपपरिशेषिका (veremiform appendix) कहलाता है। मनुष्य में इस अंग का कोई काम नहीं रहता, यद्यपि पशुओं में वह पाचनक्रिया में सहायक होता है। त्रिकांत्र और क्षुदांत्र के संगम परस्थित कपाटिका से से त्रिकांत्र दो या तीन इंच नीचे तक विस्तृत एक थैले की भाँति है। यहाँ से आरोही बृहदांत्र (ascending colon) सीधा ऊपर यकृत के दाहिने खंड के पीछे तक चला जाता है, जहाँ वह अनुप्रस्थ दिशा में मुड़ जाता है। इसकी लंबाई 8 से लेकर 10 इंच तक होती है। यह भाग पेरिटोनियम से केवल सामने की ओर से ढका रहता है। यहाँ से अनुप्रस्थ बृहदांत्र (transverie colon) प्रारंभ होता है और दाहिनी ओर से बाईं प्लीहा तक फैला रहता है। यह भाग पेरिटोनियम से पूर्णतया आवेष्टित है, जिसके सामने और पीछे के स्तर इस भाग पर से ऊपर आमाशय पर विस्तृत हो जाते हैं और नीचे की ओर भी वपा (omentum) बनकर उदर में झालर की भाँति लटके रहते हैं। इस कारण बृहदांत्र का यह भाग पूर्णतया चलायमान है। प्लीहा से नीचे के उतरने पर अवरोही वृहदांत्र (descending colon) आरंभ हो जाता है। नीचे का भाग श्रोणिफलक पर रहने के कारण श्रोणिफलकीय (iliac) और श्रोणि के भीतर स्थित भाग श्रोणि (pelvic) बृहदांत्र कहलाते हैं।

इसके आगे **मलाशय** (rectum) की 8 से 10 इंच लंबी नलिका है, जिसके अंत में वृत्ताकार पेशीय तंतुओं की संख्या में अतिवृद्धि होने से दो बहि: और अंत: संवरणी पेशियाँ (sphincters) बन गई हैं, जो केवल मलत्याग के समय ढीली होकर मल को बाहर जाने देती हैं।

इसके पश्चात् गुदमार्ग (anal coual) 1 या 1 इंच लंबी नलिका है, जिसका बाहर का द्वार **गुदद्वार** (anal orifice) कहलाता है।

आहार नाल

आहार नाल अग्र भाग में मुख से प्रारंभ होकर पश्च भागमें स्थित गुदा द्वारा बाहर की ओर खुलती है। मुख, मुखगुहा में खुलता है। मुखगुहा में कई दांत और एक पेशीय जिह्वा होती है। प्रत्येक दांत जबड़े में बने एक सांचे में स्थित होता है।

एक ओर हनु में विभिन्न प्रकार के दंत-विन्यास और दूसरी ओर हनु-गर्तिकाओं को दर्शाते हुए।

इस तरह की व्यवस्था को गर्तदंती (thecodont) कहते हैं। मनुष्य सहित अधिकांश स्तनधरियों के जीवन काल में दो तरह के दांत आते हैं- अस्थायी दांत-समूह अथवा दूध् के दांत जो वयस्कों में स्थायी दांतों से प्रतिस्थापित हो जाते हैं। इस तरह की दांत दंत-व्यवस्था को द्विबारदंती (Diphyodont) कहते हैं। वयस्क मनुष्य में 32 स्थायी दांत होते हैं, जिनके चार प्रकार हैं जैसे- कृंतक ;I, रदनक ;C अग्र-चर्वणक ;PM और चर्वणक ;M। ऊपरी एवं निचले जबड़े के प्रत्येक आधे भाग में दांतों की व्यवस्था I, C, PM, M में एक दंतसूत्र के अनुसार होती है जो मनुष्य के लिए 2123/2123 है। इनैमल से बनी दांतों की चबाने वाली कठोर सतह भोजन को चबाने में मदद करती है। जिह्वा स्वतंत्र रूप से घूमने योग्य एक पेशीय अंग है जो फ़ेनुलम (frenulum) द्वारा मुखगुहा की आधर से जुड़ी होती है। जिह्वा की ऊपरी सतह पर छोटे-छोटे उभार के रूप में पिप्पल ;पैपिला होते हैं, जिनमें कुछ पर स्वाद कलिकाएं होती हैं।

मुखगुहा एक छोटी ग्रसनी में खुलती है जो वायु एवं भोजन, दोनों का ही पथ है। उपास्थिमय घाँटी ढक्कन, भोजन को निगलते समय श्वासनली में प्रवेश करने से रोकती है। ग्रसिका (oesophagus) एक पतली लंबी नली है, जो गर्दन, वक्ष एवं मध्यपट से होते हुए पश्च भाग में थैलीनुमा आमाशय में खुलती है। ग्रसिका का आमाशय में खुलना एक पेशीय ;आमाशय-ग्रसिका अवरोधिनी द्वारा नियंत्रित होता है। आमाशय ;गुहा के ऊपरी बाएं भाग में स्थित होता है, को मुख्यत: तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- जठरागम भाग जिसमें ग्रसिका खुलती है, फडिस क्षेत्र और जठरनिर्गमी भाग जिसका छोटी आंत में निकास होता है

छोटी आंत के तीन भाग होते हैं- 'J' आकार की ग्रहणी, कुंडलित मध्यभाग अग्रक्षुद्रांत्र और लंबी कुंडलित क्षुद्रांत्र। आमाशय का ग्रहणी में निकास जठरनिर्गम अवरोधिनी द्वारा नियंत्रित होता है। क्षुद्रांत्र बड़ी आंत में खुलती है जो अंधनाल, वृहदांत्र और मलाशय से बनी होती है। अंधनाल एक छोटा थैला है जिसमें कुछ सहजीवीय सूक्ष्मजीव रहते हैं। अंधनाल से एक अंगुली जैसा प्रर्वध्, परिशेषिका निकलता है जो एक अवशेषी अंग है। अंधनाल, बड़ी आंत में खुलती है।

एक ओर हनु में विभिन्न प्रकार के दंत-विन्यास और दूसरी ओर हनु-गर्तिकाओं को दर्शाते हुए।

वृहदांत्र तीन भागों में विभाजित होता है- आरोही, अनुप्रस्थ एवं अवरोही भाग। अवरोही भाग मलाशय में खुलता है जो मलद्वार (anus) द्वारा बाहर खुलता है। आहार नाल की दीवार में ग्रसिका से मलाशय तक, चार स्तर होते हैं जैसे सिरोसा, मस्कुलेरिस, सबम्यूकोसा और म्युकोसा। सिरोसा सबसे बाहरी परत है और एक पतली मेजोथिलियम ;अंतरंग अंगों की उपकला और कुछ संयोजी ऊतकों से बनी होती है। मस्कुलेरिस प्राय: आंतरिक वर्तुल पेशियों एवं बाईँअनुदैर्घ्य पेशियों की बनी होतीहै। कुछ भागों में एक तिर्यक पेशी स्तर होता है। सबम्यूकोसा स्तर रुधिर, लसीका व तंत्रिकाओं युक्त मुलायम संयोजी ईतक की बनी होती है। ग्रहणी में, कुछ ग्रंथियाँ भी सबम्यूकोसा में पाई जाती हैं। आहार नाल की ल्यूमेन की सबसे भीतरी परत म्यूकोसा है। यह स्तर आमाशय में अनियमित वलय एवं छोटी आंत में अंगुलीनुमा प्रवर्ध् बनाता है जिसे अंकुर (villi) कहते हैं अंकुर की सतह पर

स्थित कोशिकाओं से असंख्य सूक्ष्म प्रवर्ध् निकलते हैं जिन्हें सूक्ष्म अंकुर कहते हैं जिससे ब्रस-बार्डर जैसा लगता है। यह रूपांतरण सतही क्षेत्र को अत्यधिक बढ़ा देता है।

आंत्र की अनुप्रस्थ काट का आरेखीय निरूपण

अंकुरों में केशिकाओं का जाल फ़ैला रहता है और एक बड़ी लसीका वाहिका ;(vessel) होती है जिसे लैक्टीयल कहते हैं। म्यूकोसा की उपकला पर कलश-कोशिकाएं होती हैं, जो स्नेहन के लिए म्यूकस का स्राव करती हैं। म्यूकोसा आमाशय और आंत में स्थित अंकुरों के आधरों के बीच लीबरकुन-प्रगुहिका ; (crypts of Lieberkuhn) भी कुछ ग्रंथियों का निर्माण करती है। सभी चारों परतें आहार नाल के विभिन्न भागों में रूपांतरण दर्शाती हैं।

पोषण नाल या **पाचक नाल** (Alimentary canal) के तीन कार्य हैं :

(1) आहार के अवयवों को पचाना तथा उनको गलाकर ऐसे रूप में ले आना कि वह शरीर के अंगों द्वारा स्वांगीकृत (assimilated) हो सकें,

(2) आहार को अपनी लंबी यात्रा में पाचन नाल के आदि से अंत तक पहुँचाना और

(3) पाचित आहर के रस का अवशोषण करना।

पहला कार्य उन पाचक रसों द्वारा पूर्ण होता है जो पाचक नाल में स्थित, या उसमें संबंधित, ग्रंथियों में उत्पन्न होकर वाहिनियों (ducts) द्वारा नाल में आकर आहार में मिल जाते हैं। ये रस रासायनिक द्रव्य होते हैं और आहार के भिन्न भिन्न अवयवों को अपनी रासायनिक क्रिया द्वारा विभंजित करके ऐसे रूपों में ले आते हैं जिनको शरीर के अंग ग्रहण कर सकें। दूसरा कार्य उस गतियों द्वारा संपादित होता है जो पाचन नाल की भित्तियों में स्थित अनैच्छिक पेशीसूत्रों के संकोच और विस्तार से नाल में होती रहती हैं। तीसरे कार्य का संपादन क्षुद्रांत्र का विशेष गुण है, यद्यपि कुछ अवशोषण अन्य भागों में भी होता है।

आहार पदार्थों के विशेष घटक प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज लवण और जल हैं। सभी खाद्य पदार्थ इन्हीं घटकों से बने रहते हैं। किसी में कोई घटक अधिक होता है, कोई कम। हमारा शरीर भी इन्हीं अवयवों

का बना हुआ है। शरीर का 2/3 भाग जल है। प्रोटीन शरीर की मुख्य वस्तु है, जिससे अंग बनते हैं। कार्बोहाइड्रेट ग्लूकोज़ के रूप में शरीर में रहता है, जिसकी मांसपेशियों को सदा आवश्यकता होती है। वसा की भी अत्यधिक मात्रा शरीर में एकत्र रहती है। विटामिन और लवणों की आवश्यकता शरीर की क्रियाओं के उचित संपादन के लिये होती हैं। हमारा शरीर ये सब वस्तुएँ आहार से ही प्राप्त करता है। हाँ, आहार से मिलनेवाले अवयवों का रासायनिक रूप शरीर के अवयवों के रूप से भिन्न होता है। अतएव आहार के अवयवों को शरीर पाचक रसों द्वारा उनके सूक्ष्म घटकों में विघटित कर देता है और उन घटकों का फिर से संश्लेषण करके अपने लिये उपयुक्त अवयवों को तैयार कर लेता है। यह काम अंगों की कोशिकाएँ करती हैं। जो घटक उपयोगी नहीं होते, उनको ये छोड़ देती हैं। शरीर ऐसे पदार्थों को मल, मूत्र, स्वेद (पसीना) और श्वास द्वारा बाहर निकाल देता है।

पाचन ग्रंथियाँ

आहार नाल से संबंधित पाचन ग्रंथियों में लार ग्रंथियाँ, यकृत और अग्नाशय शामिल हैं। लार का निर्माण तीन जोड़ी ग्रंथियों द्वारा होता है। ये हैं गाल में कर्णपूर्व, निचले जबड़े में अधोजंभ/अवचिबुकीय तथा जिह्वा के नीचे स्थित अधेजिह्वा। इन ग्रंथियों से लार मुखगुहा में पहुंचती है।

यकृत (liver) मनुष्य के शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि है जिसका वयस्क में भार लगभग 1-2 से 1-5 किलोग्राम होता है। यह उदर में मध्यपट के ठीक नीचे स्थित होता है और इसकी दो पालियाँ ;(lobes) होती हैं। यकृत पालिकाएं यकृत की संरचनात्मक और कार्यात्मक इकाइयां हैं जिनके अंदर यकृत कोशिकाएं रज्जु की तरह व्यवस्थित रहती हैं। प्रत्येक पालिका संयोजी ऊतक की एक पतली परत से ढकी होती है जिसे ग्लिसंस केपसूल कहते हैं। यकृत की कोशिकाओं से पित्त का स्राव होता है जो यकृत नलिका से होते हुए एक पतली पेशीय थैली- पित्ताशय में सांद्रित एवं जमा होता है। पित्ताशय की नलिका यकृतीय नलिका से मिलकर एक मूल पित्त वाहिनी बनाती है;चित्र द्वारा- विजय-मित्र :-6। पित्ताशयी नलिका एवं अग्नाशयी नलिका, दोनों मिलकर यकृत अग्नाशयी वाहिनी द्वारा ग्रहणी में खुलती है जो ओडी अवरोधिनी से नियंत्रित होती हैं।

यकृत, पित्ताशय और अनाशय का वाहिनी-तंत्र

अग्नाशय U आकार के ग्रहणी के बीच स्थित एक लंबी ग्रंथि है जो बहि: स्रावी और अंत: स्रावी, दोनों ही ग्रंथियों की तरह कार्य करती है। बहि: स्रावी भाग से क्षारीय अग्नाशयी स्राव निकलता है, जिसमें एंजाइम होते हैं और अंत: स्रावी भाग से इंसुलिन और ग्लुकेगोन नामक हार्मोन का स्राव होता है।

6.3 पाचन की क्रिया विधि

पाचन की प्रक्रिया यांत्रिक एवं रासायनिक विधियों द्वारा संपन्न होती है। मुखगुहा के मुख्यत दो प्रकार्य हैं, भोजन का चर्वण और निगलने की क्रिया। लार की मदद से दांत और जिह्वा भोजन को अच्छी तरह चबाने एवं मिलाने का कार्य करते हैं। लार का श्लेष्म भोजन कणों को चिपकाने एवं उन्हें बोलस में रूपांतरित करने में मदद करता है। इसके उपरांत निगलने की क्रिया द्वारा बोलस ग्रसनी से ग्रसिका में चला जाता है। बोलस पेशीय संकुचन के क्रमाकुंचन (peristalsis) द्वारा ग्रसिका में आगे बढ़ता है। जठर-ग्रसिका अवरोधिनी भोजन के अमाशय में प्रवेश को नियंत्रित करती है। लार ;मुखगुहा में विद्युत-अपघट्य (electrolytes) (Na+, K+, Cl-, HCO3) और एंजाइम ;लार एमाइलेज या टायलिन तथा लाइसोजाइम होते हैं। पाचन की रासायनिक प्रक्रिया मुखगुहा में कार्बोहाइड्रेट को जल अपघटित करने वाली एंजाइम टायलिन या लार एमाइलेज की सक्रियता से प्रारंभ होती है। लगभग 30 प्रतिशत स्टार्च इसी एंजाइम की सक्रियता (pH 6-8) से द्विशर्करा माल्टोज में अपघटित होती है। लार में उपस्थित लाइसोजाइम जीवाणुओं के संक्रमण को रोकता है।

स्टार्च ——————————> लार (pH 6-8) एमाइलेज माल्टोज

आमाशय की म्यूकोसा में जठर ग्रंथियाँ स्थित होती हैं। जठर ग्रंथियों में मुख्य रूप से तीन प्रकार की कोशिकाएं होती हैं, यथा-

(i) म्यूकस का स्राव करने वाली श्लेषमा ग्रीवा कोशिकाएं

(ii) पेप्टिक या मुख्य कोशिकाएं जो प्रोएंजाइम पेप्सिनोजेन का स्राव करती हैं तथा

(iii) भित्तीय या ऑक्सिन्टिक कोशिकाएं जो हाइड्राक्लोरिक अम्ल और नैज कारक स्रावित करती हैं ;नैज कारक विटामिन B12 के अवशोषण के लिए आवश्यक है।

अमाशय 4-5 घंटे तक भोजन का संग्रहण करता है। आमाशय की पेशीय दीवार के संकुचन द्वारा भोजन अम्लीय जठर रस से पूरी तरह मिल जाता है जिसे काइम (chyme) कहते हैं।

प्रोएंजाइम पेप्सिनोजेन हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के संपर्क में आनेसे सक्रिय एंजाइम पेप्सिन में परिवर्तित हो जाता है जो आमाशय का प्रोटीन-अपघटनीय एंजाइम है। पेप्सिन प्रोटीनों को प्रोटियोज तथा पेप्टोंस ;पेप्टाइडों में बदल देता है। जठर रस में उपस्थित श्लेष्म एवं बाइकार्बोनेट श्लेष्म उपकला स्तर का स्नेहन और अत्यधिक सांद्रित हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से उसका बचाव करते हैं। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल पेप्सिनों के लिए उचित अम्लीय माध्यम (pH 1-8) तैयार करता है। नवजातों के जठर रस में रेनिन नामक प्रोटीन अपघटनीय एंजाइम होता है जो दूध के प्रोटीन को पचाने में सहायक होता है। जठर ग्रंथियाँ थोड़ी मात्रा में लाइपेज भी स्रावित करती हैं।

छोटी आंत का पेशीय स्तर कई तरह की गतियां उत्पन करता है। इन गतियों से भोजन विभिन्न स्रावों से अच्छी तरह मिल जाता है और पाचन की क्रिया सरल हो जाती है। यकृत अग्नाशयी नलिका द्वारा पित्त, अग्नाशयी रस

और आंत्र-रस छोटी आंत में छोड़े जाते हैं। अग्नाशयी रस में ट्रिप्सिनोजन, काइमोट्रिप्सिनोजन, प्रोकार्बोक्सीपेप्टिडेस, एमाइलेज और न्युक्लिएज एंजाइम निष्क्रिय रूप में होते हैं। आंत्र म्यूकोसा द्वारा स्रावित ऐंटेरोकाइनेज द्वारा ट्रिप्सिनोजन सक्रिय ट्रिप्सिन में बदला जाता है जो अग्नाशयी रस के अन्य एंजाइमों को सक्रिय करता है।

ग्रहणी में प्रवेश करने वाले पित्त में पित्त वर्णक ;विलिरूबिन एवं विलिवख्रडनद्ध, पित्त लवण, कोलेस्टेरॉल और पफास्पफोलिपिड होते हैं, लेकिन कोई एंजाइम नहीं होता। पित्त वसा के इमल्सीकरण में मदद करता है और उसे बहुत छोटे मिसेल कणों में तोड़ता है। पित्त लाइपेज एंजाइम को भी सक्रिय करता है। आंत्र श्लेषमा उपकला में गोब्लेट कोशिकाएं होती हैं जो श्लेषमा का स्राव करती है। म्यूकोसा के ब्रस बॉर्डर कोशिकाओं और गोब्लेट कोशिकाओं के स्राव आपस में मिलकर आंत्र स्राव अथवा सक्कस एंटेरिकस बनाते हैं इस रस में कई तरह के एंजाइम होते हैं, जैसे-ग्लाइकोसिडेज डायपेप्टिडेज, एस्टरेज, न्यूक्लियोसिडेज आदि।

म्यूकस अग्नाशय के बाइकार्बोनेट के साथ मिलकर आंत्र म्यूकोसा की अम्ल के दुष्प्रभाव से रक्षा करता है तथा एंजाइमों की सक्रियता के लिए आवश्यक क्षारीय माध्यम (pH 7-8) तैयार करता है। इस प्रक्रिया में सब-म्यूकोसल ब्रूनर ग्रंथि भी मदद करती है। आंत में पहुँचने वाले काइम में उपस्थित प्रोटीन, प्रोटियोज और पेप्टोन ;आंशिक अपघटित प्रोटीन अग्नाशय रस के प्रोटीन अपघटनीय एंजाइम निम्न रूप से क्रिया करते हैं

प्रोटीन । ट्रिप्सिन/काइमोट्रिप्सिन

प्रोटियोज । ——————————-> डाईपेप्टाइड

पेप्टोन । कार्बोक्सीपेप्डेज

काइम के कार्बोहाइड्रेट अग्नाशयी एमाइलेज द्वारा डायसैकेराइड में जलापघटित होते हैं।

एमाइलेज

पालीसेकेराइड(स्टार्च)——————> डाईसेकेराइड

वसा पित्त की मदद से लाइपेजेज द्वारा क्रमश: डाई और मोनोग्लिसेराइड में टूटते हैं।

वसा——-> डाइग्लिसेराइड ——-> मोनोग्लिसेराइड

अग्नाशयी रस के न्यूक्लिएस न्यूक्लिक अम्लों को न्यूक्लियोटाइड और न्यूक्लियोसाइड में पाचित करते हैं।

न्यूक्लिक अम्ल———> न्यूक्लियोटाइड————> न्यूक्लियोसाइड

आंत्र रस के एंजाइम उपर्युक्त अभिक्रियाओं के अंतिम उत्पादों को पाचित कर अवशोषण योग्य सरल रूप में बदल देते हैं। पाचन के ये अंतिम चरण आंत के म्यूकोसल उपकला कोशिकाओं के बहुत समीप संपन्न होते हैं।

डाइपेप्टाइड $\xrightarrow{\text{डाइपेप्टिडेजेज}}$ एमीनो अम्ल

माल्टोस $\xrightarrow{\text{माल्टेस}}$ ग्लुकोस + ग्लुकोस

लैक्टोस $\xrightarrow{\text{लैक्टेस}}$ ग्लुकोस + गैलेक्टोस

सुक्रोस $\xrightarrow{\text{सुक्रेस}}$ ग्लुकोस + फ्रक्टोस

न्यूक्लियोटाइडेस $\xrightarrow{\text{न्यूक्लियोटाइड}}$ न्यूक्लियोसाइड $\xrightarrow{\text{यूक्ल्योसाइडेस}}$ शर्करा + क्षारक

डाइ व मोनोग्लिसराइड $\xrightarrow{\text{लाइपेज}}$ वसीय अम्ल + ग्लेसेरोल

ऊपर वर्णित जैव वृहत् अणुओं के पाचन की क्रिया आंत्र के ग्रहणी भाग में संपन्न होती हैं। इस तरह निर्मित सरल पदार्थ छोटी आंत के अग्रक्षुद्रांत्र और क्षुद्रांत्र भागों में अवशोषित होते हैं। अपचित तथा अनावशोषित पदार्थ बड़ी आंत में चले जाते हैं। बड़ी आंत में कोई महत्वपूर्ण पाचन क्रिया नहीं होतीहै। बड़ी आंत का कार्य है-

1 कुछ जल, खनिज एवं औषधका अवशोषण

2 श्लेष्म का स्राव जो अपचित उत्सर्जी पदार्थ कणों को चिपकाने और स्नेहन होने के कारण उनका बाईँ निकास आसान बनाता है। अपचित और अवशोषित पदार्थों को मल कहते हैं, जो अस्थायी रूप से मल त्यागने से पहले तक मलाशय में रहता है।

जठरांत्रिक पथ की क्रियाएं विभिन्न अंगों के उचित समन्वय के लिए तंत्रिका और हॉर्मोन के नियंत्रण से होती है। भोजन के भोज्य पदार्थों को देखने, उनकी गंध और/अथवा मुखगुहा नली में उपस्थिति लार ग्रंथियों को स्राव के लिए उद्दीपित कर सकती हैं। इसी प्रकार जठर और आंत्रिक स्राव भी तंत्रिका संकेतों से उद्दीप्त होते हैं। आहार नाल के विभिन्न भागों की पेशियों की सक्रियता भी स्थानीय एवं केंद्रीय तंत्रिकीय क्रियाओं द्वारा नियमित होती हैं। हार्मोनल नियंत्रण के अंतर्गत, जठर और याँत्रिक म्यूकोसा से निकलने वाले हार्मोन पाचक रसों के स्राव को नियंत्रित करते हैं।

3 पाचित उत्पादों का अवशोषण-

अवशोषण वह प्रक्रिया है, जिसमें पाचन से प्राप्त उत्पाद यांत्रिक म्यूकोसा से निकलकर रक्त या लसीका में प्रवेश करते हैं। यह निष्क्रिय, सक्रिय अथवा सुसाध्य परिवहन क्रियाविधियों द्वारा संपादित होता है। ग्लुकोज, ऐमीनो अम्ल, क्लोराइड आयन आदि की थोड़ी मात्रा सरल विसरण प्रक्रिया द्वारा रक्त में पहुंच जाती हैं। इन पदार्थों का रक्त में पहुंचना सांद्रण-प्रवणता (concentration gradient) पर निर्भर है। जबकि लैक्टोज और कुछ अन्य ऐमीना अम्लों का परिवहन वाहक अणुओं जैसे सोडियम आयन की मदद से पूरा होता है। इस क्रियाविधिको सुसाध्य परिवहन कहते हैं।

जल का परिवहन परासरणी प्रवणता पर निर्भर करता है। सक्रिय परिवहन सांद्रण-प्रवणता के विरु होता है जिसके लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। विभिन्न पोषक तत्वों जैसे ऐमीनो अम्ल, ग्लुकोस ;मोनोसैकेराइड और सोडियम आयन ;विद्युत-अपघट्य का रक्त में अवशोषण इसी क्रियाविधि द्वारा होता है। वसाम्ल और ग्लिसेरॉल

अविलेय होने के कारण रक्त में अवशोषित नहीं हो पाते। सर्वप्रथम वे विलेय सूक्ष्म बूंदों में समाविष्ट होकर आंत्रिक म्यूकोसा में चले जाते हैं जिन्हें मिसेल (micelles) कहते हैं। ये यहाँ प्रोटीन आस्तरित सूक्ष्म वसा गोलिका में पुन: संरचित होकर अंकुरों की लसीका वाहिनियों ;लेक्टियल में चले जाते हैं। ये लसीका वाहिकाएं अंतत: अवशोषित पदार्थों को रक्त प्रवाह में छोड़ देती हैं।

पदार्थों का अवशोषण आहारनाल के विभिन्न भागों जैसे-मुख, आमाशय, छोटी आंत और बड़ी आंत में होता है। परंतु सबसे अधिक अवशोषण छोटी आंत में होता है। अवशोषण सारांश ;अवशोषण- स्थल और पदार्थ तालिका 1 में दिया गया है। अवशोषित पदार्थ अंत में ईतकों में पहुंचते हैं जहाँ वे विभिन्न क्रियाओं के उपयोग में लाए जाते हैं। इस प्रक्रिया को स्वांगीकरण (assimilation) कहते हैं।

पाचक अवशिष्ट मलाशय में कठोर होकर संब मल वन जाता है जो तांत्रिक प्रतिवर्ती (neural reflex) क्रिया को शुरू करता है जिससे मलत्याग की इच्छा पैदा होती है। मलद्वार से मल का बहिक्षेपण एक ऐच्छिक क्रिया है जो एक बृहत् क्रमाकुंचन गति से पूरी होती है।

4 पाचन तंत्र के विकार (Disorder) और अनियमितताएं

आंत्र नलिका का शोथ जीवाणुओं और विषाणुओं के संक्रमण से होने वाला एक सामान्य विकार है। आंत्र का संक्रमण परजीवियों, जैसे- फीता कृमि, गोलकृमि, सूत्रकृमि, हुकवर्म, पिनवर्म, आदि से भी होता है।

पीलिया (Jaundice) : इसमें यकृत प्रभावित होता है। पीलिया में त्वचा और आंख पित्त वर्णकों के जमा होने से पीले रंग के दिखाई देते हैं।

वमन (Vomiting) : यह आमाशय में संगृहीत पदार्थों की मुख से बाहर निकलने की क्रिया है। यह प्रतिवर्ती क्रिया मेडुला में स्थित वमन केंद्र से नियंत्रित होती है। उल्टी से पहले बेचैनी की अनुभूति होती है।

प्रवाहिका (Diarrhoea) : आंत्र ;इवूमस की अपसामान्य गति की बारंबारता और मल का अत्यधिक पतला हो जाना प्रवाहिका (Diarrhoea) कहलाता है। इसमें भोजन अवशोषण की क्रिया घट जाती है।

कोष्ठबद्धता या कब्ज (Constipation) : कब्ज में, मलाशय में मल रुक जाता है और आंत्र की गतिशीलता अनियमित हो जाती है।

अपच (Indigestion) : इस स्थिति में, भोजन पूरी तरह नहीं पचता है और पेट भरा-भरा महसूस होता है। अपच एंजाइमों के स्राव में कमी, व्यग्रता, खाद्य विषाक्तता, अधिक भोजन करने, एवं मसालेदार भोजन करने के कारण होती है।

6.4 सारांश

मानव के पाचन तंत्र में एक आहार नाल और सहयोगी ग्रंथियाँ होती हैं। आहर नाल मुख, मुखगुहा, ग्रसनी, ग्रसिका, आमाशय, क्षुद्रांत्र, वृहदांत्र, मलाशय और मलद्वार से बनी होती है। सहायक पाचन ग्रंथियों में लार ग्रंथि, यकृत ;पित्ताशय सहित और अग्नाशय हैं। मुख के अंदर दाँत भोजन को चबाते हैं, जीभ स्वाद को पहचानती है और भोजन को लार के साथ मिलाकर इसे अच्छी तरह से चबाने के लिए सुगम बनाती है। लार में मंड या मांड

;स्टार्च पचाने वाली पाचक एंजाइम, लार एमिलेज होती है जो मांड को पचाकर माल्टोस ;डाइसैकेराइड में बदल देती हैं। इसके बाद भोजन ग्रसनी से होकर बोलस के रूप में ग्रसिका में प्रवेश करता है, जो आगे क्रमाकुंचन द्वारा आमाशय तक ले जाया जाता है। आमाशय में मुख्यत: प्रोटीन का पाचन होता है। सरल शर्कराओं, अल्कोहल और दवाओं का भी आमाशय में अवशोषण होता है।काइम क्षुद्रांत्र के ग्रहणी भाग में प्रवेश करता है जहाँ अग्नाशयी रस, पित्त और अंत में आंत्र रस के एंजाइमों द्वारा कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा का पाचन पूरा होता है। इसके बाद भोजन छोटी आँत के अग्र क्षुद्रांत्र जेजुनम और क्षुद्रांत्र इलियम भाग में जाता है। पाचन के पश्चात कार्बोहाइड्रट, ग्लुकोस जैसे- मोनोसैकेराइड में परिवर्तित हो जाते हैं। अंतत: प्रोटीन टूटकर ऐमीनो अम्लों में तथा वसा, वसीय अम्लों और ग्लिसेराल में परिवर्तित हो जाते हैं। आँत-उत्पादों का पाचित आँत अंकुरों के उपकला स्तर द्वारा शरीर में अवशोषित हो जाता है। अपचित भोजन ;मल त्रिकांत्र (ileoceacal) कपाट द्वारा वृहदांत्र की अंधनाल (caecum) में प्रवेश करता है। इलियो सीकल कपाट मल को वापस नहीं जाने देता। अधिकांश जल बड़ी आँत में अवशोषित हो जाता है। अपचित भोजन अर्ध ठोस होकर मलाशय और गुदा नाल में पहुंचता है और अंतत: गुदा द्वारा बहि:क्षेपित हो जाता है।

6.5 प्रश्न

1.पाचन तंत्र के कौन कौन से अंग है ?इनके नाम लिखे तथा उनके कार्य के बारे में जानकारी प्रदान करे?
2. पाचन क्रिया में लार ग्रन्थियों का क्या योगदान है ?
3. प्रोटीन की पाचन क्रिया किस प्रकार होती है ?
4.दांतों के क्या कार्य है?

6.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. अर्थर सी. गुयटन एण्ड जान एडवर्ड हाल (2006), ट ेक्सटब ुक आॅफ मेडिकल फीजियोलॅजी, फ्लोरिडा, अमेरिका, एल्जेवियर स्टैंडर्डस

2. सुरिन्दर एच सिंह और कृष्ण गर्ग (2008), एनाटाॅमी, एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर नर्सेज और एलाॅइड हेल्थ सांइसेज, नई दिल्ली, सीबीएस पब्लिशर्स

3. शिवरामकृष्णन एस. (2006), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर फीजिकल एजुकेशन, नई दिल्ली, फ्रेंड्स पब्लिशर्स

4. अन्ने वाॅ और एल्सन ग्राउंट (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी इन हेल्थ एण्ड वेलनेस, इलाहाबाद, चर्चिल लिविंगस्टोन

5. क्लार्क राॅबर्ट के. (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी - अंदरस्टैंडिंग द ह्यूमन बाॅडी, सडरी, यूर्नाइ टेड स्टेट्स, जाॅनस एण्ड बारटियट

6. श्री कृष्ण (1985), नोट्स आॅन स्ट्रक्चर एण्ड फंक्शन्स आॅफ ह्यूमन बाॅडी एंड इफेक्ट्स आॅफ योगिक प्रेक्टिसेज इन इट, मुंबई र् आइ .सी.वाई.एच सी. कैवल्यधाम

7. दत्ता रे (2001), योगिक एक्सरसाईजेज, नई दिल्लीः जेपी ब्रदर्स

8. शीर्ले टेलेस (2006), ए गिलम्पस आॅफ द ह्यूमन, बंगलोरः स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन

9. लेस्ली केमिनोफ (2007), योग एनाटामी, कैम्पेनः ह्यूमन कांइ नेटिक्स

10. पीटर आई विलियम्स और रोगर वास्वी (1988), ग्रेज एनाटॅमी, एडीनबर्गः चर्चिल लिविंगस्टोन

11. एवीलीन ब् पीएर्स (1997), एनाटामी एंड फीजियोलाजी फार नर्सेज, नई दिल्लीःजेपी ब्रदर्स

12. गेरे एम.एम. (2003), एनाटॅमी एण्ड फीजियोलॅजी फॅर योगिक पै्रक्टिसेज, लुनावालाः काम्हान प्रकाशन

13. शरीर- रचना विज्ञान एवं शरीर-क्रिया विज्ञान (2003), श्री नन्दन बंसल, जेपी ब्रदर्सः नई दिल्ली

इकाई . 7

उत्सर्जन तंत्र

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 मूत्र तंत्र के कार्य

7.3 मूत्र तंत्र के घटक

7.4 प्रश्न

7.5संदर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

- मूत्र तंत्र के कार्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे|
- मूत्र तंत्र के घटक के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे|

7.1 प्रस्तावना

उपापचयी (मेटाबोलिक) क्रियायों के फलस्वरूप बने उत्सर्जी पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने की क्रिया को **उत्सर्जन** कहते हैं। सजीव कोशिकाओं के अन्दर विभिन्न प्रकार की जैव-रासायनिक क्रियाएँ होती रहती हैं। इन क्रियायों के समय कुछ बेकार एवं विषैले पदर्थ उत्पन्न होते हैं जो कोशिकाओं अथवा शरीर के लिए उपयोगी नहीं होते हैं। यदि उन्हें शरीर में इकट्ठा होने दिया जाय तो वे प्राणघातक भी हो सकते हैं। इन्हीं पदार्थों को उत्सर्जन की क्रिया में शरीर बाहर निकाल देता है। कुछ हानिकारक एवं उत्सर्जी पदार्थ कार्बन डाईऑक्साइड, अमोनिया, यूरिया, यूरिक अम्ल तथा कुछ अन्य नाइट्रोजन के यौगिक हैं। ये पदार्थ जिन विशेष अंगों द्वारा शरीर से बाहर निकाले जाते हैं उन्हें उत्सर्जन अंग कहते हैं।

पौधों एवं प्राणियों दोनों में उत्सर्जन की क्रिया होती है परन्तु पौधों में कोई विशेष उत्सर्जन-अंग या तंत्र नहीं होता है अतः पौधे अपने उत्सर्जी पदार्थ पत्तियों, छालों, फलों, बीजों के माध्यम से शरीर से निष्कासित कर देते हैं। प्राणियों में सभी उत्सर्जी पदार्थों के शरीर से बाहर निकालने की लिए उत्सर्जी अंग पाए जाते हैं। मेरूदण्डी प्राणियों में मुख्य उत्सर्जी अंग वृक्क है जो गहरे लाल रंग का सेम की बीज की आकृति का होता है। वृक्क अपने लाखों वृक्क नलिकाओं के माध्यम से रक्त को छानकर शुद्ध करता है एवं छने हुए वर्ज्य पदार्थों कोमूत्रके माध्यम से निष्कासित कर देता है।

भोजन के मैटाबोलिज्म के अन्तिम उत्पाद रक्त में प्रवेश करते हैं और रक्त में परिसंचरित होतेहुए वे उत्सर्गी अंगों में पहुँच जाते हैं जिनके द्वारा वे शरीर से बाहर निकाल दिए जाते हैं। वृक्क या गुर्दे त्वचा तथा फेफड़े उत्सर्गी अंग होते हैं। वृक्क या गुर्दे मुख्य उत्सर्गी अंग होते हैं। ये मूत्रीय संस्थान के अंग होते हैं जो मुख्य उत्सर्गी संस्थान होता है जिसके द्वारा भोजन के मैटाबोलिज्मके अधिकांश उत्पाद मूत्र में उत्सर्जित हो जाते हैं। त्वचा के द्वारापसीने के रूप में जल तथा लवणों का उत्सर्जन होता है। फेफड़ों द्वारा कार्बन डाइआॅक्साइड तथा जलवाष्प के रूप में . जल का उत्सर्जन होता है।मूत्रीय संस्थान निम्न चार प्रकार के अंगों से मिलकर बना होता है.

वृक्क या गुर्दे -इनमें मूत्र बनता है।

मूत्रनलियाँ- इनके द्वारा मूत्र वृक्कों से नीचे मूत्राशय में पहुँचता है।

मूत्राशय-इसमें मूत्र अस्थायी रूप से संचित रहता है।

मूत्र.मार्ग -इसके द्वारा मूत्राशय से मूत्र शरीर से बाहर निकल जाता है

7.2 मूत्र तंत्र के कार्य

मूत्र तंत्र का मुख्य कार्य शरीर के द्रव्यों के परिमाण और उसके घटकों के स्तर को सामान्य बनाये रखना है। इसके अन्र्तगत शरीर के वज्र्य पदार्थों को मुक्त करना है जो कि कोशिकीय चयापचय क्रिया के उपरान्त एकत्रित हो जाती हैए इस कारण इसे उत्सर्जन तंत्र भी कहते हें। यद्यपि उत्सर्जन क्रिया मुख्य रूप से मूत्र तंत्र का कार्य है परन्तु शरीर के अन्य अंग भी इसमें भाग लेते हैं। श्वस्न प्रणाली में फुफ्फुस कुछ वज्र्य पदार्थो का निष्कासन करते हैंए जैसे . कार्बन डाईआॅक्साइड और जल। एक और उत्सर्जक अंग है. त्वचा। यह शरीर के वज्र्य पदार्थो को स्वेद ग्रन्थियों द्वारा पसीने के रूप में निष्कासित करती है। हिमोग्लोबिन के नष्ट होने के परिणामस्वरूप यकृत और आंत पित्त रंजनक उत्सर्जित करते हैं। परन्तु उत्सर्जन का मुख्य कार्य मूत्र प्रणाली द्वारा किया जाता है। इसके ठीक से कार्य न करने पर दूसरे अंगों में असंतुलन होने लगता है। मूत्र द्वारा निकलने वाले पानी की मात्रा को नियंत्रित करए मूत्र तंत्र शरीर में द्रव्य के उपयुक्त परिमाण को बनाये रखता है। इसके अन्य कार्य हैं. शरीर के द्रव्यों में विभिन्न इलेक्ट्रोलाइट्स के घनत्व को नियमित रखनाए और रक्त में चभ् के स्तर को सामान्य रखना। शरीर के द्रव्यों मंे होमियोस्टेसिस को बनाये रखने के अलावा मूत्र तंत्र एरिथ्रोपायटिन नामक हाॅर्मोन को स्त्रावित करता है जो लाल रक्त कोशिका के निर्माण को नियंत्रित करता है।मूत्र तंत्र रेनिन नाम के एन्जाइम को स्त्रावित करके रक्त चाप को सामान्य रखता है।

7.3 मूत्र तंत्र के घटक

मूत्र तंत्र वृक्क मूत्र नली मूत्राशय और मूत्र मार्ग से मिल कर बना है। वृक्क मूत्र का निर्माण करते हैं। मूत्र नलियाँ वृक्कों से मूत्र को मूत्राशय तक पहुंचाती हैं जहां से यह मूत्र मार्ग द्वारा निष्कासित हो जाता है।

वृक्क -वृक्क मूत्र तंत्र के प्राथमिक अंग हैं। ये रक्त से अशुद्धियों को अलग करके उसका शोधन करते हैं तथा अशुद्धियों को मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकालते हैं। पेट में वृक्क जोड़े के रूप में होते हैं जिसमें एक.एक वृक्क मेरूदण्ड के दोनों ओर स्थित होते हैं। दायां वृक्क बाँयें की अपेक्षा थोड़ा नीचे होता है। इसका कारण है दाहिने वृक्क के ऊपर यकृत यस्पअमतद्ध की उपस्थिति जो वृक्क को थोड़ा नीचे की ओर बढ़ाता है। वृक्क अपने आस.पास की वसा और निचली पसली के घेरे द्वारा सुरक्षित रहते हैं।

एक वयस्क व्यक्ति में प्रत्येक वृक्क लगभग **3** से.मी. मोटाए **6** से.मी. चैड़ा और **12** से.मी. लम्बा होता है। यह लगभग से.मी. के बीच के आकार का होता है जिसके मध्य भाग में कटाव होता है

जिसे हाइलम कहते हैं। मुत्र और वृक्क की शिराएँ वृक्क को छोड़ देती है यहां से वृक्क धमनी हाइलम द्वारा प्रवेश करती है। बाहर का लालीमा युक्त क्षेत्र रीनल का ॅर्टेक्स का है। रीनल कार्टेक्स एक बड़े गहरे लालीमा युक्त क्षेत्र को ढकता है जिसे रीनल मेडूला कहते हैं। रीनल मेडूला रीनल पिरामिड्स की एक श्रृंखला द्वारा बने होते हैं। ये रेखिय दिखते हैं क्योंकि इनमें सीधी नली के आकार की रचनाएँ ं और रक्त वाहिनियाँ होती हैं। पिरामिडों के चैड़े आधार कार्टेक्स और नुकीले सिरों के साथ लगे होते हैं जिन्हें रीनल पैपिला कहते हैं। इनकी दिशा वृक्क के केन्द्र की तरफ होती है। रीनल का ॅर्टेक्स के कुछ भाग आगे बढ़ कर पिरामिडों के बीच के स्थान में पहुँते हैं और इस तरह रीनल का ॅलम का निर्माण करते हैं। का ॅर्टेक्स और मेडूला मिल कर पैरन्काइमा बनाते हैं। यह वृक्क का क्रियात्मक ऊतक है। वृक्क के केन्द्रीय क्षेत्र में वृक्कीय कोणिका होती है जो वृक्कीय गुहा में स्थित होती है और यह मूत्र नली से जुड़ी होती है। वृक्कीय कोणिका एक बड़ी गुहा है जहाँ मूत्र एकत्रित होता है। वृक्कीय कोणिका की परिधि को कप जैसे उभार अवरोधित करते हैं। इन उभारों को वाद्यदल कुंज कहते हैं। एक छोटा वाहा कुंज यब्ं सलगद्ध प्रत्येक पिरामिड के वृक्कीय पैपिला को चारों ओर से घेरता है और उस पिरामिड से मूत्र एकत्र करता है। कई छोटे वाद्यदल कुंज एक साथ मिलकर एक बड़ा वाहादल कुंज बनाते हैं। बड़े वाहादल कुंज से मूत्र वृक्कीय कोणिका में प्रवाहित होता हैए जहां से यह मूत्र नली में पहुंचता है।

प्रत्येक वृक्क में लाखों रचनात्मक और क्रियात्मक इकाईयाँ ं होती हैं जिन्हें वृक्काणु कहते हैं। ये पैरन्काइमाय का ॅर्टेक्स और मेडूला में होते हैं। प्रत्येक वृक्काणु के दो भाग होते हैं एक वृक्कीय कण और एक वृक्कीय नलिका वृक्कीय कण में केशिकाओं का एक गुच्छा होता हैए इसे केशिकागुच्छ कहते हैं यह उपकला कप के दोहरे परत से घिरे होते हैंए जिसे केशिकास्तवक बीजकोष कहते हैं। अभिवाही धमनिका वृक्कीय कण के अन्दर जाती है और अपवाही धमनिका वृक्कीय कण के बाहर आती है। मूत्र वृक्काणु से होते हुये नलिकाओं में एकत्र होकर छोटे

वाहाकुजों में पहुंचता है। जक्स्टाग्लोमेरूलर उपकरण रक्त चाप का अवलोकन करता है और रेनिन नामक हा ॅर्मोन स्त्रावित करता है।

मूत्र नली -

प्रत्येक मूत्र नली एक **25** से.मी. लम्बी नलिका होती है जो वृक्कीय कोणिका से मूत्र को मूत्राशय तक ले जाती है। मूत्राशय की दीवार तीन परतों से बनी होती है। बाहरी परत रेशेदार संयोजी ऊतक की बनी होती है। मध्य परत पेशीय होती हैं यह लम्बवत् चिकनी पेशी की बनी होती हैं। इसका मुख्य कार्य है मांसल संकुचन और शिथिलता की अनैच्छिक तरंगे पैदा करते हुये मूत्र को आगे धकेलना। इस क्रिया को पेरिसटालसिस कहते हैं। आन्तरिक परत म्यूकोसा का बनी होती है। यह परिवर्ती उपकला है जो कि वृक्कीय कोणिका और मूत्राशय की सतही झिल्ली से जुड़ी होती है। यह परत म्यूकोसा स्त्रावित करती है जो कोशिका की सतह पर एक तह बना कर उसे सुरक्षा देती है

मूत्राशय -मूत्राशय एक प्रकार का पात्र है जहाँ अस्थायी रूप से मूत्र एकत्रित होता है। यह वृक्कीय कोणिका में स्थित है। इसके अन्दर एकत्रित मूत्र की मात्रा तथा इसके आस .पास के अंगों के दबाव के अनुसार इसके आकार में परिवर्तन होता रहता है। मूत्राशय की भीतरी दीवार म्यूकोसा झिल्लीकी होती है जो परिवर्ती उपकला का बनी होती है। यह मूत्र नली से जुड़ी होती है। मूत्राशय के खाली रहने पर म्यूकोसा में असंख्य मोड़ बन जाते हैं जिसे रगी कहते हैं। रगी और परिवर्ती उपकला मूत्राशय के भरने पर उसे फैलने में मदद करते हैं।

दूसरी परत सब .म्यूकोसा की होती है। यह म्यूकोसा झिल्ली को सहारा देती है।यह संयोजी ऊतक के लचीले तन्तुओं से बनी होती है। अगली परत पेशीय होती है। यह चिकनी पेशियों की बनी होती है। इसके तन्तु एक.दूसरे से सभी दिशाओं में बुने हुये होते हैंए जिन्हें सामूहिक रूप से डेट्रूसर पेशी कहते हैं। इन पेशीयों के संकुचन द्वारा मूत्र निष्कासित होता है।

मूत्राशय की सतह पर स्थित तीन छिद्र मिलकर एक त्रिकोणीय क्षेत्र बनाते हैं जिसे ट्राइगा ॅन कहते हैं। इनमें से दो छिद्र मूत्र नली की होती है जो ट्राइगा ॅन का आधार बनाते हैं। म्यूकोसा का एक छोटा पट्टा इन छिद्रों को ढकता है और एक कपाट की तरह कार्य करता है जो मूत्र को मूत्राशय में आने देता है पर उसे वाशस मूत्र नली में जाने से रोकता है। ट्राइगा ॅन के शीर्ष पर तीसरा छिद्र होता है जो मूत्र मार्ग को खोलता है। डेट्रूसर पेशी की एक पट्टी इस छिद्र को घेरती है और आंतमरिक मूत्रमार्गीय स्फिंक्चर बनाती है।

मुत्र मार्ग -मूत्र.मार्ग एक पतली दिवार वाली नली होती है जिससे मूत्र एक छिद्र द्वारा बाहर निकलता है। मूत्राशय के अंत और मूत्र मार्ग के आरंभ को आंतरिक मूत्र मार्गीय स्फिंक्चर घेरती है। यह अनैच्छिक पेशी है। एक और वाहामूत्र मार्गीय स्फिक्चर मूत्र मार्ग को श्रोणी के पास घेरती है। यह ऐच्छिक है। ये दोनों स्फिक्चर मिलकर मूत्र मार्ग में मूत्र के प्रवाह को नियंत्रित करती हैं। मादाओं में मूत्र मार्ग की लम्बाई केवल **3** से **4** से.मी. होती है। वाहा मूत्र मार्गीय छिद्र योनी द्वार के पास खुलता है।

नर में मूत्र मार्गों की लम्बाई लगभग **20** से.मी. तक होती है। इससे मूत्र और वीर्याणु दोनों प्रवाहित होते हैं। मूत्राशय के पास का पहला भाग प्रोस्टेट ग्रंथि से गुजरता हैए जिसे प्रोस्टेटिक मूत्र मार्ग कहते हैं। दूसरे भाग श्रोणी की सतह को पार करता हुआ शिश्न में प्रवेश करता हैए इसे झिल्लीदार मूत्र मार्ग कहते हैं। तीसरा भाग सबसे लम्बा और स्पाॅन्जी होता है जो पूरे शिश्न की लम्बाई तक फैला होता है। वाह्य मूत्र मार्गीय छिद्र शिश्न के सिरे पर खुलता है।

मूत्रण -मूत्र विसर्जित करने के कार्य मूत्रण कहलाता है। जब मूत्राशय में**200.300** मिली मूत्र संचित हो जाता है तो इससे मूत्राशय की भित्तियों के फैल जाने से उनमें विद्यमान स्वायत.तन्त्रिका तन्तु उद्दीप्त हो जाते है और तन्त्रिका आवेग मस्तिष्क तक पहुँचते हैं जिससे मूत्र त्याग करने की इच्छा उत्पन्न होती है और प्रतिवर्त क्रिया में मूत्राशय संकुचित होता है तथा आन्तरिक संकोचिनी का शिथिलन होता है जिससे आन्तरिक मूत्रमार्गीय छिद्र खुल जाता है परन्तु बाह्य मूत्रमार्गीय छिद्र का खुलना इच्छा पर निर्भर होता है जिससे इच्छानुसार स्थान एवं समय पर मूत्र त्याग किया जा सकता है परन्तु मूत्राशय के मूत्र से अधिक फूल जाने पर उसमें दर्द होने लगता है और ऐसी अवस्था में बाह्य संकोचिनी का अनैच्छिक शिथिलन हो जाता है जिससे कुछ मूत्र विसर्जित हो जाता है। डायाफ्राम को नीचे करके तथा उदरीय भित्तियों को संकुचित करके श्रोणि.गुहा में दबाव बढाने से मूत्रण में मदद मिल सकती है।

शिशुओं में मस्तिष्क विकसित न होने के कारण मूत्र से भर जाने पर मूत्राशय के फैलने से तन्त्रिका आवेग मस्तिष्क में नहीं पहुँचते जिससे मूत्र विसर्जित करने की इच्छा जागृत नही होती बल्कि तन्त्रिका आवेग मेरू.रज्जु या सुषुम्ना में पहुँचते हैं जिससे मेरूदण्डीय प्रतिवर्त क्रिया द्वारा उनमें स्वतः मूत्र विसर्जित हो जाता है।

7.4 प्रश्न

1.मूत्र के निर्माण की विधि बताइए

2.वृक्को द्वारा मूत्र किस प्रकार बनता है

3.शरीर में तापमान का नियन्त्रण किस प्रकार का होता है समाझाइये

7.5संदर्भ ग्रन्थ

1. अर्थर सी. गुयटन एण्ड जान एडवर्ड हाल (2006), टेक्सटबुक आॅफ मेडिकल फीजियोलॅजी, फ्लोरिडा, अमेरिका, एल्जेवियर स्टैंडर्डस

2. सुरिन्दर एच सिंह और कृष्ण गर्ग (2008), एनाटाॅमी, एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर नर्सेज और एलाॅइड हेल्थ सांइसेज, नई दिल्ली, सीबीएस पब्लिशर्स

3. शिवरामकृष्णन एस. (2006), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर फीजिकल एजुकेशन, नई दिल्ली, फ्रेंड्स पब्लिशर्स

4. अन्ने वाॅ और एल्सन ग्राउंट (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी इन हेल्थ एण्ड वेलनेस, इलाहाबाद, चर्चिल लिविंगस्टोन

5. क्लार्क राॅबर्ट के. (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी - अंदरस्टैंडिंग द ह्यूमन बाॅडी, सडरी, यूनाइ टेड स्टेट्स, जाॅनस एण्ड बारटियट

6. श्री कृष्ण (1985), नोट्स आॅन स्ट्रक्चर एण्ड फंक्शन्स आॅफ ह्यूमन बाॅडी एंड इफेक्ट्स आॅफ योगिक प्रेक्टिसेज इन इट, मुंबई र् आइ .सी.वाई.एच सी. कैवल्यधाम

7. दत्ता रे (2001), योगिक एक्सरसाईजेज, नई दिल्लीः जेपी ब्रदर्स

8. शीर्ले टेलेस (2006), ए गिलम्पस आॅफ द ह्यूमन, बंगलोरः स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन

9. लेस्ली केमिनोफ (2007), योग एनाटामी, कैम्पेनः ह्यूमन काइ नेटिक्स

10. पीटर आई विलियम्स और रोगर वास्वी (1988), ग्रेज एनाटॅमी, एडीनबर्गः चर्चिल लिविंगस्टोन

11. एवीलीन ब् पीएर्स (1997), एनाटामी एंड फीजियोलाजी फार नर्सेज, नई दिल्लीःजेपी ब्रदर्स

12. गेरे एम.एम. (2003), एनाटॅमी एण्ड फीजियोलॅजी फॅर योगिक पै्रक्टिसेज, लुनावालाः काम्हान प्रकाशन

13. शरीर- रचना विज्ञान एवं शरीर-क्रिया विज्ञान (2003), श्री नन्दन बंसल, जेपी ब्रदर्सः नई दिल्ली

इकाई 8

तंत्रिका तंत्र)Nervous System)

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 तंत्रिकातंत्र के भाग

8.3 मस्तिष्क की रचना

8.4 मेरुरज्जु

8.5 परिधीय तंत्रिका तंत्र (Peripheral nervous system)

8.6 कपालीय तंत्रिकाएँ) Cranial nerves)

8.7 मेरुरज्जु की तंत्रिकाएँ) Spinal nerves)

8.8 कार्यात्मक वर्गीकरण-कायिक तंत्रिकातंत्र (Somatic nervous system)

8.9 प्रश्न

8.10 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य

- तंत्रिकातंत्र के भाग की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे |
- मस्तिष्क की रचना की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे |
- मेरुरज्जु की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे|
- परिधीय तंत्रिका तंत्र की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे |
- कपालीय तंत्रिकाएँ की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे |

8.1 प्रस्तावना

किसी जीव के शरीर में तंत्रिका ऐसे रेशे को कहते हैं जिसके द्वारा शरीर के एक स्थान से दूसरे स्थान तक संकेत भेजे जाते हैं। तंत्रिका को अंग्रेजी में नर्व कहते हैं। मनुष्य शरीर में तंत्रिकाएँ शरीर के लगभग हर भाग को मस्तिष्क या मेरूरज्जु से जोड़कर उनमें आपसी संपर्क रखतीं हैं। यदि तंत्रिकाओं को क़रीब से देखा जाए तो वह न्यूरॉन नामक कोशिकाओं (सैलके गुच्छों की बनी होतीं हैं। जब मस्तिष्क को किसी हाथ को हिलने का आदेश देना (होता है तो मस्तिष्क से हाथ तक यह संकेत तंत्रिकाओं के ज़रिये ही भेजा जाता है। इसी तरह जब आँख पर कोई छवि पड़ती है तो उसके संकेत दिमाग़ तक तंत्रिकाएं ही ले जातीं हैं।जिस तन्त्र के द्वारा विभिन्न अंगों का नियंत्रण और अंगों और वातावरण में सामंजस्य स्थापित होता है उसे तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System) कहते हैं। तंत्रिकातंत्र में मस्तिष्क, मेरूरज्जु और इनसे निकलनेवाली तंत्रिकाओं की गणना की जाती है। तन्त्रिका कोशिका, तन्त्रिका तन्त्र की रचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है। तंत्रिका कोशिका एवं इसकी सहायक अन्य कोशिकाएँ मिलकर तन्त्रिका तन्त्र के कार्यों को सम्पन्न करती हैं। इससे प्राणी को वातावरण में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त होती है। पौधों तथा एककोशिकीय प्राणियों जैसे अमीबा इत्यादि में तन्त्रिका तन्त्र नहीं पाया जाता है। हाइड्रा, प्लेनेरिया, तिलचट्टा आदि बहुकोशिकीय प्राणियों में तन्त्रिका तन्त्र पाया जाता है। मनुष्य में सुविकसित तन्त्रिका तन्त्र पाया जाता है।

8.2 तंत्रिकातंत्र के भाग

तंत्रिकातंत्र का वर्गीकरण-स्थिति एवं रचना के आधार पर तन्त्रिका तन्त्र के दो मुख्य भाग किये जाते हैं-

केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र (Central nervous system) एवं मस्तिष्क

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को मस्तिष्क मेरु तंत्रिका तंत्र भी कहते हैं। इसके अंतर्गत अग्र मस्तिष्क, मध्यमस्तिष्क, पश्च मस्तिष्क, अनुमस्तिष्क, पौंस, चेतक, मेरुशीर्ष, मेरु एवं मस्तिष्कीय तंत्रिकाओं के 12 जोड़े तथा मेरु तंत्रिकाओं के 31 जोड़े होते हैं। मस्तिष्क करोटि गुहा में रहता है तथा तीन कलाओं से, जिन्हें तंत्रिकाएँ कहते हैं आवृत रहता है। भीतरी दो कलाओं के मध्य में एक तरल रहता है, जो मेरुद्रव कहलाता है। यह तरल मस्तिष्क के भीतर पाई जानेवाली गुहाओं में तथा मेरु की नालिका में भी रहता है। मेरु कशेरुक नलिका में स्थित रहता है तथा मस्तिष्कावरणों से आवृत रहता है। यह तरल इन अंगों को पोषण देता है, इनकी रक्षा करता है तथा मलों का विसर्जन करता है।

मस्तिष्क में बाहर की ओर धूसर भाग तथा अंदर की ओर श्वेत भाग रहता है तथा ठीक इससे उल्टा मेरु में रहता है। मस्तिष्क का धूसर भाग सीताओं के द्वारा कई सिलवटों से युक्त रहता है। इस धूसर भाग में ही तंत्रिका कोशिकाएँ रहती हैं तथा श्वेत भाग संयोजक ऊतक का होता है।

तंत्रिकाएँ दो प्रकार की होती हैं : (1) प्रेरक)Motor) तथा)2) संवेदी)Sensory)।

मस्तिष्क के बारह तंत्रिका जोड़ों के नाम निम्नलिखित हैं:

(1) घ्राण तंत्रिका,

(2) दृष्टि तंत्रिका,

(3) अक्षिप्रेरक तंत्रिका,

(4) चक्रक)Trochlear) तंत्रिका,

(5) त्रिक तंत्रिका,

(6) उद्विवर्तनी तंत्रिका)Abducens),

(7) आनन तंत्रिका,

(8) श्रवण तंत्रिका,

(9) जिह्वा कंठिका तंत्रिका,

(10) वेगस तंत्रिका)Vagus),

(11) मेरु सहायिका तंत्रिका तथा

(12) अधोजिह्वक)Hypoglossal) तंत्रिका।

मस्तिष्क एवं मेरु के धूसर भाग में ही संज्ञा केंद्र एवं नियंत्रण केंद्र रहते हैं। मेरु में संवेदी(अग्र) तथा चेष्टावह (पश्च) तंत्रिका मूल रहते हैं।

अग्र मस्तिष्क दो गोलार्धों में विभाजित रहता है तथा इसके भीतर दो गुहाएँ रहती हैं जिन्हें पाश्र्वीय निलय कहते हैं। संवेदी तंत्रिकाएँ शरीर की समस्त संवेदनाओं को मस्तिष्क में पहुँचाकर अनुभूति देती हैं तथा चेष्टावह तंत्रिकाएँ वहाँ से आज्ञा लेकर अंगों से कार्य कराती हैं। केंद्रीय तंत्रिकाएँ विशेष कार्यों के लिए होती हैं। इन सब तंत्रिकाओं के

अधकेंद्र कर देते हैं तथा पश्च ऊध्र्व केंद्रों को ज्ञान प्राप्त होता है :था ऊध्र्व केंद्र रहते हैं। जब कुछ क्रियाएँ अधत :, तब ऐसी क्रियाओं को प्रतिवर्ती क्रियाएँ)Reflex action) कहते हैं। ये कियाएँ मेरु से निकलनेवाली तंत्रिकाओं तथा मेरु केंद्रों से होती हैं। मस्तिष्क का भार 40 औंस होता है। मस्तिष्क की घमनियाँ अंतघमनियाँ होती हैं :, अत : इनमें अवरोध होने पर, या इनके फट जाने पर संबंधित भाग को पोषण मिलना बंद हो जाता है, जिसके कारण वह केंद्र कार्य नहीं करता, अत) ही पक्षाघात उस केंद्र से नियंत्रित क्रियाएँ अवरुद्ध हो जाती हैं। इसे :Paralysis) कहते हैं।

मस्तिष्क और मेरूरज्जु, केंद्रीय तंत्रिकातंत्र कहलाते हैं। ये दोनों शरीर के मध्य भाग में स्थित हैं। इनमें वे केंद्र भी स्थित हैं, जहाँ से शरीर के भिन्न भिन्न भागों के संचालन तथा गति करने के लिये आवेग)impulse) जाते हैं तथा वे आवेगी केंद्र भी हैं, जिनमें शरीर के आभ्यंतरंगों तथा अन्य भागों से भी आवेग पहुँचते रहते हैं। दूसरा भाग परिधि तंत्रिकातंत्र (peripheral Nervous System) कहा जाता है। इसमें केवल तंत्रिकाओं का समूह है, जो मेरूरज्जु से निकलकर शरीर के दोनों ओर के अंगों में विस्तृत है। तीसरा आत्मग तंत्रिकातंत्र (Autonomic Nervous System) है, जो मेरूरज्जु के दोनों ओर गंडिकाआं की लंबी श्रंखलाओं के रूप में स्थित है। यहाँ से सूत्र निकलकर शरीर के सब आभ्यंतरांगों में चले जाते हैं और उनके समीप जालिकाएँ)plexus) बनाकर बंगों में फैल जो हैं। यह तंत्र ऐच्छिक नहीं प्रत्युत स्वतंत्र है और शरीर के समस्त मुख्य कार्यो, जैसे रक्तसंचालन, श्वसन, पाचन, मूत्र की उत्पत्ति तथा उत्सर्जन, निस्रावी ग्रंथियों में स्रावों)हॉरमोनों की उत्पत्तिके निर्माण आदि क (संचालन करता है। इसके भी दो विभाग हैं, एक अनुकंपी (sympathetic) और दूसरा परानुकंपी (parasympathetic)।

8.3 मस्तिष्क की रचना

मस्तिष्क जन्तुओं के केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र का नियंत्रण केन्द्र है। यह उनके आचरणों का नियमन एंव नियंत्रण करता है। स्तनधारी प्राणियों में मस्तिष्क सिर में स्थित होता है तथा खोपड़ी द्वारा सुरक्षित रहता है। यह मुख्य ज्ञानेन्द्रियों, आँख, नाक, जीभ और कान से जुड़ा हुआ, उनके करीब ही स्थित होता है। मस्तिष्क सभी रीढ़धारी प्राणियों में होता है परंतु अमेरूदण्डी प्राणियों में यह केन्द्रीय मस्तिष्क या स्वतंत्र गैंगलिया के रूप में होता है। कुछ जीवों जैसे निडारिया एंव तारा मछली में यह केन्द्रीभूत न होकर शरीर में यत्र तत्र फैला रहता है, जबकि कुछ प्राणियों जैसे स्पंज में तो मस्तिष्क होता ही नही है। उच्च श्रेणी के प्राणियों जैसे मानव में मस्तिष्क अत्यंत जटिल होते हैं। मानव मस्तिष्क में लगभग १ अरब १),००,००,००,०००तंत्रिका कोशिकाएं होती है (, जिनमें से प्रत्येक अन्य तंत्रिका कोशिकाओं से १० हजार १०),०००से भी अधिक संयोग स्थापित करती हैं। मस्तिष्क सबसे (जटिल अंग है।

मस्तिषक के द्वारा शरीर के विभिन्न अंगो के कार्यों का नियंत्रण एवं नियमन होता है। अतः मस्तिष्क को शरीर का मालिक अंग कहते हैं। इसका मुख्य कार्य ज्ञान, बुद्धि, तर्कशक्ति, स्मरण, विचार निर्णय, व्यक्तित्व आदि का नियंत्रण एवं नियमन करना है। तंत्रिका विज्ञान का क्षेत्र पूरे विश्व में बहुत तेजी से विकसित हो रहा है। बडेबड़े - से निपटने के लिए आण्विक तंत्रिकीय रोगों, कोशिकीय, आनुवंशिक एवं व्यवहारिक स्तरों पर मस्तिष्क की क्रिया के संदर्भ में समग्र क्षेत्र पर विचार करने की आवश्यकता को पूरी तरह महसूस किया गया है। एक नये अध्ययन में निष्कर्ष निकाला गया है कि मस्तिष्क के आकार से व्यक्तित्व की झलक मिल सकती है। वास्तव में बच्चों का जन्म एक अलग व्यक्तित्व के रूप में होता है और जैसे जैसे उनके मस्तिष्क का विकास होता है उसके अनुरुप उनका व्यक्तित्व भी तैयार होता है।

मस्तिष्क)Brain), खोपड़ी)Skull) में स्थित है। यह चेतना)consciousness) और स्मृति)memory) का स्थान है। सभी ज्ञानेंद्रियों नेत्र -, कर्ण, नासा, जिह्वा तथा त्वचा से आवेग यहीं पर आते हैं -, जिनको समझना अर्थात् ज्ञान प्राप्त करना मस्तिष्क का काम्र है। पेशियों के संकुचन से गति करवाने के लिये आवेगों को तंत्रिकासूत्रों द्वारा भेजने तथा उन क्रियाओं का नियमन करने के मुख्य केंद्र मस्तिष्क में हैं, यद्यपि ये क्रियाएँ मेरूरज्जु में स्थित भिन्न केन्द्रो से होती रहती हैं। अनुभव से प्राप्त हुए ज्ञान को सग्रह करने, विचारने तथा विचार करके निष्कर्ष निकालने का काम भी इसी अंग का है।

मस्तिष्क में ऊपर का बड़ा भाग प्रमस्तिष्क)hemispheres) कपाल में स्थित हैं। इनके पीछे के भाग के नचे की ओर अनुमस्तिष्क)cerebellum) के दो छोटे छोटे गोलार्घ जुड़े हुए दिखाई देते हैं। इसके आगे की ओर वह भाग है, जिसको मध्यमस्तिष्क या मध्यमस्तुर्लुग)midbrain or mesencephalon) कहते हैं। इससे नीचे को जाता हुआ मेरूशीर्ष, या मेदुला औब्लांगेटा)medulla oblongata), कहते है।

प्रमस्तिष्क और अनुमस्तिष्क झिल्लियों से ढके हुए हैं, जिनको तानिकाएँ कहते हैं। ये तीन हैंदृढ :ः तानिका, जालि तानिका और मृदु तानिका। सबसे बाहरवाली दृढ़ तानिका है। इसमें वे बड़ी बड़ी शिराएँ रहती हैं, जिनके द्वारा रक्त लौटता है। कलापास्थि के भग्न होने के कारण, या चोट से क्षति हो जाने पर, उसमें स्थित शिराओं से रक्त निकलकर मस्तिष्क मे जमा हो जाता है, जिसके दबाव से मस्ष्तिष्क की कोशिकाएँ बेकाम हो जाती हैं तथा अंगों का पक्षाघात)paralysis) हो जाता है। इस तानिका से एक फलक निकलकर दोनों गोलार्धो के बीच में भी जाता है। ये फलक जहाँ तहाँ दो स्तरों में विभक्त होकर उन चौड़ी नलिकाओं का निर्माण करते हैं, जिनमें से हाकर लौटनेवाला रक्त तथा कुछ प्रमस्तिष्क मेरूद्रव भी लौटते है।

प्रमस्तिष्क

इसके दोनों गोलार्धो का अन्य भागों की अपेक्षा बहुत बड़ा होना मनुष्य के मस्तिष्क की विशेषता है। दोनों गोलार्ध कपाल में दाहिनी और बाईं ओर सामने ललाट से लेकर पीछे कपाल के अंत तक फैले हुए हैं। अन्य भाग इनसे छिपे हुए हैं। गोलार्धो के बीच में एक गहरी खाई है, जिसके तल में एक चौड़ी फीते के समान महासंयोजक)Corpus Callosum) नामक रचना से दोनों गोलार्ध जुरे हुए हैं। गोलार्धो का रंग ऊपर से घूसर दिखाई देता है।

गोलार्धो के बाह्य पृष्ठ में कितने ही गहरे विदर बने हुए हैं, जहाँ मस्तिष्क के बाह्य पृष्ठ की वस्तु उसके भीतर घुस जाती है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो पृष्ठ पर किसी वस्तु की तह को फैलाकर समेट दिया गया है, जिससे उसमें सिलवटें पड़ गई हैं। इस कारण मस्तिष्क के पृष्ठ पर अनेक बड़ी छोटी खाइयाँ बन जाती हैं, जो परिखा)Sulcus) कहलाती हैं। परिखाओं के बीच धूसर मस्तिष्क पृष्ठ के मुड़े हुए चक्रांशवतद् भाग कर्णक)Gyrus) कहलाते हैं, क्योंकि वे कर्णशुष्कली के समान मुडे हुए से हैं। बडी और गहरी खाइयॉ विदर)Fissure) कहलाती है और मस्तिष्क के विशिष्ट क्षेत्रों को पृथक करती है। मस्तिष्क के सामने, पार्श्व तथा पीछे के बड़ेबड़े भाग को उनकी -) स्थिति के अनुसार खांडLobes) तथा खांडिका)Lobules) कहा गया है। गोलार्ध के सामने का खंड ललाटखंड)frontal lobe) है, जो ललाटास्थि से ढँका रहता है। इसी प्रकार पार्श्विका)Parietal) खंड तथा पश्चकपाल)Occipital) खंड तथा शंख खंड)temporal) हैं। इन सब पर परिशखाएँ और कर्णक बने हुए हैं। कई विशेष विदर भी हैं। चित्र .2और में इनके नाम और स्थान दिखाए गए हैं। कुछ विशिष्ट विदरों तथा परिखाओं की 3) विवेचना यहाँ की जाती है। पार्शिवक खंड पर मध्यपरिखाcentral sulcus), जो रोलैडो का विदर)Fissure of Rolando) भी कहलाती है, ऊपर से नीचे और आगे को जाती है। इसके आगे की ओर प्रमस्तिष्क का संचालन भाग है, जिसकी क्रिया से पेशियाँ संकुचित होती है। यदि वहाँ किसी स्थान पर विद्युतदुतेजना दी जाती है तो जिन पेशियों को वहाँ की कोशिकाओं से सूत्र जाते हैं उनका संकोच होने लगता है।यदि किसी अर्बुद, शोथ दाब आदि से कोशिकाएँ नष्ट या अकर्मणय हो जाती हैं, तो पेशियाँ संकोच नहीं, करतीं। उनमें पक्षघात हो जाता है। दस विदर के पीछे का भाग आवेग क्षेत्र है, जहाँ भिन्न भिन्न स्थानों की त्वचा से आवेग पहुँचा करते हैं। पीछे की ओर

पश्चकपाल खंड में दृष्टिक्षेत्र, शूक विदर)calcarine fissure) दृष्टि का संबंध इसी क्षेत्र से है। दृष्टितंत्रिका तथा पथ द्वारा गए हुए आवेग यहाँ पहुँचकर दृष्ट वस्तुओं के)impressions) प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

नीचे की ओर शंखखंड में विल्वियव के विदर के नीचे का भाग तथा प्रथम शंखकर्णक श्रवण के आवेगों को ग्रहण करते हैं। यहाँ श्रवण के चिह्नों की उत्पत्ति होती है। यहाँ की कोशिकाएँ शब्द के रूप को समझती हैं। शंखखंड के भीतरी पृष्ठ पर हिप्पोकैंपी कर्णक)Hippocampal gyrus) है, जहाँ गंध का ज्ञान होता है। स्वाद का क्षेत्र भी इससे संबंधित है। गंध और स्वाद के भाग और शक्तियाँ कुछ जंतुओं में मनुष्य की अपेक्षा बहुत विकसित हैं। यहीं पर रोलैंडो के विदर के पीछे स्पर्शज्ञान प्राप्त करनेवाला बहुत सा भाग है।

ललाटखंड अन्य सब जंतुओं की अपेक्षा मनुष्य में बढ़ा हुआ है, जिसके अग्रिम भाग का विशेष विकास हुआ है। यह भाग समस्त प्रेरक और आवेगकेंद्रों से संयोजकसूत्रों)association fibres) द्वारा संबद्ध है, विशेषकर संचालक क्षेत्र के समीप स्थित उन केंद्रों से, जिनका नेत्र की गति से संबंध है। इसलिये यह माना जाता है कि यह भाग सूक्ष्म कौशलयुक्त क्रियाओं का नियमन करता है, जो नेत्र में पहुँचे हुए आवेगों पर निर्भर करती हैं और जिनमें स्मृति तथा अनुभाव की आवश्यकता होती है। मनुष्य के बोलने, लिखने, हाथ की अँगुलियों से कला की वस्तुएँ तैयार करने आदि में जो सूक्ष्म क्रियाएँ होती हैं, उनका नियंत्रण यहीं से होता है।

प्रमस्तिष्क उच्च भावनाओं का स्थान माना जाता है। मनुष्य के जो गुण उसे पशु से पृथक् कते हैं, उन सबका स्थान प्रमस्तिष्क है।

पार्श्व निलय)Lateral Ventricles) - यदि गोलार्धो को अनुप्रस्थ दिशा में काटा जाय तो उसके भीतर खाली स्थान या गुहा मिलेगी। दोनों गोलार्धो में यह गुहा है, जिसको निलय कहा जाता है। ये गोलार्धो के अग्रिम भाग ललाटखंड से पीछे पश्चखंड तक विस्तृत हैं। इनके भीतर मस्तिष्क पर एक अति सूक्ष्म कला आच्छादित है, जो अंतरीय कहलाती है। मृदुतानिका की जालिका दोनों निलयों में स्थित है। इन गुहाओं में प्रमस्तिष्क मेरूद्रव भरा रहता है, जो एक सूक्ष्म छिद्र क्षरा, जिसे मुनरो का छिद्र)Foramen of Munro) कहते हैं, दृष्टिचेतकां)optic thalamii) के बीच में स्थित तृतीय निलय में जाता रहता है।

प्रमस्तिष्क प्रांतस्था)Cerebral Cortex)- प्रमस्तिष्क के पृष्ठ पर जो धूसर रंग के पदार्थ का मोटा स्तर चढ़ा हुआ है, वह प्रांतस्था कहलाता है। इसके नीचे श्वेत रंग का अंतस्थ)medulla) भाग है। उसमें भी जहाँ तहाँ धूसर रंग के द्वीप और कई छोटी छोटी द्वीपिकाएँ हैं। इनको केंद्रक)nucleus) कहा जाता है।

प्रांतस्था स्तर विशेषकर तंत्रिका कोशिकाओं का बना हुआ है, यद्यपि उसमें कोशिकाओं से निकले हुए सूत्र और न्यूरोम्लिया नामक संयोजक ऊतक भी रहते हैं, किंतु इस स्तर में कोशिकाओं की ही प्रधानता होती है।

स्वयं प्रांतस्था में कई स्तर हाते हैं। सूत्रों के स्तर में दो प्रकार के सूत्र हैंजो भिन्न भिन्न केंद्रों को आपस में एक वे : इनमें से बहुत से सूत्र नीचे मेरूशीर्ष या मे डिग्री के केंद्रों तथा अनुमस्तिष्क से आते है) जोड़े हुए हैं, कुछ मस्तिष्क ही में स्थित केंद्रों से संबंध स्थापित करते हैं(; दूसरे वे सत्र हैं जे वहाँ की कोशिकाओं से निकलकर नीचे अंतसंपुट-:) में चे जाते हैं और वहाँ पिरामिडीय पथpyramidial tract) में एकत्र हाकर मे डिग्री में पहुँचते हैं।

मनुष्य तथा उच्च श्रेणी के पशुओं, जैसे एप, गारिल्ला आदि में, प्रांतस्था में विशिष्ट स्तरों का बनना विकास की उन्नत सीमा का द्योतक है। निम्न श्रेणी के जंतुओं में न प्रांतस्था का स्तरीभवन ही मिलता है और न प्रमस्तिष्क का इतना विकास होता है।

अंततस्था यह विशेषतया प्रांतस्था की काशिकाओं से निकले हुए अपवाही तथा उनमें जनेवाले अभिवाही सूत्रों - का बना हुआ है। इन सूत्रपुंजों के बीच काशिकाओं के समूह जहाँ तहाँ स्थित हैं और उनका रंग धूसर है। अंतस्था श्वेत रंग का है।

अनुमस्तिष्क

मस्तिष्क के पिछले भाग के नीचे अनुमस्तिष्क स्थित है। उसके सामने की ओर मध्यमस्तिष्क है, जिसके तीन स्तंभों द्वारा वह मस्तिष्क से जुड़ा हुआ है। बाह्य पृष्ठ धूसर पदार्थ से आच्छादित होने के कारण इसका रंग भी धूसर है और प्रमस्तिष्क की ही भाँति उसके भीतर श्वेत पदार्थ है। इसमें भी दो गोलार्ध हैं, जिनका काटने से बीच में श्वेत रंग की, वृक्ष की शाखाओं की सी रचना दिखाई देती है। अनुमस्तिष्क में विदरों के गहरे होने से वह पत्रकों)lamina) में विभक्त हे गया है। ऐसी रचना प्रशाखारूपिता)Arber vitae) कहलाती है।

अनुमस्तिष्क का संबंध विशेषकर अंतकर्ण से और पेशियों तथा संधियों से है। अन्य अंगों से संवेदनाएँ यहाँ आती: रहती हैं। उन सबका सामंजस्य करना इस अंग का काम है, जिससे अंगों की क्रियाएँ सम रूप से होती रहें। शरीर को ठीक बनाए रखना इस अंग का विशेष कर्म है। जिन सूत्रों द्वारा ये संवेग अनुमतिष्क की अंतस्था में पहुँचते हैं, वे प्रांतस्था से गोलार्ध के भीतर स्थित दंतुर केंद्रक)dentate nucleus) में पहुँचते हैं, जो घूसर पदार्थ, अर्थात् कोशिकाओं, का एक बड़ा पुंज है। वहाँ से नए सूत्र मध्यमस्तिष्क में दूसरी ओर स्थित लाल केंद्रक)red nucleus) में पहुँचते हैं। वहाँ से संवेग प्रमस्तिष्क में पहुँच जाते हैं।

मध्यमस्तिष्क)Mid-brain)

अनुमस्तिष्क के सामने का ऊपर का भाग मध्यमस्तिक और नीचे का भाग मेरूशीर्ष)Medulla oblongata) है। अनुमस्तिष्क और प्रमस्तिष्क का संबंध मध्यमस्तिष्क द्वारा स्थापित होता है। मघ्यमस्तिष्क में होते हुए सूत्र प्रमस्तिष्क में उसी ओर, या मध्यरेखा को पार करके दूसरी ओर को, चले जाते हैं।

मध्यमस्तिष्क के बीच में सिल्वियस की अणुनलिका है, जो तृतिय निलय से चतुर्थ निलय में प्रमस्तिष्क मेरूद्रव को पहुँचाती है। इसके ऊपर का भाग दो समकोण परिखाओं द्वारा चार उत्सेधों में विभक्त है, जो चतुष्टय काय या पिंड)Corpora quadrigemina) कहा जाता है। ऊपरी दो उत्सेधों में दृष्टितंत्रिका द्वारा नेत्र के रेटिना पटल से सूत्र पहुँचते हैं। इन उत्सेधों से नेत्र के तारे में होनेवाली उन प्रतिवर्त क्रियाओं का नियमन होता है, जिनसे तारा संकुचित या विस्तृत होता है। नीचे के उत्सेधों में अंतकर्ण के काल्कीय भाग से सूत्र आते हैं और उनके द्वारा आए हुए: मस्तिष्क के शंखखंसंवेगों को यहाँ से नए सूत्र प्रड के प्रतिस्था में पहुँचाते हैं।

मेरूरज्जु से अन्य सूत्र भी मध्यमस्तिष्क में आते हैं। पीड़ा, शीत, उष्णता आदि के यहाँ आकर, कई पुंजो में एकत्र होकर, मेरूशीर्ष द्वारा उसी ओर को, या दूसरी ओर पार होकर, पौंस और मध्यमस्तिष्क द्वारा थैलेमस में पहुँचते हैं और मस्तिष्क में अपने निर्दिष्ट केंद्र को, या प्रांतस्या में, चले जाते हैं।

अणुनलिका के सामने यह नीचे के भाग द्वारा भी प्रेरक तथा संवेदनसूत्र अनेक भागों को जाते हैं। संयोजनसूत्र भी यहाँ पाए जाते हैं।

पौंस वारोलिआइ)Pons varolii)- यह भाग मेरूशीर्ष और मध्यमस्तिष्क के बीच में स्थित है और दोनों अनुमस्तिष्क के गोलार्धों को मिलाए रहता है। चित्र में यह गोल उरूत्सेध के रूप में सामने की ओर निकला हुआ दिखाई देता है। मस्तिष्क की पीरक्षा करने पर उसपर अनुप्रस्थ दिशा में जाते हुए सूत्र छाए हुए दिखाई देते हैं। येसूत्र अंतसंपुट और मध्यमस्तिष्क से पौंस में होते हुए मेरूशीर्ष में चले जाते हैं। सब सूत्र इतने उत्तल नहीं हैं। कुछ गहरे सूत्र ऊ पर से आनेवाले पिरामिड पथ के सूत्रों के नीचे रहते हैं। पिरामिड पथों के सूत्र विशेष महत्व के हैं, जो पौंस में होकर जाते हैं। अन्य कई सूत्रपुंज भी पौंस में होकर जाते हैं, जो अनुदैर्ध्य, मध्यम और पार्श्व पंज कहलाते हैं। इस भाग में पाँचवीं, छठी, सातवीं और आठवीं तंत्रिकाओं के केंद्रक स्थित हैं।

मेरूशीर्ष)Medulla oblongata) - देखने से यह मे डिग्री का भाग ही दिखाई देता है, जो ऊपर जाकर मध्यमस्तिष्क और पौंस में मिल जाता है; किंतु इसकी रचना मेरूरज्जु से भिन्न है। इसके पीछे की ओर अनुमस्तिष्क है। यहाँ इसका आकार मेरुरज्जु से दुगना हो जाता है। इसके चौड़े और चपटे पृष्ठभाग पर एक चौकोर आकार का खात बन गया है, जिसपर एक झिल्ली छाई रहती है। यह चतुर्थ निलय)Fourth ventricle) कहलाता है, जिसमें सिलवियस की नलिका द्वारा प्रमस्तिष्क मेरूद्रव आता रहता है। इसके पीछे की ओर अनुमस्तिष्क है।

मेरूशीर्षक अत्यंत महत्व का अंग है। हृत्संचालक केंद्र, श्वासकेंद्र तथा रक्तसंचालक केन्द्र चतुर्थ निलय में निचले भाग में स्थित हैं, जो इन क्रियाओं का नियंत्रण करते हैं। इसी भाग में आठवीं, नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं मस्तिष्कीय तंत्रिकाओं के केन्द्र भी स्थित हैं। यह भाग प्रमस्तिष्क, अनुमस्तिष्क तथा मध्यमस्तिष्क से अनेक सूत्रों

द्वारा जुड़ा हुआ है और अनेक सूत्र मेरूरज्जु में जाते और वहाँ से आते हैं। ये सूत्र पुंजों में समूहित हैं। ये विशेष सूत्रपुंज हैं

.1पिरामिड पथ)Pyramidal tract), .2मध्यम अनुदैर्ध्यपुंज)Median Longitudinal bundles), तथा .3 मध्यम पुंजिका)Median filler)।

पिरामिड पथ में केवल प्रेरक)motor) सूत्र हैं, जो प्रमस्तिष्क के प्रांतस्था की प्रेरक कोशिकाओं से निकलकर अंतसंपुट में होते हुए, मध्यमस्तिष्क और पौंस से निकलकर, मेरूशीर्षक में आ जाते हैं और दो पुंजों में एकत्रित होकर रज्जु की मध्य परिखा के सामने और पीछे स्थित होकर नीचे को चले जाते हैं। नीचे पहुँचकर कुछ सूत्र दूसरी ओर पार हो जाते हैं और कुछ उसी ओर नीचे जाकर तब दूसरी ओर पार होते हैं, किंतु अंत में सस्त सूत्र दूसरी ओर चले जाते हैं। जहाँ वे पेशियों आदि में वितरित होते हैं। इसी कारण मस्तिष्क पर एक ओर चोट लगने से, या वहाँ रक्तस्राव होने से, उस ओर की कोशिकाआं के अकर्मणय हो जाने पर शरीर के दूसरी ओर की पेशियों का संस्तंभ होता है।

मध्यम अनुदैर्ध्य पुंजोंके सूत्र मघ्यमस्तिष्क और पौंस में होते हुए मेरूशीर्ष में आते हैं और कई तंत्रिकाआं के केंद्र को उस ओर तथा दूसरी ओर भी जोड़ते हैं, जिससे दोनों ओर की तंत्रिकाओं की क्रियाओं का नियमन सभव होता है।

'मध्यम पुंजिकामें केवल संवेदन सूत्र हैं। चह पुंजिका उपर्युक्त दोनों पुंजों के बीच में स्थित है। ये सूत्र मेरुरज्जु से आकर, पिरामिड सूत्रों के आरपार होने से ऊपर जाकर, दूसरी ओर के दाहिने सूत्र बाईं ओर और वाम दिशा के सूत्र दाहिनी ओर को प्रमस्तिष्क में स्थित केंद्रो में चले जाते हैं।

8.4 मेरुरज्जु

कशेरूक नाल में नीचले मेरूरज्जु की स्थिति

मेरूरज्जु मध्य तंत्रिकातंत्रका वह भाग है, जो मस्तिष्क के नीचे से एक रज्जु के रूप में पश्चकपालास्थि के (रस्सी)) पिछले और नीचे के भाग में स्थित महारंध्रforamen magnum) द्वारा कपाल से बाहर आता है और कशेरूकाओं के मिलने से जो लंबा कशेरूका दंड जाता है उसकी बीच की नली में चला जाता है। यह रज्जु नीचे ओर प्रथम कटि कशेरूका तक विस्तृत है। यदि संपूर्ण मस्तिष्क को उठाकर देखें, तो यह इंच लंबी श्वेत रंग की 18 रज्जु उसके नीचे की ओर लटकती हुई दिखाई देगी। कशेरूक नलिका के ऊपरी भाग में यह रज्जु स्थित है 3/2 और उसके दोनों ओर से उन तंत्रिकाओं के मूल निकलते हैं, जिनके मिलने से तंत्रिका बनती है। यह तंत्रिका कशेरूकांतरिक रंध्रों)intervertebral foramen) से निकलकर शरीर के उसी खंड में फैल जाती हैं, जहाँ वे कशेरूक नलिका से निकली हैं। वक्ष प्रांत की बारहों मेरूतंत्रिका इसी प्रकार वक्ष और उदर में वितरित है। ग्रीवा और कटि तथा त्रिक खंडों से निकली हुई तंत्रिकाओं के विभाग मिलकर जालिकाएँ बना देते हैं जिनसे सूत्र दूर तक

अंगों में फैलते हैं। इन दोनों प्रांतों में जहाँ वाहनी और कटित्रिक जालिकाएँ बनती हैं, वहाँ मेरूरज्जु अधिक चौड़ी और मोटी हो जाती है।

मस्तिष्क की भाँति मेरूरज्जु भी तीनों तानिकाओं से आवेष्टित है। सब से बाहर दृढ़ तानिका है, जो सारी कशेरूक नलिका को कशेरूकाओं के भीतर की ओर से आच्छादित करती है। किंतु कपाल की भाँति परिअस्थिक)periosteum) नहीं बनाती और न उसके कोई फलक निकलकर मेरूरज्जु में जाते हैं। उसके स्तरों के पृथक होने से रक्त के लौटने के लिये शिरानाल भी नहीं बनते जैसे कपाल में बनते हैं। वास्तव में मरूरज्जु पर की दृढ़तानिका मस्तिष्क पर की दृढ़ तानिका का केवल अंतस्तर है। :

दृढ़ तानिका के भीतर पारदर्शी, स्वच्छ, कोमल, जालक तानिका है। दोनों के बीच का स्थान अधोदृढ़ तानिका अवकाश)subdural space) कहा जाता है, जो दूसरे, या तीसरे त्रिक खंड तक विस्तृत है। सबसे भीतर मृदु तानिका है, जो मेरूरज्जु के भीतर अपने प्रवर्धों और सूत्रों को भेजती है। इस सूक्ष्म रक्त कोशिकाएँ होती हैं। इस तानिका के सूत्र तानिका से पृथक् नहीं किए जा सकते। मृदु तानिका और जालक तानिका के बीच के अवकाश को अधो जालक तानिका अवकाश कहा जाता है। इसमें प्रमस्तिष्क मेरूद्रव भरा रहता है।

नीचे की ओर द्वितीय कटि कशेरूका पर पहुँचकर रज्जु की मोटाई घट जाती है और वह एक कोणाकार शिखर में समाप्त हो जाती है। यह मेरूरज्जु पुच्छ)canda equina) कहलाता है। इस भाग से कई तंत्रिकाएँ नीचे को चली जाती हैं और एक चमकता हुआ कला निर्मित बंध)bond) नीचे की ओर जाकर अनुत्रिक)coccyx) के भीतर की ओर चला जाता है।

मेरूरज्जु की स्थूल रचना

रज्जु की रचना जानने के लिये उसका अनुप्रस्थ काट)transverse section) काट लेना आवश्यक है। काट में दाहिने और बाँयें भाग समान रहते हैं। दोनों ओर के भागों के बीच में सामने ही ओर एक गहरा विदर, या परिखा)fissere) है जो रज्जु के अग्र पश्व व्यास के लगभग तिहाई भाग तक भीतर को चली जाता है। यह अग्रपरिखा है। पीछे की ओर भी ऐसी पश्वमध्य)postero median) परिखा है। वह अग्र मध्य)antero median) परिखा से गहरी किंतु संकुचित है। अग्र परिखा में मृदुतानिका भरी रहती है। पश्व परिखा में मृदुतानिका नहीं होती। पश्वपरिखा से तनिक बाहर की ओर पश्व पार्श्व परिखा)postero lateral fissure) है जिससे तंत्रिकाओं के पश्व मूल निकलते हैं। अग्र मूल सामने की ओर से निकलते है, किंतु उनका उद्गम किसी परिखा, या विदर से नहीं होता।

मेरूरज्जु में आकर धूसर और श्वेत पदार्थों की स्थिति उलटी हो जाती हे। श्वेत पदार्थ बाहर रहता है ओर धूसर पदार्थ उसके भीतर एच अक्षर के आकार में स्थित है।

धूसर पदार्थ की स्थिति ध्यान देने योग्य है। इसके बीच में एक मध्यनलिका)central canal) है जिसमें प्रमस्तिष्क मेरूद्रव चतुर्थ निलय से आता रहता है। वास्तव में इसी नलिका के विस्तृत हो जाने से चतुर्थ निलय बना है। नलिका के दोनों ओर रज्जु में समान भाग हैं, जो अग्र पश्च परिखाओं द्वारा दाहिने और बायें अर्धाशौं में विभक्त है। इस कारण एक ओर के वर्णन से दूसरी ओर भी वैसा ही समझना चाहिए।

श्वेत पदार्थ के भीतर धूसर पदार्थ का आगे की ओर को निकला हुआ भाग)H EòÉ +OÉ +vÉÉÈ¶É) अग्र श्रृंग)anterio cornua) और पीछे की ओर का प्रवर्धित भाग पश्च श्रृंग)posterior cornua) कहलाता है। इन दोनों के बीच में पार्श्व की ओर को उभरा हुआ भाग पार्श्व श्रृंग)laterak horns) है, जो वक्ष प्रांत में विशेषतया विकसित है। भिन्न भिन्न प्रांतों में धूसर भाग के आकार में भिन्नता है। वक्ष और त्रिक प्रांतों में धूसर भाग विस्तृत है। इन विस्तृत भागों से उन बड़ी तंत्रिकाओं का उदय होता है, जो ऊर्ध्व ओर अधो शाखाओं के अंगों में फैली हुई हैं।

धूसर पदार्थ के बाहर श्वेत पदार्थ उन अभिवाही और अपवाही सूत्रों का बना हुआ है जिनके द्वारा संवेदनाएँ त्वचा तथा अंगों से उच्च केंद्रों में और अंत में प्रमस्तिष्क की प्रांतस्था में पहुंचती हैं तथा जिन सूत्रों द्वारा प्रांतस्था और अन्य केंद्रों से प्रेरणाएँ या संवेग अंगों और पेशियों में जाते हैं।

सूक्ष्म रचना

धूसर पदार्थ में तंत्रिका कोशाणु में दस पिधान युक्त अथवा अयुक्त तंत्रिकातंतु तथा न्यूरोग्लिया होते हैं। कोशाणु विशेष समूहों में सामने, पार्श्व में और पीछे की ओर स्थित हों। ये कोशणु समूह स्तंभों)column) के आकार में रज्जु के धूसर भाग में ऊपर से नीचे को चले जाते हैं और भिन्न भिन्न स्तंभों के नाम से जाने जाते हैं। इस प्रखर अग्र, मध्य तथा पश्च कई स्तंभ बन गए हैं। ये मुख्य स्तंभ फिर कई छोटेछोटे स्तंभों में विभक्त हो जाते हैं।-

धूसर पदार्थ के बाहर श्वेत पदार्थ के भी इसी प्रकार कई स्तंभ हैं। यहाँ कोशिकाएँ नहीं हैं। केवल पिधानयुक्त सूत्र और न्यूरोग्लिया नामक संयोजक ऊतक हैं। सूत्रों के पुंजपथ)tract) कहलाते हैं, किंतु इन पथों को स्वस्थ दशा में सूक्ष्मदर्शी की सहायता से भी पहिचानना कठिन होता है। संवेदी तंत्रिकाओं के सूत्र पश्च मूल द्वारा मे डिग्री रज्जु में प्रवेश करते हैं, अवएव उनका संबंध पश्च श्रृंगों में स्थित कोशिकाओं में होता हैं और वहाँ से वे प्रमस्तिष्क की प्रांतस्था तक कई न्यूरोनों द्वारा तथा कई केंद्रकों से निकलकर पहुंचते हैं। कितने ही सूत्र पश्चिम श्रृंग की कोशिकाओं में अंत न होकर सीधे ऊपर चले जाते हैं। इसी प्रकार प्रेरक तंत्रिकाओं के सूत्र रज्जु के अग्रभाग में स्थित होते हैं और अग्र श्रृंगों के संबंध में रहते हैं।

मेरूरज्जु के कार्य)functions)

ये दो हैं:

मेरूरज्जु द्वारा संवेगों का संवहन होता है। प्रांतस्था की कोशिकाओं में जो संवेग उत्पन्न होते हैं उनका अंगों(1), या पेशियों तक मेरूरज्जु के सूत्रों द्वारा ही संवहन होता है। त्वचा या अंगों से जो संवेग आते हैं, वे भी मेरूरज्जु के सूत्रों में होकर मस्तिष्क के केंद्रों तथा प्रांतस्था के संवेदी क्षेत्र में पहुंचते हैं।

मेरूरज्जु के धूसर भाग में कोशिकापुंज भी स्थित हैं जिनका काम संव(2)ेगों को उत्पन्न करना तथा ग्रहण करना है। पश्च ओर के स्तंभों की कोशिकाएँ त्वचा और अंगों से आए हुए संवेगों को ग्रहण करती हैं। अग्र श्रृंग की कोशिकाएँ जिन संवेगों को उत्पन्न करती हैं वे पेशियों में पहुंच कर उनके संकोच का कारण होते हैं जिससे शरीर की गति होती है। अन्य अंगों के संचालन के लिये जो संवेग जाते हैं उनका उद्भव यहीं से होता है। संवेग के पश्चिम श्रृंग में पुहंचने पर जब वह संयोजक सूत्र द्वारा पूर्व श्रृंग में भेज दिया जाता है तो वहाँ की कोशिकाएँ नए संवेगको उत्पन्न करती हैं जो तंत्रिकाक्ष कोशिकाओं द्वारा, जिस पर आगे चलकर पिधान)medullated) चढ़ने से वे तंत्रिका सूत्र बन जाते हैं। इस प्रकार की क्रियाएँ प्रतिवर्ती क्रिया)reflex action) कहलाती हैं। मेरूरज्जु प्रतिवर्ती क्रियाओं का स्थान है।

प्रतिवर्ती क्रियाएँ)Involuntory actions)

शरीर में प्रति क्षण सहस्रों प्रतिवर्ती क्रियाएँ होती रहती हैं। हृदय का स्पंदन, श्वास का आना जाना, पाचक तंत्र की पाचन क्रियाएँ, मल, या मुत्र त्याग, ये सब प्रतिवर्ती क्रियाएँ हैं जो मेरूरज्जु द्वारा होती रहती हैं; हाँ इन क्रियाओं का निमयन, घटना, बढ़ना मस्तिष्क में स्थित उच्च केंद्रों द्वारा होता है। हमारी अनेक इच्छाओं से उत्पन्न हुई क्रियाएँ भी, यद्यपि उनका उद्भव प्रमस्तिष्क के प्रांतस्था से हाता है किंतु आगे चलकर उनका संपादन मेरूरज्जु से प्रतिवर्ती क्रिया की भाँति होने लगता है। अपने मित्र से मिलने की इच्छा मस्तिष्क में उत्पन्न होती है। प्रांतस्था की प्रेरक क्षेत्र की कोशिकाएँ संबंधित पेशियों को संवेग, या प्रेरणाएँ भेजकर उनसे सब तैयारी करवा देती हैं और हम मित्र के घर की ओर चल देते हैं। हम बहुत प्रकार की बातें सोचते जाते हैं, कभी अखबार, या चित्र भी देखने लगते हैं, तो भी पाँव मित्र के घर के रास्ते पर ही चले जाते हैं। यहाँ प्रतिवर्ती क्रिया हो गई। जिस क्रिया का प्रारंभ मस्तिष्क से हुआ बा, वह मेरूरज्जु द्वारा होने लगी। इन प्रतिवर्ती क्रियाओं का नियमन मस्तिष्क द्वारा होता है। इन पर भी प्रांतस्था का सर्वोपरि अधिकार रहता है।

प्रतिवर्ती चाप)Reflex arc)

इससे उस समस्त मार्ग का प्रयोजन है जिसके द्वारा संवेग अपने उत्पत्ति स्थान से केंद्रीय तंत्रिका तंत्र मस्तिष्क और) द्वारा अपने अंतिम स्थान पर पहुंचते हैं (मेरूरजजु, जहाँ क्रिया होती है। इस मार्ग, या परावर्ती चाप के पाँच भाग होते हैं:

) संवेदी तंत्रिका सूत्रों के ग्राहक अंतांग (1)recepters or receptive nerve endings) जो त्वचा में, या अंगों के भीतर स्थित होते हैं। ज्ञानेंद्रियों, त्वचा, पेशियों, संधियों, आंत्रनाल की दीवार, फुफ्फुस, हृदय, इन सभी में ऐसे तंत्रअंतांग स्थित है जो वस्तुस्थिति में परिवर्तन के कारण उत्तेजित हो जाते हैं। यहीं से संवेग की उत्पत्ति होती है।

) अभिवाही तंत्रिका जिसके सूत्रों की कोशिकाएँ पश्चमूल की गंडिका(2)ganglion) में स्थित है।

केंद्रीय तंत्रिकात (3)ंत्र ।(मस्तिष्क और मरूरज्जु)

अपवाही तंत्रिका और (4)

जिस अंग में तंत्रिका सूत्र के अंतांग स्थित हों(5), जैसे पेशी, लाला ग्रंथियाँ, हृदय, आंत्र, आदि। प्रथम अंतांगों से संवेग अभिवाही तंत्रिका द्वारा केंद्रीय तंत्र में पहुंचकर वहाँ से अभिवाही तंत्रिका में होकर दूसरे अंतांगों में (प्रेरक) पहुंचते है।

कुछ भागों मे ये पाँचों भाग होते हैं। कुछ में कम भी हैं। ये भाग वास्तव में न्यूरॉन)neuron) है। तंत्रिका कोशिका, उससे निकलने वाला लंबा तंत्रिकाक्ष)axon) जो आगे चलकर तंत्रिका का अक्ष सिलिंडर बन जाता है और कोशिका के डेंड्रोन)dendron) मिलकर न्यूरॉन कहलाते है। डेंड्रोन में होकर संवेग कोशिका में जाता है। ये छोटे-र कोशिका के शरीर से वृक्ष की शाखाओं की भाँति निकले रहते हैं। कोशिका के दूसरे कोने से छोटे होते हैं औ तंत्रिकाक्ष निकलता है, जो पिधानयुक्त होने पर तंत्रिका में होकर दूर तक चला जाता है।

प्रतिवर्ती चाप में कम से कम दो न्यूरॉन होते हैं। जानु प्रतिवर्त)knee reflex) में दो न्यूरॉन है। किंतु इतनी छोटी चाप शरीर में एक दो ही हैं। अधिक अंगों में तीन, चार और पाँच न्यूरोन तक होते हैं। इनके द्वारा संवेग ग्राहक अंतांगों से लेकर अंतिम निर्दिष्ट स्थान या अंग तक पहुंचता है।

8.5 प्रश्न

1.तंत्रिका तंत्र से आप क्या समझते है

2. मस्तिष्क के कितने भाग होते है

3. प्रमस्तिष्क की संरचना समझाइये

4. प्रतिव्रत क्रिया किसे कहता है

5.मेरुरज्जु की संरचना समझाइये

8.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. अर्थर सी. गुयटन एण्ड जान एडवर्ड हाल (2006), ट ेक्सटब ुक आॅफ मेडिकल फीजियोलॅजी, फ्लोरिडा, अमेरिका, एल्जेवियर स्टैंडर्डस

2. सुरिन्दर एच सिंह और कृष्ण गर्ग (2008), एनाटाॅमी, एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर नर्सेज और एलाॅइड हेल्थ सांइसेज, नई दिल्ली, सीबीएस पब्लिशर्स

3. शिवरामकृष्णन एस. (2006), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर फीजिकल एजुकेशन, नई दिल्ली, फ्रेंड्स पब्लिशर्स

4. अन्ने वाॅ और एल्सन ग्राउंट (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी इन हेल्थ एण्ड वेलनेस, इलाहाबाद, चर्चिल लिविंगस्टोन

5. क्लार्क राॅबर्ट के. (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी - अंदरस्टैंडिंग द ह्यूमन बाॅडी, सडरी, यूनाइ टेड स्टेट्स, जाॅनस एण्ड बारटियट

6. श्री कृष्ण (1985), नोट्स आॅन स्ट्रक्चर एण्ड फंक्शन्स आॅफ ह्यूमन बाॅडी एंड इफेक्ट्स आॅफ योगिक प्रेक्टिसेज इन इट, मुंबई र् आइ .सी.वाई.एच सी. कैवल्यधाम

7. दत्ता रे (2001), योगिक एक्सरसाईजेज, नई दिल्लीः जेपी ब्रदर्स

8. शीर्ले टेलेस (2006), ए गिलम्पस आॅफ द ह्यूमन, बंगलोरः स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन

9. लेस्ली केमिनोफ (2007), योग एनाटामी, कैम्पेनः ह्यूमन काइ नेटिक्स

10. पीटर आई विलियम्स और रोगर वास्वी (1988), ग्रेज एनाटॅमी, एडीनबर्गः चर्चिल लिविंगस्टोन

11. एवीलीन ब् पीएर्स (1997), एनाटामी एंड फीजियोलाजी फार नर्सेज, नई दिल्लीःजेपी ब्रदर्स

12. गेरे एम.एम. (2003), एनाटॅमी एण्ड फीजियोलॅजी फॅर योगिक पै्रक्टिसेज, लुनावालाः काम्हान प्रकाशन

13. शरीर- रचना विज्ञान एवं शरीर-क्रिया विज्ञान (2003), श्री नन्दन बंसल, जेपी ब्रदर्सः नई दिल्ली

अध्याय-9

अन्त: **स्त्रावी तंत्र**(Endocrine System)

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 हारमोन्स की विशेषताएँ **(Characteristics of Harmones)**

9.3 पियूष ग्रंथि **(Pituitary gland)**

9.4 थॉएरॉइड ग्रंथि **(Thyroid gland)**

9.5 पैराथाएराइड ग्रंथि **(Parathyroid gland)**

9.5 एंड्रीनल ग्रंथि **(Adrenal gland)**

9.6 लैन्गरहैंस द्वीपिकाएँ **(Islets of Langerhans)**

9.7यौन ग्रंथियाँ **(Gonads)**

9.8 थाइमस ग्रंथि **(Thymus gland)**

9.9 सारांश

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य

- हारमोन्स की विशेषताएँ के बारे में जान सकेंगे |
- पियूष ग्रंथि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- थॉएरॉइड ग्रंथि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे

- पैराथाएराइड ग्रंथि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- एंड्रीनल ग्रंथि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- लैन्गरहैंस द्वीपिकाएँ की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- यौन ग्रंथियाँ की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- थाइमस ग्रंथि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे

9.1 प्रस्तावना

मानव शरीर में दो प्रकार की ग्रंथियाँ पायी जाती है- नलिका युक्त तथा नलिका विहीन। नलिका विहीन ग्रंथियाँ **(Ductless glands)** हो अत: स्त्रावी ग्रंथियाँ **(Endocrine glands)** कहलाती हैं। नलिका युक्त गं्रथियाँ वे नलिकाएँ **(Vessels or Ducts)** होती हैं जिसके माध्यम से स्त्रावित पदार्थ शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाये जाते है लार गं्रथियाँ **(Salivary glands)** आँसूबली गं्रथियाँ **(Lacrymal glands),** यकृत **(Liver)** इत्यादि नलिका युक्त है। नलिका युक्त ग्रंथियों को बहिस्त्रावी ग्रंथियाँ **(Exocrine glands)** भी कहते हैं।

नलिका विहीन ग्रंथियों **(Duetless glands)** में कोई नलिकाएँ नहीं होती हैं बल्कि इन ग्रंथियों के चारों और रक्त केशिकाओं **(Blood capillaries)** का घना छायादार वृक्ष के सदृश जाल बिछा रहता है जिनके माध्यम से ये स्त्रावी पदार्थ को सीधे ही रक्त में डाल देते है। यहाँ से ये स्त्रावी पदार्थ का रक्त परिसंचरण **(Blood circulation)** के दौरान अंग विशेष, तथा अंग तंत्रों में जाकर अपना कार्य करते है, तथा नियमन करते हैं। अंत: स्त्रावी ग्रंथियों से जो स्त्रावी पदार्थ निकलते हैं उन्हें हारमोन **(Harmone)** कहते है। हारमोंन रासायनिक यौगिक होते हैं। इसलिए इन्हें रासायनिक नियामक **(Chemical co-ordinators)** भी कहा जाता है। कुछ हारमोन्स तंत्रिकाओ **(Nerves)** के साथ भी शरीर की अधिकांश क्रियाओं का नियमन करते हैं। इस प्रकार के नियमन को तंत्रिकीय अंत:स्त्रावी नियमन **(Neuro-Endocrine regulation)** भी कहते है। हारमोन्स रासायनिक रूप में पेप्टाइड्, स्टायॉयड्स, अमीन्स तथा अमीनों अम्ल के व्युत्पन्न **(Derivatives ofAmino acids)** होते है।

9.2 हारमोन्स की विशेषताएँ **(Characteristics of Harmones) –**

(1) हारमोन्स अल्प मात्रा में भी कार्यशील होता है।

(2) हारमोन्स का संश्लेषण एवं संग्रह अपनी की ग्रंथियों में होता है तथा क्रिया करने के तुरंत बाद इसकी क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है तथा इनका विनाश हो जाता है। अपवाद स्वरूप पश्च पियूष हारमोन्स का संश्लेषण हाइपोथैलेमस में होता है और संग्रह पश्च पियूष ग्रंथि **(Posterior Pituitary)** में होता है।

(3) हारमोन नियमन का कार्य करते हैं।

शरीर की मुख्य अन्त:स्त्रावी ग्रंथियाँ निम्नलिखित हैं -

(1) पियूष ग्रंथि **(Pituitary gland)**

(2) थॉएरॉइड ग्रंथि **(Thyroid gland)**

(3) पैराथाएराइड ग्रंथि **(Parathyroid gland)**

(4) एंड्रीनल ग्रंथि **(Adrenal gland)**

(5) लैन्गरहैंस द्वीपिकाएँ **(Islets of Langerhans)**

(6) यौन ग्रंथियाँ **(Gonads)**

(7) थाइमस ग्रंथि **(Thymus gland)**

- चित्र : मानव में अंत:स्त्रावी ग्रंथियों की स्थिति

9.3 **पियूष ग्रंथि** (Pituitary Gland)

पियूष ग्रंथि को हाइपोफाइसिस सेरेब्री ग्रंथि **(Hypophysis cerbri gland)** भी कहा जाता है। यह ग्रंथि कपाल की फर्श पर, सेला टर्सीका **(Sella turrcica)** में अवस्थित होती है। इसका आकार सेम के बीज के जैसा **(Bean dhaped)** होता है। इसकी संरचना काफी जटिल होती है। पियूष ग्रंथि को तीन प्रमुख भागों में बांटा गया हैं।

(1) अग्र पियूष **(Anterior pituitary)** या पार्स डिस्टैलिस **(Pars distalis),**

(2) मध्य पिण्ड **(Median lobe)** या पार्स इन्टरमिडियन **(Pars intermedian),**

(3) पश्च पियूष **(Posterior pituitary)** या पार्स नरवीसा **(Pars distalis),**

पियूष ग्रंथि को मास्टर ग्रंथि भी कहते है क्योंकि यह स्वयं शारीरिक क्रियाओं के नियमन के बाजवूद कुछ अंतस्त्रावी ग्रंथियों की कार्यविधि का नियमन भी करती है। अगर लक्ष्य ग्रंथि **(Target glands)** अधिक हारमोन स्त्रावित करती है तो पियूष ग्रंथि में पिट्यूटरी ट्रॉफिक हारमोन **(PTH)** कम मात्रा में निकलता है। इस प्रकार यह विभिन्न अंगो में हारमोन का संतुलन बनाये रखता है। ठीक इसी प्रकार अगर लक्ष्य ग्रंथि **(Target glands)** कम मात्रा में हारमोन का स्त्रावण करती है तो पिट्यूटरी ट्रॉफिक हारमोन अधिक मात्रा में निकलती है और हारमोन की कमी को दूर करती है तथा संतुलन बनाये रखती है। इस प्रकार यह अन्य अं5 स्त्रावी ग्रंथियों की सक्रियता का नियमन करती है। इसीलिए पियूष ग्रंथि को 'ऑर्केस्ट्रा' **(Orchestra)** कहा जाता है तथा हाइपोथैलेमस को ''अन्त:स्त्रावी ऑर्केस्ट्र की रानी **(Queen of Endocrine orchestra)**।

- चित्र : हाइपोथैलेमस में पीयूष ग्रंथि

(1) अग्र पियूष **(Anterior pituitary)-** अग्र पियूष सबसे बड़ा पिण्ड होता है। इसकी कोशिकाएँ अंडाकार या बहुभुजीय **(Oval or Polygonal)** होती है। ये कोशिकाएँ भिन्न-भिन्न श्रेणी के हारमोन्स का स्त्रावण करती है। मुख्यत: अग्र पियूष ग्रंथि को कोशिकाएँ तीन प्रकार की होती है।

अग्र पियूष को एड्रिनोहाइपोफाइसिस (**Adrenohypophysis** भी कहते है। अग्र पियूष की कोशिकाएँ है -

(i) एसिडोफलिक कोशिकाएँ **(Acidophillie cells)**

(ii) बैसोफिलिक कोशिकाएँ **(Basophillie cells)**

(iii) न्यूट्रोफिलिक कोशिकाएँ **(Neutrophillic cells)**

(i) एसिडोफलिक कोशिकाएँ **(Acidophillie cells) -** ये कोशिकाएँ अम्लीय रंगों में रंग जाती हैं। ये सोमेटोट्रौफिक हारमोन तथा प्रोलैक्टिन **(Somatotrophic Harmone- STH or Prolactin)** का स्त्रावण करती है।

(ii) बैसोफिलिक कोशिकाएँ **(Basophillie cells) -** ये कोशिकाएँ क्षारीय रंगो द्वारा अभिरंजित हो जाती हैं। इनके द्वारा थाएरॉइड स्टीमुलेटिंग हारमोन **(Thyroid Stimulating Harmone-TSH),** ल्यूटिनाइलिंग हारमोन **(Leutinizing Harmone- (L.H.)** तथा फौलिकिल स्टीमूलेटिंग हारमोन **(Follicle Stimulating Harmone-FSH)** स्त्रावण होता है।

(iii) न्यूट्रोफिलिक कोशिकाएँ **(Neutrophillic cells)** – इनकी कोशिकाएँ किसी भी प्रकार के रंगो से अभिरंजित नहीं होती है तथा उदासीन रहती हैं। ये एड्रीनोकॉरटिको ट्रॉफिक **(Adrenocorticotrophic Harmone- ACTH),** तथा एड्रीनल कॉटेक्स स्टीमुलेटिंग हारमोन **(Adrenal Cortex Stimulating Harmonee- ACSH)** का स्त्रावण करती है।

इस तरह अग्र पियूष की कोशिकाएँ निम्न हारमोन स्त्रावित करती है जिनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है -

(1) वृद्धि हारमोन या सोमैटोट्राफिक हारमोन **Growth Harmone or somatotrophic Harmone)** – वृद्धि हारमोन का संश्लेषण एडीनोहाइपोफाइसिस **(Adeno hyhpophysis Harmone)-** के द्वारा होता है। ये हारमोन अस्थियों, मांसपेशियों तथा अन्य अंगो की वृद्धि करते है। कभी-कभी स्थानीय वृद्धि भी दिखाई देती है जिससे कपाल, जबडै एवं अस्थियों की लम्बाई अपने अनुपात में अपेक्षाकृत अधिक बढ़ जाती है। इसके अत्यधिक स्त्राव है किशोरों में भीमकाय शरीर जाएगेन्टिज्म **(Gigantism)** की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अस्थियों की अत्यधिक वृद्धि के कारण व्यक्ति लम्बा, **7-8** फीट तक हो जाता है। हड्डियां मोटी व बेशक्ल हो जाती है। भीमकाय (जाएगेन्टिष्म) से पीड़ित व्यक्ति का आधारीय चयापचयी दर (बेसक मेटाबोलिक दर) **(Basal metabolic rate)** बढ़ जाता है। हाइपरग्लाइसेमिया **(Hyper-glycemia)** नामक बीमारी हो जाती है।

चित्र : वृद्धि हारमोन के अति व अल्पस्त्राव के प्रभाव

वृद्धि हारमोन के अल्प स्त्राव से व्यक्ति में बौनापन **(Dwarfism)** की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। हड्डियों, माँसपेशियों, संयोजी ऊतको तथा अन्य अंगो का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है। हाथ और पैर के भी कद छोटे हो जाते है। ऐसे व्यक्ति में यौन सम्बन्धी उत्साह का अभाव रहता हे। प्रजनन अंग ठीक से विकसित नहीं हो पाते है। फलत: व्यक्ति में पुरूषत्व एवं स्त्री में नारीत्व का पूर्णत: विकास नहीं हो पाता है।

(2) थाएरॉइड स्टीम्यूलेटिंग हारमोन **(Thyroid Stimulating Harmone- TSH)** इस हारमोन का संश्लेषण एडिनोहाइपोफाइसिस के द्वारा होता है। यह हारफोन थाएरॉइड ग्रंथि **(Thyroid gland)** के विकास और क्रिया

को प्रभावित करता है। थाएरॉइड ग्रंथि द्वारा थाइरोक्सिन **(Thyroxine)** तथा ट्राइआयोडोथाइरोनिन **(Triodothhyronine)** का स्त्राव करता है जो पोषण में सहायता प्रदान करता है।

(3) एड्रीनोकॉरटिको ट्रॉफिक हारमोन **(Adrenoeortico Trophic Harmone- ACTH)-** ये हारमोन पियूष ग्रंथि के क्रोमोफोब कोशिकाओं **(Chromophobe cells)** से स्त्रावित होते है तथा स्टीरॉयड **(Steroid)** श्रेणी के होते है। ये हारमोन एड्रीनल ग ंथि **(Adrenal gland)** के कॉर्टेक्स **(Cortex)** भाग को उत्तेजित करते हैं जिससे रक्त में कोलेस्ट्राल **(Cholesterol)** तथा स्टीरॉयड **(Steroid)** का सान्द्रण बढ़ जाता है।

चित्र: वृद्धि हारमोन से स्थानीय वृद्धि

(4) गोनैडोट्रॉफिक हारमोन **(Gonadotophic Harmone- OTH)-** यह हारमोन अग्र पियूष भाग से निकलता है तथा जननेन्द्रियों की वृद्धि के लिए आवश्यक होता है। गोनैडोट्राफिक हारमोन दो प्र्रकार के होते है जो स्त्री तथा पुरूष में पाये जाते हैं।

(i) फॉलिकिल स्टीमयूलेटिंग हारमोन **(Follicle Stimulating Harmone)-**

(ii) ल्यूटिनाइजिंग हारमोन **(Luteinizing Harmone)** क

(i) फॉलिकिल स्टीमयूलेटिंग हारमोन **(Follicle Stimulating Harmone- FSH)-** ये हारमोन स्त्रियों के अंडाशय में अंडजनन **(Oogenesis)** का नियमन करता है। इसी हारमोन के स्त्राव में ग्राफियन पुटिका **(Craffian Follicle)** की वृद्धि तथा विकास होता है। ग्राफियन पुटिका में इस्ट्रोजन **(Oestrogen)** हारमोन का स्त्रावण होता है जो प्रजनन अंगो **(Reproductive organs)** तथा लैंगिक लक्षणों **(Sexual characters)** का नियमन करते है।

पुरूष के वृषण में यह हारमोन शुक्रजनन **(Spermatogenis)** का नियमन करता है जिसके फलस्वरूप शुक्राणु **(Sperm)** बनते है।

(ii) ल्यूटिनाइजिंग हारमोन **(Luteinizing Harmone- LH))** – इस हारमोन के द्वारा भी जनद क्रिया का नियमन होता है। यह स्त्रियों के कारपस ल्यूटियम को प्रभावित करता है। कारपस ल्यूटियस से प्रोजेस्ट्रान **(Progesterone)** नामक हारमोन का स्त्रावण होता है। यह हारमोन सगर्भता **(Pregnancy)** के विकास के लिए आवश्यक है।

ल्यूटिनाइजिंग हारमोन **(L.H)** पुरूष के वृषण **(Testes)** को प्रभावित करता है। पुरूष में इस हारमोन को इन्टरस्टीशियल हारमोन **(Interstiial cell Stimulating Harmone-ICSH)** कहा जाता है। यहह वृषण की इन्टरस्टीशियल या लेडिंग कोशिकाओं **(Leydig cells)** द्वारा एन्ड्रोजन **(Androgen)** नामक हारमोन का स्त्रावण करता है। एन्ड्रोजन हारमोन पुरूष में सहायक प्रजनन अंगो तथा तथा लैगिक लक्षणों का नियमन करता है।

(5) लैक्टोट्रौफिक हारमोन **(Lactotrophic Harmone) -** यह हारमोन शिशु जन्म के पश्चात् स्तन में दूध की उत्पत्ति को बढ़ाता है। इसी हारमोन के सक्रिय होने से दूध पिलाने वाली माता **(Lactating Mother)** में दूध का निर्माण होता है, जिससे शिशु का पोषण होता है।

II. **मध्य पिण्ड** (Intermediate Lobe)

पियूष ग्रंथि के मध्य पिण्ड को भी एडिनोफाइसिस **(Adenophysis)** कहा जाता है। यह अत्यंत ही छोटा होता है, तथा पियूष ग्रंथि के अग्र एवं पश्च पिण्ड के बीच में अववस्थितहोता है। इस पिण्ड की कोशिकाएँ मेलानोफोर

स्टीम्यूलेटिंग हारमोन **(Melanophore Stimulating Harmone)** का स्राव करती है जो त्वचा में स्थित मेलानोफोर्स **(Melanophores)** के रंगकणों की गतिविधियों का नियमन करते हैं।

पियूष ग्रन्थि का सारांश **:** एक दृष्टि में

मध्य भाग	अग्र भाग
मेलानोफोर स्टीम्यूलेटिंग हारमोन त्वचा के रंग कणों का नियमन **(i)** वैसोप्रसिन **-** रक्त दाब एवं हृदय गति बढ़ाना **-** वृक्क में जल का पुन**:** अवशोषण का नियमन **(iii)** ऑक्सीटोसिन **-** स्तनों से दूध निकालना **-** गर्भाशय की माँसपेशियों का संकुचन	**(i)** वृद्धि हारमोन**-** शारीरिक वृद्धि एवं विकास **(ii)** थाएरॉइड स्टीम्यूलेटिंग हारमोन**-** थाएरॉक्सिल एवं ट्राइआयोडो थाएरॉक्सिन का स्रावण **(iii)** एड्रीनोकॉर्टिकोट्राफिक हारमोन कॉर्टेक्स भाग को उत्तेजित करना **(iv)** गोनैडोट्रॉफिक हारमोन**-** प्रजनन अंगो की वृद्धि एवं विकास एवं नियमन करना। **(v)** लैक्टोट्रॉफिक हारमोन **-** स्तन में दूध का निर्माण

III. पश्च पियूष ग्रंथि **(Posterior Pituitary Gland)** – पश्च पियूष ग्ंरथि को न्यूरोहाइपोफाइसिस **(Neuro-hypophysis)** भी कहते है। यह तंत्रिकीय ऊतक **(Nerve tissue)** का बना होता है। इसमें पिट्यूसाइट्स **(Pituicytes)** नामक कोशिकाएँ तथा न्यूरोसेक्रेटरी केन्द्र **(Neurosecretory centre)** के न्यूरॉन्स के अक्ष स्थित होते हैं। पश्च पिट्यूटरी ग्ंरथि में किसी भी प्रकार के हारमोन का स्त्रावण नहीं होता है बल्कि इसमें हाइपोथेलैक्स से आये हुए हारमोनों का संग्रह तथा मुक्ति **(Storage and release)** होता है। पश्च पियूष ग्रंथि में हाइपोफाइसिल पोर्टल सिस्टम **(Hypophyseal Portal System)** द्वारा हारमोन लाये जाते हैं। इसमें दो प्रकार के हारमोन पाये जाते है -

(i) पैसोप्रेसिन **(Vasopressin)** तथा

(ii) ऑक्सीटोसिन **(Oxytocin)**

(i) वैसोप्रेसिन **(Vasopressin)-** इसे एन्टीडाइयूरेटिक हारमोन **(Antidiuretic Harmone)** भी कहते है। ये हारमोन पोलीपेप्टाइड प्रकृति के होते हे। इसके मुख्य दो कार्य है -

(1) रक्त चाप को बढ़ाना, तथा

(2) सोडियम आयन का रिर्टेशन **(Retention)** करना जिससे पेशाब की मात्रा में कमी हो जाती है, तथा वृक्कों द्वारा जल के पुन: अवशोषण **(Water reabsorption)** करने की क्रिया का नियमन करना।

(ii) ऑक्सीटोसिन **(Oxytocin)-** यह हारमोन गर्भाशय **(Uterus)** की मांसपेशियों में संकुचन पैदा करता है तथा प्रसव **(Delivery)** के बाद रक्त-स्त्राव को कम करने में मदद करता है। यह स्तनों में स्थित दूध से बाहर निकालने की क्रिया को उत्तेजित करता है।

9.4 **थाएरॉइड ग्रंथि (Thyroid Gland)**

थाएरॉइड ग्रंथि गर्दन में स्वर यंत्र **(Larynx)** और श्वासनली **(Trachea)** की बीच में स्थित रहता है। यह द्वीपिण्डकीय होती है तथा दोनों पिण्ड आपस में एक पतले सेतु के द्वारा जुड़े रहते है। यह सेतु इस्थमस **(Isthmus)** कहलाते है। थाएरॉइड ग्रंथि का आकार तितलीनुमा होता है। यह ग्रंथि कई छोटी-छोटी पुटिकाओं **(Follicles)** को बनी होती है। इन पुटिकाओं के बीच में रक्त केशिकाओं **(Blood capillaries)** का जाल बिछा रहता है। पुटिकीय कोशिकाएँ **(Follicle cells)** एक लसदार एवं पारदर्शक द्रव्य का कोशिकाएँ पायी जाती है। ये **C-** कोशिकाएँ कैल्सीटोनिन **(calcitionin)** नामक हारमोन का स्त्रावण करती हैं।

चित्र : थाएरॉइड ग्रंथि

चित्र: थाएरॉइड ग्रंथि की अनुप्रस्थ काट

थाएरॉइड हारमोन्स, यों तो चार प्रकार के होते है परन्तु उनमें से केवल थारोक्सिन हारमोन **(Thyroxine)** ही रक्त केशिकाओं के माध्यम से रक्त परिसंचरण में डाला जाता है। यह हारमोन आयोडिन युक्त प्रोटीन होता है जो शारीरिक एवं मानसिक वृद्धि एवं विकास के लिए अत्यन्त की आवश्यक होता है।

थाइरोक्सिन हारमोन के कार्य **(Functions of Thyroxine Harmone)**

1. यह हृदय गति को तेज करता है।

2. मानसिक एवं शारीरिक विकास में वृद्धि करता है।

3. शरीर के ताप नियंत्रण में सहायता करना।

4. उपापचय क्रिया का नियमन करता है।

5. माताओं में दूध वृद्धि में सहायता करता है।

थाएरॉक्सिन हारमोन के अल्पस्त्राव के प्रभाव **(Hypoactivity of Thyroxine Harmone))-** वैसे तो आयोडिन हम भोजन से प्राप्त करते है, परन्तु अगर भोजन में ग्रंथि से निरंतर निकलता रहता है और थाएरॉइड ग्रंथि की कोशिकाओं की संख्या भी बढ़ती रहती है। कोशिकाओं की संख्या बढ़ने से यह ग्रंथि एक गाँठ का रूप धारण कर लेती है। यह गाँठ गलगण्ड या गोयाटूर **(goiter)** के नाम से जाना जाता हैं

थाएरॉक्सिन के अल्पस्त्राव से निम्न क्रियाएँ होती है **-**

1. बच्चों में क्रीटिनिज्म **(Cretinism)** नामक रोग हो जाता है। इस रोग के निम्न लक्षण है **-**

- **(i)** शारीरिक एवं मानसिक वृद्धि रूक जाती है।
- **(ii)** बच्चे चिड़चिड़े हो जाते हैं।
- **(iii)** बच्चों की लम्बाई काफी कम हो जाती है तथा कद छोटा रह जाता है।

चित्र **:** थाएरॉक्सिन के अल्पस्त्राव से बच्चों में क्रीटिनिज्म

2. वयस्कों में इस हारमोन की कमी से मीक्सीडीमा **(Myxoedema)** नामक रोग हो जाता है, जिसके निम्न लक्षण है-

(i) मांसपेशियाँ काफी कमजोर एवं दुर्बल हो जाती है।

(ii) ह्रदय गति मंद पड़ जाती हैं

(iii) सिर में दर्द रहता है।

(iv) बाल झड़ने लगते हैं। बालों की चमक खत्म हो जाती है तथा बाल कड़े हो जाते है।

(v) शरीर सुस्त हो जाता है तथा शीघ्र की थकान होने लगती है।

(vi) शरीर का तापक्रम कम हो जाता है तथा रोगी गर्मी में भी ठंड महसूस करता है।

चित्र*:* व्यस्को में थाएरॉक्सिन की कमी से मीक्सीडीमा, थाएरॉक्सिन की कमी से घेंघा रोग

3. गलगण्ड या घेंघा रोग **(Goitre)** हो जाता है यह गले के पास एक बड़ा-सा फूलीी हुई गाँठ सदृश रहता है।

चित्र : थाएरॉक्सिन की कमी से घेंघा रोग

थाएरॉक्सिन हारमोन के अतिस्त्राव के प्रभाव **(Hyperactivity of Thyroxine Harmone)-** थाएरॉक्सिन हारमोन के अत्यधिक स्त्रावण से एक्सोप्थैल्मिक गोयाट्र **(Exopthalmic goiter)** नामक रोग हो जाता है। जिसे ग्रेवस का रोग **(Grave's disease)** भी कहते है। इस रोग के निम्नलिखित लक्षण है।

(i) उपापचय क्रिया अधिक तीव्र हो जाती है।

(ii) ह्रदय गति तेज हो जाती है तथा त्वचा लाल हो जाती है।

(iii) शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है तथा शरीर से अधिकक पसीना निकलता है।

(iv) शरीर का भार बढ़ जाता है।

(v) रोगी बैचेन, चिन्तित तथा चिड़चिड़ा हो जाता है।

चित्र थाएरॉक्सिन के अतिस्त्राव में एक्सोप्थैल्मिक गॉयटर

(vi) आँखों की पुतलियों में वसा का जमाव हो जाता है जिससे आँख की गोली बड़ी-बड़ी होकर बाहर की ओर निकल दिखाई देती है। इस स्थिति को एक्सोओपथैलेमस **(Exophthalamus)** कहते है।

(vii) नाड़ी गति **(Pulse rate)** काफी तेज हो जाती है तथा रोगी हाँफता है।

(2) स्त्रियों में इसके अत्यधिक स्त्रावण से रजोधर्म अनियमित एवं पीड़ा के साथ होता है।

(3) थाएरॉइड ग्रंथि के **C-** कोशिकाओं से कैल्सीटोनिन नामक हारमोन का स्त्राव होता है। यह हारमोन अस्थियों तथा वृक्कों पर क्रिया करता है और रक्त में कैल्सियम के स्तर को कम करता है।

9.5 पैराथाएरॉइड ग्रथि (Parathyroid Gland)

पैराथाएरॉइड ग्रंथि थाएरॉइड ग्रंथि के पास ही छोटी-छोटी पिण्डकों के रूप में स्थित होती है। इनकी संख्या चार होती है। इनका आकारर मटर के दाने के जैसा होता है। ये ग्रंथियाँ ऊतकों की बनी होती है तथा इनकी कोशिकाएँ कुछ गोलाकारर होती हैं।

चित्र : पैराथएरॉइड ग्रंथि (पश्च से)

चित्र **:** पैराथएरॉयड ग्रंथि *(*पश्च से*)*

इस ग्रंथि में मुख्य रूप से दो प्रकार की कोशिकाएँ होती है जिनमें से एक प्रकार की कोशिकाएँ पैराथारमोन **(Parathormone)** का स्वावण करती है। पैराथारमोन पोलीपेप्टाइड श्रेणी **(Polypeptide harmone)** का हारमोन है। यह हारमोन कैल्सीटोनिन **(Calcitionin)** के साथ मिलकर क्रिया करता है। इस हारमोन के निम्न कार्य हैं-

(i) शरीर में कैल्सियम तथा फास्फोरस की मात्राओं का नियमम करना।

(ii) रक्त में कैल्सियम की मात्रा अधिक होने पर उसके अस्थियों में पहँुचाना।

(iii) रक्त में कैल्सियम की मात्रा कम होने पर अस्थि ऊतको से कैल्सियम लाकर रक्त को प्रदान करना।

(iv) अस्थियों एवं मांसपेशियों को मजबूत बनाना।

(v) रक्त में कैल्सियम आयन की सान्द्रता का नियमन करना।

पैराथारमोन के अल्प स्त्राव के प्रभाव **(Hypoactivity of Parathormone)** – शरीर में पैराथारमोन के कम स्त्रावण से टिटेनी **(Tetany)** नामक रोग हो जाता है। इसके अग्र लक्षण है **-**

(i) रक्त में कैल्सियम आयन की कमी हो जाना।

(ii) माँसपेशियों तथा तंत्रिका तंतुओं का अधिक उत्तेजित होना।

(iii) पूरे शरीर में एवं हाथ-पाँव में ऐंठन होना।

(iv) रोगी का बेचैन एवं चिड़चिड़ा होना।

कभी-कभी इस हारमोन की कमी होने से स्वरयंत्र की मांसपेशियाँ भी प्रभावित होती है जिससे मृत्यु की आशंका हो जाती है। आँखों में कैटेरेक्ट हो जाता है।

कभी-कभी इस हारमोन की कमी होने से स्वरयंत्र की मांसपेशियाँ भी प्रभावित होती है जिससे मृत्यु की आशंका हो जाती है। आँखों में कैटेरेक्ट हो जाता है।

पैराथारमोन के अतिस्त्राव के प्रभाव **(Hyperactivity of Parathormone)** – पैराथारमोन के अत्यधिक स्त्राव होने से ग्रंथि में गाँठें हो जाती है। ये गाँठे उन जगहों पर कैल्सियम आयन के अत्यधिक जमाव होने से होता है। रक्त में कैल्सियम का स्तर बढ़ जाता है। वृक्क में भी कैल्सियम जमा हो जाता हे। जिसके कारण वृक्क में पथरी **(Stone)** हो जाती है। फलत: वृक्क अपना कार्य करना बंद कर देता है और वृक्कावरोध **(Renal Failure)** हो जाता है। शरीर के कोमल ऊतको में भी कैल्सियम का जमाव हो जाता है जिससे ऊतक सख्त एवं कड़े हो जाते है और मांसपेशियाँ कमजोर हो जाती है।

9.6 एड्रीनल या सुपरारीनल गंर्थि (Adrenal or Suprarenal Gland)

एड्रीनल ग्रंथियाँ **(Adrenal glands)** उदर गुहा **(Abdominal cavity)** में स्थित वृक्कों के ऊपर एक-एक टोपी की तरह स्थित होती है इसलिए इसे सुपरारीनल ग्रंथि **(Suprarenal gland)** भी कहते हैं। इसकी लम्बाई **4** से.मी. तथा मोटाई **3** से.मी. होती है। इस गंर्थि में मुख्य दो भाग होते हैं -

चित्र : एड्रीनल ग्रंथि

चित्र **:** एड्रीनल ग्रंथि

1- एड्रीनल कॉर्टेक्स **(Adrenal Cortex)**

2- एड्रीनल मेड्यूला **(Adrenal Medulla)**

1. एड्रीनल कॉर्टेक्स **(Adrenal Cortex)-** इस भाग से तीन प्रकार के हारमोन का स्त्रावण होता है **-**

(i) जोना-ग्लोमेरूलोसा **(Zon-glomerulosa)**

(ii) जोना-फैसीकुलाटा **(Zona-fasciculata)**

(iv) जोना-रेटीकुलाटा **(Zone-reticulata)**

चित्र : एड्रीनल ग्रंथि की अनुप्रस्थ काट

चित्र

(i) जोना-ग्लोमेरूलोसा **(Zon-glomerulosa)-** यह स्तम्भी कोशिकाओं **(Columnar cells)** का बना होता है तथा समानान्तर क्रम में अवस्थित होता है। यह मिनरेली कौर्टिको स्टीरॉयड-एल्डौस्टीरोन **(Mineralo cortico steroid- aldosterone)** नामक हारमोन का स्राव करता है।

(ii) जोना-फैसिकुलाटा **(Zona-fasciculata)-** यह पोलीहेड्रल कोशिकाओं **(Polyhedral cells)** के बने होते है। इस स्तर द्वारा ग्लूका कौर्टिको स्टीरॉयड स्टीरॉयड का स्रावण होता है। ग्लूको कौर्टिको स्टीरॉयड **(Gluco cortico steroid)** में मुख्यत: कोर्टीसोन **(Cortisone)** कोर्टिकोस्टीरोन **(corticosterone), 11-**डी हाइड्रोकौर्टिकोस्टरॉयड्स **(11- dehydro or 17-Hydrocortiscosteroids)** हारमोन्स होते हैं। ग्लूकोर्टिकोस्टीरॉयड के मुख्य कार्य अग्र है -

(1) कार्बोहाडट्रेट का चयापचय करना **(Metabolism of Carbohydrate)-** यह कार्बोहाइड्रेट की चयापचय क्रिया का नियमन करता है। यह इन्सुलिन की तरह क्रिया करता है तथा यकृत में ग्लूकोनियमोजेनेसिस **(Gluconeogenesis)** को क्रिया में भाग लेता है। वह ग्लूकोज को ग्लाइकोजन में परिवर्तित कर देता है। यह रक्त

में उपस्थित ग्लूकोज की मात्रा का कम कर देता है। इसी तरह यह एन्टी इन्सुलिन की तरह क्रिया करता है और ग्लाइकोजन को ग्लूकोश में परिवर्तित कर देता है। इस प्रकारर यह कार्बोज को चयापचय क्रिया का नियमन करता है।

(2) यह हारमोन प्रोटीन तथा वसा की चयापचय क्रिया **(Metabolism)** का भी नियमन करता है।

(3) यह यकृत में ग्लाइकोजन के संग्रह तथा निर्माण में सहायता करता है।

(4) यह आधारीय चयापचय (बैसल मेटाबोलिक दर) **(Basal Metabolie Rate)** को उत्तेजित करता है।

(iii) जोना -रेटिकुलाटा **(Zona- reticulate)** – इनकी कोशिकाएँ अनियमित आकार की होती है तथा यह रेटीकुली-एण्डोथेलियल कोशिकाओं **(Reticulo-endothelial cells)** में रेखित होती है। यह स्तर लिंग-स्टीरॉयड्स **(Sex steroids)** का स्त्रावण करती है। इसमें में मुख्यत: प्रोजेस्ट्राल **(Progestron),** ऑस्ट्रोजेन **(Oestrogen)** तथा एन्ड्रोजन **(Androgens)** नामक हारमोन होते हैं। ये हारमोन लैंगिक क्रियाओं तथा प्रजनन अंगो **(Reproductive organs)** की क्रियाओं का नियमन करते हे। ये हारमोन शारीरिक विकास तथा वृद्धि पर अपना प्रभाव डालते हैं तथा यौन इच्छाओं का विकास करते हैं।

कार्टिकल हारमोन के अल्प स्त्राव के प्रभाव **(Hypoactivity of Cortical Harmone)** एड्रीनल ग्रंथि के कार्टेक्स भाग से जो स्त्राव निकलता है उसे कोर्टिन कहते है। इस हारमोन की कमी से ऐडीसन्स डिजीज **(Addison's disease)** नामक बिमारी हो जाती है। इस रोग के निम्न लक्षण है -

(i) पीड़ित व्यक्ति की मांसपेशियाँ कमजोर हो जाना।

(ii) रक्त दाब कम हो जाना

(iii) शरीर में सूजन आना।

(iv) रोगी को बेचैनी महसूस करना, चक्कर आना तथा कभी-कभी डायरिया हो जाना।

(v) नींद कम आना, थकान महसूस करना।

महिलाओं में इस हारमोन की कमी से रजोधर्म या मासिक स्त्राव **(Menstrual cycle)** अनियमित एवं गड़बड़ हो जाती है। बाल झड़ने लगते है तथा शीघ्र ही थकान होने लगती है, नींद भी कम आती है।

(2) एड्रीनल मेड्यूला **(Adrenal medulla) -** यह एड्रीनल ग्रंथि का भीतरी भाग होता है जिसका अधिकांशत: भाग कार्टेक्स से ढ़का रहता है। इसकी कोशिकाएँ बड़ी होती हैं तथा समूह में पायी जाती है। एड्रीनल मेड्यूला की कोशिकाएँ स्टीरॉयड श्रेणी के हारमोन्स मेड्यूला मुख्यत: दो प्रकार के हारमोन का स्त्रावण करता है।

(i) एड्रीनेलीन **(Adrenaline),** तथा

(ii) नारएड्रीनेलीन **(Noradrnaline)**

(1) एड्रीनेलीन तथा नारएड्रीनेलीन के कार्य **(Functions of Adrenaline ad Noradrenaline)-** एड्रीनेलीन हारमोन को एपीनेफ्रीन **(Epinephrine)** तथा नारएड्रीनेलीन हारमोन को नारएपीनेफ्रीन भी कहा जाता है। इन दोनो हारमोनों को सम्मिलित रूप में कैटेकॉलएमीन्स **(Catecholamines)** भी कहते है। ये हारमोन्स विभिन्न प्रघातों की प्रतिक्रियाओं का नियमन करते है तथा रक्त वाहिनियों में रक्त दाब का नियमन करते हैं। यह हारमोन विपत्ति के समय अपना आपत्ति काल में अधिक स्त्रावित होता है जिससे व्यक्ति को विचलित परिस्थितियों में भी अधिक साहस होता है तथा इन परिस्थितियों का सामना करने के लिए व्यक्ति तैयार हो जाता है। यही कारण है कि व्यक्ति साहसपूर्वक उन प्रतिकूल परिस्थितियाँ का सामना करता है। इस हारमोन का स्त्रावण **''भारी या लड़ो'' (Fight or Flight)** वाली अवस्था में अधिक होता है। यकृत अधिक मात्रा में रक्त में ग्लूकोज छोड़ता है जिससे रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है फलत: व्यक्ति अधिक शक्ति प्राप्त करता है। यी शक्ति व्यक्ति को लड़ने अथ्ज्ञवा भागने के लिए उत्तरदायी है तथा हम आपत्तिकाल में दौड़कर भागने में सक्षम होते है। यह हारमोन चयापचय दर को बढ़ा देता है। जिससे ह्रदय की धड़कन में वृद्धि हो जाती है। शरीर से अधिक पसीना निकलता है। आँखों की पुतलियाँ **(Pupils)** फैल जाती हे। ब्रोन्कीओल्स **(Bronchioles)** भी फैल जाती हैं जिससे श्वासनली में हवा का प्रवेश ज्यादा होता है और साँस तेज-तेज चलने लगती है।

9.7 **लैंगरहैन्स की द्वीपिकाएँ** (Islets of Langerhans)

लैंगरहैन्स की द्वीपिकाएँ एक समूह के रूप में अग्नाशय **(Pancrease)** में उपस्थित होती है। लैंगरहेन्स की कोशिकाएँ विशिष्ट प्रकार की होती है तथा रक्त कोशिकाओं **(Blood capillaries)** के जाल द्वारा घिरी होती है। ये केशिकाएँ ही एक प्रकार के रस का स्त्रावण करती है तो अंत:स्त्रावी होता है। यह अन्त: स्त्रावी रस सीधे ही रक्त में डाल दिया जाता है।

अग्नाशय के पिण्डको की कोशिकाएँ अग्नाशयी रस **(Pancreatic Juice)** का स्त्रावण करती हैं। यह रस अग्नाशय वाहिनियों **(Pancreatic duct)** द्वारा आहारनाल **(Alimentary canal)** की पक्वाशय **(Duodenum)** में डाल दिया जाता है। यह एक बहिस्त्रावी **(Exocrine)** ग्रंथि है। इस प्रकार अग्नाशय एक बहिस्त्रावी ग्रंथि के साथ-साथ अन्त:स्त्रावी **(Endoerine harmone)** हारमोन का भी स्त्रावण करता है।

लैंगरहेन्स की द्वीपिकाओं में मुख्य रूप से तीन प्रकार की कोशिकाएं पायी जाती है जो विभिन्न प्रकार के हारमोन का स्त्रावण करती हैं। ये कोशिकाएँ निम्नलिखित हैं -

(i) अल्फा-कोशिकाएँ **(α-Celles)-** ये कोशिकाएँ पोलीपेप्टाइड ग्लूकागोन **(Glucagon)** का स्त्रावण करती हैं। ये आकार में बड़ी होती हैं।

(ii) बीटा- कोशिकाएँ **(β-Cells) -** ये कोशिकाएँ इन्सुलिन **(Insulin)** नामक हारमोन का स्त्रावण करती हैं। ये आकार में छोटी होती है।

(iii) डेल्टा कोशिकाएँ **(∞-Cells)-** सोमैटोस्टैटिन **(somatostain)** का स्त्रावण करती है।

ग्लूकागोन तथा इन्सुलिन प्रोटीन प्रकृति के हारमोन हैं तथा कार्बोहाइड्रेट के उपापचय के लिये दोनों ही हारमोन अत्यन्त ही आवश्यक हैं। ये शरीर से कार्बोज की मात्रा का नियमन करते है। शरीर में रक्त में ग्लूकोज का स्तर **45** से **95mg/100** मि. मीटर होनी चाहिए परन्तु अगर ग्लूकोज की मात्रा इसस स्तर से बढ़ जाती है तो इसका संतुलन इन्सुलिन हारमोन ही करते है।

1. ग्लूकागौन **(Glucagon) -** ये पोलीपेप्टाइड **(Polypeptide)** हारमोन होते है तथा इसमें **29** अमीनों अम्ल पाये जाते हैं। यह रक्त में ग्लूकोज के स्तर को बढ़ा देता हैं यह क्रिया दो प्रकार से होती है **-**

(1) ग्लाइकोजन को ग्लूकोज में बदलकर**,** तथा

(2) अकार्बोज स्त्रोत**,** जैसे **-** वसा**,** प्रोटीन से ग्लूकोज को बनाकर। अकार्बोज स्त्रोत से जो ग्लूकोज का निर्माण होता है उसे ग्लूकोनियोजेनेसिस **(Gluconeogenesis)** की क्रिया कहते है। इस प्रकारर यह हारमोन ग्लूकोज का निर्माण करता है और रक्त में ग्लूकोज की मात्रा को बढ़ा देता है। यह हारमोन उस समय अधिक क्रिया करता है जब हम व्रत**,** उपवास करते हैं अथवा किन्हीं कारणों में हमें भोजन नहीं मिल पाता। उस समय यह हारमोन शरीर में उपस्थित प्रोटीन तथा वसा को तोड़कर ग्लूकोज बनाता है और रक्त में डाल देता है**,** जिससे हमें ऊर्जा प्राप्त होती है।

(2) इन्सुलिन **(Insulin)** – इन्सुलिन भी पोलीपेप्टाइड हारमोन है। इसमें **51** प्रकार के अमीनों अम्ल उपस्थित होते है। ये अमीनों अम्ल दो प्रकार की श्रृखलाओं द्वारा सजे होते है। पहली श्रृंखला में **21** अमीनो अम्ल होते हैं तथा दूसरी श्रृंखला में **30** अमीनों अम्ल।एक सामान्य स्वस्थ व्यक्ति प्रतिदिन **50** यूनिट इन्सुलिन का स्त्रावण करता है**,** जबकि अग्नाशय में इसकी संग्रह क्षमता **200** यूनिट तक होती है। इन्सुलिन अग्नाशय से हमेशा निकलता रहता है।

इन्सुलिन के कार्य **(Functions of Insulin)** –

(1) इन्सुलिन रक्त में ग्लूकोज की मात्रा का नियमन करता है।

(2) यह ग्लूकोज को ग्लाइकोजन के रूप में बदल देता है। ये ग्लाइकोजन यकृत एवं मांसपेशियों द्वारा संग्रह कर लिये जातेहै।

(3) वसा का संग्रह वसीय ऊतक **(Adipose tissue)** द्वारा कर लिया जाता है।

(4) यह ग्लूकोनियोजेनेसिस **(Gluconeogenesis)** की क्रिया को रोकता है और प्रोटीन तथा वसा का उपापचयकरता है।

(5) यह शरीर के होमियास्टेटिश **(Homeostatis)** की क्रिया को रोकता है और जैसे ही रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ता है यह तुरंत ही ग्लूकोज को ग्लाइकोजन में बदल देता है।

(6) इन्सुलिन प्रोटीन संश्लेषण को उत्तेजित करता है और मांसपेशियों की वृद्धि में सहायक होता है।

(7) यह वसामय ऊतक **(Adipose tissue)** में वसीय अम्ल , ग्लीसरॉल फास्फेट तथा ट्राइग्लिसेराइड का संश्लेषण करता है।

(8) यह शरीर में कीटोन बॉडी **(Hypoactivity of Insulin)-** इन्सुलिन के कम स्त्राव में मधुमेह या चीनिया पेशाब **(Diabetes mellitus)** नामक रोग हो जाता है। इस रोग में रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है तथा पेशाब में भी चीनी आने लगती है। रोगी का वजन धीरे-धीरे कम होने लगता है। रोगी अधिक भूख तथा प्यास का अनुभव करता है। पेशाब में कीटोन आने लगता है। वृक्क धीरे-धीरे अपना कार्य करना बंद कर देता है जिससे वृक्कावरोध **(Renal Failure)** हो जाता है।

इन्सुलिन के अतिस्त्राव के प्रभाव **(Hyperactivity of Insulin)** – इन्सुलिन के अत्यधिक स्त्रावण से रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य से काफी कम हो जाता है और रोगी को हाइपोग्लाइसेमिया **(Hypoglycemia)** हो जाता है। रोगी का शीघ्र ही थकान हो जाती है। रोगी काफी कमजोर हो जाता है। रोगी को बार-बार भूख व प्यास लग आती है तथा वह हमेशा ही भूखा अनुभव करता है। रोगी चिन्तित, बेचेन तथा चिड़चिड़ा हो जाता है। अत्यधिक रोग की अवस्था में रोगी बेहोश हो जाता है।

9.8 **यौन ग्रंथियाँ** (Gonads or Sex Glands)

ये ग्रंथियाँ अंडकोष **(Scrotal sacs)** में स्थित होती हैं तथा स्परमैटिक कोर्ट **(Spermatic Cord)** द्वारा शरीर से मिली हुई होती है। वृषण **(Testes)** में कुछ विशिष्ट कोशिकाएँ होती हैं जिसे लेडिग कोशिकाएँ **(Leyding cells)** कहते है। ये लेिड़ंग कोशिकाएँ ही नर हारमोन्स **(Male harmones)** का स्त्रावण करती हैं। नर हारमोन्स को एन्ड्रोजन्स कहा जाता है। इनमें दो प्रकार के हारमोन होते है -

(1) टेस्टोस्टीरोन **(Testosterone)** तथा

(2) एन्ड्रोस्टीरोन **(Androsterone)** ।

एन्ड्रोजन्स के कार्य **(Functions of androgens)** –

1. यह हारमोन शारीरिक एवं मानसिक विकास में सहायता करता है।

2. यौन अंगो की वृद्धि एवं मानसिक विकास में सहायता करता है।

3. श्रुकाणुजनन **(Spermatogenesis)** की क्रिया का नियमन करता है।

4. यह यौन सहायक ग्रंथियों तथा अतिरिक्त लैंगिक लक्षणों का नियंत्रण करता है।

5. पुरूष में लैगिक लक्षण, जैसे - आवाज भारी होना, दाढ़ी-मूँछ आना, जनन अंगो, एवं काँखों पर बालों का निकलना, छाती में बालों का उगना इत्यादि लैंगिक लक्षण हैं। ये हारमोन इन लैगिक लक्षणों का विकास करते है। एन्ड्रोजन के अत्यधिक स्त्रावण से पुरूष अधिक काम लोलुप हो जाता है तथा उसमें विषय **(Sex)** सम्बन्धी उत्साह अधिक होते है। इस हारमोन के कम स्त्राव होने से पुरूष के पुरूतत्व में कमी हो जाती है। उसकी आवाज भी महिलाओं की भाँति पतली हो जाती है। प्रजनन क्षमता कम हो जाती हैं। लैंगिक लक्षणों एवं जननांगो का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाता है।

स्त्री गोनैड (Femal Gonad)

ये ग्रंथियाँ स्त्रियों के गर्भाशय के दाहिनी एवं बाँयी ओर स्थित होती है। स्त्री के गोनैड को अंडाशय **(Ovary)** भी कहते है। अंडाशय के द्वारा ही हारमोन का स्त्राव होता है तथा ये हारमोन स्टीरॉयड प्रकृति के होते हे। स्त्री गोनैड **(femal gonad)** के द्वारा मुख्यत: दो प्रकार के हारमोन का स्त्रावण होता है।

(1) ओस्ट्रोजेन्स **(Oestrogens)**

(2) प्रोजेस्टीरोन्स या प्रोजेस्टेजन्स **(Progesterones or Progestagens)**

(1) ओस्ट्रोजेन्स **(Oestrogens)-** इस हारमोन का स्त्रावण अंडाशय **(Ovary)** द्वारा होता है। अंडाशय में फॉलिक्यूलर एपीथीलियम **(Follicular epithelium)** की कोशिकाएँ होती हैं। इन्ही कोशिकाओं के द्वारा ग्रैफियन पुटिका **(Graffian Follicle)** का निर्माण होता है। ये पुटिकाएँ ही ओस्ट्रोजेन्स हारमोन्स **(Oestrogens harmones)** का स्त्रावण करती है।

(2) प्रोजेस्टीरोन्स या प्रोजेस्टेजन्स **(Progesterones or Progestagens)-** जब ग्रैफियन पुटिका से अण्ड क्षरण या अण्डोत्सर्ग **(Ovulation)** होता है तो परिपक्व अंड **(Mature ovum)** ग्रैफियन पुटिका को तोड़कर बाहर आ जाता है, तथा पुटिका का स्थान रिक्त हो जाता है और वहाँ पर पीले रंग की कोशिकाओं का निर्माण हो जाता है जिसे पीत पिण्ड या कॉर्पस ल्यूटियम कहते है। कॉर्पस ल्यूटियम की कोशिकाएँ की प्रोजेस्टीरोन **(Progesterone)** नामक हारमोन का स्त्रावण करती हैं।

ओस्ट्रोजेन्स तथा प्रोजेस्टीरोन हारमोन के कार्य **(Functions of Oestrogens and Progesterone)- 1.** यह हारमोन स्त्री-प्रजनन अंगो की वृद्धि एवं विकास करता है।

2. यह स्तनों का विकास करता है तथा दूध **(Lactation)** की ग्रंथियों की वृद्धि करता है।

3. यह हारमोन रजोधर्म **(Menstrual cycle)** के स्त्राव का नियमन करता है।

4. प्रोजेस्टीरोन हारमोन निषेचित अंडे **(Fertilised ovum)** को अपरा **(Placenia)** से जोड़ने का कार्य करते है।

5. यह गर्भावस्था में होने वाले विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों का नियमन करता है।

6. यह स्त्रियों में यौन सम्बन्धी **(Sex Desire)** को बढ़ाता है तथा उनमें नारी सुलभ लक्षणों का विकास करता है।

7. यह स्त्री के सहायक प्रजनन अंगो का विकास भी करता है, जैसे जननांगो एवं काँखों पर बालों का उगना, स्तन का विकास करना इत्यादि।

ओस्ट्रोजेन्स तथा प्रोजेस्ट्रीरोन के अल्पस्त्राव के प्रभाव (Hypoactivity of oestrogens and Progesterone) – इस हारमोन के कम स्त्रावण में स्त्रियों में स्त्रीत्व का गुण नहीं आ पाता है। प्रजनन अंगो का विकास रूक जाता है। स्तन **(Breast)** छोटे तथा अविकसित रह जाते हैं। यौन सम्बन्धी उत्साह **(Sex desire)** कम हो जाताब है। स्त्रियों की प्रजनन क्षमता काफी कम हो जाती है।

ओस्ट्रोजेन्स तथा प्रोजेस्टीरोन के अतिस्त्राव के प्रभाव **(Hyperactivity of Oestrogens and Progesterone harmone)** – इस हारमोन के अतिस्त्राव से स्तन काफी बड़े हो जाते हैं। स्त्रियों अधिक कामुक हो जाती है तथा विषय सम्बन्धी उत्साह **(Sex desire)** काफी बढ़ जाता है। रजोधर्म या मासिक चक्र **(Menses cycle)** काफी अनियमित एवं गड़बड़ हो जाता है। मासिक स्त्राव भी अधिक निकलता है।

9.9 **थाइमस ग्रथि**

यह ग्रंथि श्वासनली के पास थाएरॉइड ग्रंथि के नीचे अवस्थित होती है। यह ग्रंथि अंशत : अंत: स्त्रावी कोशिकओं की बनी होती है। लसीका ऊतक भी इस ग्रंथि को बनाने में पूरा सहयोग देते हैं। इस ग्रथि की पहचान हैसल की कार्पसल्स के द्वारा होती है।

इस ग्रंथि के मुख्यत: दो भाग होते हैं -

1 कार्टेक्स तथा

2 मेड्यूला

थाइमस ग्रंथि के कार्य

1 लिम्फोसाइट्स

2 यौन ग्रथियों की वृद्धि एवं विकास करना

3 अस्थियों में लवणों को जमा करना

थाइमस ग्रंथि 8-14 वर्ष तक ही बढ़ती है। जैसे जैसे उम्र बढ़ती है तथा व्यक्ति जवान होता है यह ग्रंथि स्वत: छोटी होती जाती है तथा अंत में लुप्त् हो जाती है।

7.10 अन्त: स्त्रावी ग्रन्थियॉ (संक्षेप में)

अन्त: स्त्रावी ग्रन्थियॉ के नाम	स्त्रावित हारमोन	स्थिति (Location)	मुख्य कार्य	अतिस्त्राव के प्रभाव	अल्प स्त्राव के प्रभाव
1- पियूश ग्र िन्थं(	अग्र भाग से- 1- वृद्धि या सोमेटोट्रोफिक होरमोन (Growth of Sometotrofi c horemone GH-S.M.H.) 2- थाएराइड स्टीमुलेंटिग हारमोन(T.S.H.) 3- एड्रीनोकोट्रोकोफिक हारमोन (A.C.T.H.) 4- गोनेड्रोटोफिक हारमोन	क् मस्तिश्क के हाइपोथेलेमस भाग से अग्र भाग से एंव पष्च के मध्य से।	1- "ारीरिक विकास एवं वृद्धि करना ● थाएरॉकिसन तथा ट्राइआयोडी थाइराक्सिन का स्त्रावण एड्रीनल ग्रन्थि के कार्टिक्स भाग को उतेजित करना। ● स्त्रियो में अण्डजनन	कजगैटिज्म तथा एक्रेमिगैली	● बौनापन (Dwarfism) तथा सीमोन्ड का रंग। ● मानसिक विकास रूक जाना। ● वयस्कों में मीक्सी होना। ● सम्पूर्ण शरीर में टिटैनी का होना। ● स्वर यंत्र कि मांसपेषियो का षिथिल होना। ● एडीसन्स का रोग होना। ● मंसपेिष्यो का कमजोर होना। ● रक्त चाप कम हो जाना। ●

	5- लेक्ट्रोटोफिक हारमोन मध्य भाग से - पष्च भाग से- 1- वैसोप्रोसिन (Vasopressin) 2- आक्साटोसिन (Oxytocin)		का नियमन करना। ● पुरूशो में प्रजनन अंगो तथा लैगिक लक्षणो का नियमन करना। स्तनों में दूध का निर्माण करना। ● त्वचा के रंग कणों का नियमन। ● व्ृज्ञकक द्वारा जल के पुनः अवषोशण		

			की क्रिया का नियमन करना। ● रक्त दाब का एवं ह्दय गति को बढाना।		
2- थाएराएड ग्रन्थि	थाएरॉक्सिन	लैरिक्स तथा "वासनली के बीच	1- स्तनो से दुध निकालना एवं गर्भाष्य को मॉसपेषियों का सकुंचन करना। 2- डपापचय क्रिया का निय मन करना। 3- "ारीर	● मॉसपेषियो का कमजोर। ● एक्सोआपथेल्मिक गॉयटर करना। ● ग्रन्थियो में टयूमर होना। ● वृक्क अवरोध होना। ● कोमल उताके में कैल्सियम का जमाव। ● कूषिंग	● बच्चौ मे क्रिटिकजस्म का होना। ●

			तथा ताप का नियंत्रण करना। 4- रक्त में कैलिसयम तथा फास्फोरस की मात्राओं का नियमन करना। 5- अस्थियों तथा मासपेषियो को मजबूत करना। 6- प्रोटीन वसा तथा कार्बोज का चयापष्च	सिन्ड्रोम होना। ● अस्थियो से कैलिसयम का ख्ुारचकर बाहर निकालना।	

			करना। 7- जल एंव लवण का सन्तुलन करना।		
मेडयूला भाग से	एड्रीनेलीन तथा नारएड्रीनेलीन	उदर गुहा में वृक्कों के ऊपर	1 हृदय गति एवं रक्त दाब का नियमन 2 प्रघातों की प्रतिक्रिया का नियमत	1 रक्त चाप का बढाना 2 रक्त में ग्लूकोज तथा ग्लाइको सूरिया का बढ़ जाना	
लैंहरहैन्स की द्वीपिकाएँ (Isles of Largerhans)	1 ग्लूकागोन 2 इन्सूलिन	अग्नाशय	1 ग्लाकोजन का ग्लूकोज में परिवर्तन क्रिया का नियमन करना। 2 अकार्बोज पदार्थ से ऊर्जा प्रदान करना, जैसे वसा, प्रोटीन इत्यादि। 1 ग्लूकोज का ग्लाइकोजन में परिवर्तन	1 व्यक्ति हमेशा भूखा अनुभव करना। 2 हाइपर ग्लाइसोमिया	1 पेशाब मे चीनी आना जिसे मधुमेह रोग कहते है।

			क्रिया का नियमन। 2 प्रोटीन तथा वसा का अपचय करना।	होना।	2 रोगी का कमजोर होना।
यौन ग्रंथियां (Sex Gonds) पुरूष गोनैड (Made Gonds) स्त्री गोनैड (Female Gonds)	अण्डाकोष (Scrotal Sac) 1 ओस्ट्रोजेन्स तथा 2 प्रोजेस्ट्रान	एन्ड्रोजन गर्भाशय के दोनों ओर (एक बांयी व दूसरी दांयी ओर)	1 यौन ग्रंथियों का विकास करना 2 शुक्राणु जनन का नियमन करना 1 प्रजनन अंगों की वृद्धि एवं विकास करना 2 निषेचित अण्डे को अपरा से जोडना	1 विषय संबंधी उत्साह बढ़ जाना 2 स्तन काफी बडा होना। 3 रजोधर्म अनियमित होना।	1 पुरूषाय कम होना। 2 प्रजनन क्षमता घट जाना 1 स्त्री सुलभ लक्षणों का विकास नहीं होना। 2 स्तन छोटे एवं अविसित होना। 3 प्रजनन क्षमता कम होना।
7 थाइमस ग्रंथि (Thymus Gland) कॉर्टेक्स भाग से	संस नली के पास थाएरॉयड ग्रंथि के नीचे		1 लिम्फा साइट्स का निर्माण करना। 2 यौन ग्रंथियों की वृद्धि करना एवं विकास करना। 3 अस्थियों के लक्षणों		

			को जमा करके रखना।		

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1 अन्त:स्त्रावी से आप क्या समझते है? शरीर में इसकी उपयोगिता का उल्लेख करें।

2 अन्त:स्त्रावी ग्रंथियॉ कितने प्रकार की है? प्रत्येक का नाम लिखें तथा संक्षेप में वर्णन करें।

3 नलिका विहीन ग्रंथियों से आप क्या समझते हैं? पियूष ग्रंथि का विस्तृत वर्णन करें।

4 शरीर में पियूष ग्रंथि के क्या कार्य हैशरीर में इसके अल्पस्त्राव तथा अतिस्त्राव के क्या प्रभाव पड़ते है? उल्लेख करें।

5 एड्रीनल ग्रंथि केक्या कार्य है? इसकी उपस्थिति का स्थान बताते हुए इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।

6 पैराथाएराइड ग्रथि का सचित्र वर्णन करें। शरीर में इसके अल्पस्त्राव तथा अतिस्त्राव के क्या प्रभाव पड़ते है? लिखें

7 लिंग ग्रथियां किसे कहते हैं? शरीर में इनकी स्थिति एवं कार्यों का वर्णन करें।

8 थाएरॉइड ग्रंथि किसेकहते है। शरीर मेंइनकीस्थिति एवं कार्यों का सचित्र वर्णन करें।

9 संक्षिप्त टिप्पणियां लिखें -

1 पियूष ग्रंथि

2 थाररॉइड ग्रंथि

3 प्लीहा

4 थाइमस

5 लैंगरहैन्स की द्वीपिकाएं

6 एड्रीनल ग्रंथि

7 अण्डाशय

8 वृषण

9.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. अर्थर सी. गुयटन एण्ड जान एडवर्ड हाल (2006), ट ेक्सटब ुक आॅफ मेडिकल फीजियोलॅजी, फ्लोरिडा, अमेरिका, एल्जेवियर स्टैंडर्डस

2. सुरिन्दर एच सिंह और कृष्ण गर्ग (2008), एनाटाॅमी, एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर नर्सेज और एलाॅइड हेल्थ सर्विसेज, नई दिल्ली, सीबीएस पब्लिशर्स

3. शिवरामकृष्णन एस. (2006), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर फीजिकल एजुकेशन, नई दिल्ली, फ्रेंड्स पब्लिशर्स

4. अन्ने वाॅ और एल्सन ग्राउंट (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी इन हेल्थ एण्ड वेलनेस, इलाहाबाद, चर्चिल लिविंगस्टोन

5. क्लार्क राॅबर्ट के. (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी - अंदरस्टैंडिंग द ह्यूमन बाॅडी, सडरी, यूर्नाइ टेड स्टेट्स, जाॅनस एण्ड बारटियट

6. श्री कृष्ण (1985), नोट्स आॅन स्ट्रक्चर एण्ड फंक्शन्स आॅफ ह्यूमन बाॅडी एंड इफेक्ट्स आॅफ योगिक प्रेक्टिसेज इन इट, मुंबईर्, आइ .सी.वाई.एच सी. कैवल्यधाम

7. दत्ता रे (2001), योगिक एक्सरसाईजेज, नई दिल्लीः जेपी ब्रदर्स

8. शीर्ले टेलेस (2006), ए गिलम्पस आॅफ द ह्यूमन, बंगलोरः स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन

9. लेस्ली केमिनोफ (2007), योग एनाटामी, कैम्पेनः ह्यूमन कांइ नेटिक्स

10. पीटर आई विलियम्स और रोगर वास्वी (1988), ग्रेज एनाटॅमी, एडीनबर्गः चर्चिल लिविंगस्टोन

11. एवीलीन ब् पीएर्स (1997), एनाटामी एंड फीजियोलाजी फार नर्सेज, नई दिल्लीःजेपी ब्रदर्स

12. गेरे एम.एम. (2003), एनाटॅमी एण्ड फीजियोलॅजी फॅर योगिक पै्रक्टिसेज, लुनावालाः काम्हान प्रकाशन

13. शरीर- रचना विज्ञान एवं शरीर-क्रिया विज्ञान (2003), श्री नन्दन बंसल, जेपी ब्रदर्सः नई दिल्ली

इकाई 10 प्रजनन तंत्र

10.0 उद्धेश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 परिचय

10.3 पुरूष प्रजनन प्रणाली

10.4 महिला प्रजनन प्रणाली

10.5 शब्दावली

10.6 निबंधात्मक प्रश्न

10.7 संदर्भ ग्रंथ

10.0 उद्धेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- जीवधारी द्वारा जनन क्रिया से अपने जैसे जीवों को उत्पन्न किए जाने की प्रक्रिया को समझेंगे।
- पुरूष प्रजनन तंत्र का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- पुरूष प्रजनन तंत्र की कार्य प्रणाली को समझ पायेंगे।
- स्त्री प्रजनन तंत्र का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- स्त्री प्रजनन तंत्र की कार्य प्रणाली को समझ पायेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन के बाद आप लैंगिक जनन की पूरी प्रक्रिया को समझ पायेंगे।

10.1 प्रस्तावना

प्रजनन प्रणाली का मुख्य कार्य संतान उत्पत्ति के द्वारा प्रजातियें के अस्तित्व को बरकरार रखना है। हालाकि शरीर में अन्य प्रणालियाँ जैसे एंडाक्राइन और यूरीनरी प्रणालियाँ व्यक्ति के अस्तित्व के लिए जरूरी समस्थिति का संतुलित रखने के लिए लगातार कार्य करती

है। एक व्यक्ति संतान की उत्पत्ति के बिना एक लम्बा, स्वस्थ और सुखी जीवन जी सकता है लेकिन अगर प्रजातिया के जीवित रखना है तो कम से कम कुछ लोगो को संतान की उत्पत्ति करनी होगी।

10.2 परिचय

संतानों की उत्पत्ति के संदर्भ में प्रजनन प्रणाली के चार कार्य हैः

- अंडा और शुक्राणु कोशिकाओंका उत्पादन करने के लिए
- इन कोशिकाओं के पोषण और परिवहन के लिए
- विकासशील संतान के भरण पोषण के लिए
- हार्मोन का उत्पादन करने के लिए

इन कार्यों को प्राथमिक और माध्यमिक या सहायक प्रजनन अंगों के बीच बाँटा जाता है। प्राथमिक प्रजनन अंग या जननग्रन्थि अंडाशय और वीर्यकोष से मिलकर बनता है। ये अंग अंडा और शुक्राणु कोशिकाओं और हार्मोन के उत्पादन के लिए जिम्मेदार है। ये हार्मोन

प्रजनन प्रणाली की परिपक्वता और यौन विशेषताओं के विकास के लिए कार्य करते हैं और प्रजनन प्रणाली के सामान्य शरीर क्रिया विज्ञान को नियंत्रित करने में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। प्रजनन प्रणाली में अन्य सभी अंगों, नलिकाओं और ग्रन्थियों को माध्यमिक या सहायक प्रजनन अंगों के रूप 3में जाना जाता है। ये संरचनाएँ युग्मक के भरण पोषण और परिवहन को सुनिश्चित करने के साथ साथ विकासशील संतान का पालन पोषण करती है।पुरूष और महिला प्रजनन प्रणाली का अलग अलग शरीर रचना और क्रिया विज्ञान हाेता है ।

10.3 पुरूष प्रजनन प्रणाली

इस प्रणाली में शामिल होता हैः

1. वीर्य कोष

2. डक्ट नली प्रणाली

3. सहायक ग्रन्थियाँ

4. लिंग

वीर्यकोष

वीर्यकोष गुर्दे के आसपास उदर गुहा में ऊपर अपने विकास की शुरूआत करते हैं। जन्म से दो महीने पहले या जन्म के तुरंत बाद वे अंडकोश की थैली में जंघास नली के माध्यम से नीचे आते हैं। हालांकि उदर गुहा के बाहर वीर्यकोष का यह स्थान उसे खतरे के लिए संभावित बना सकता है लेकिन यह सामान्य शरीर के तापमान से 3 डिग्री सेल्सियस कम तापमान प्रदान कर सकता है। यह कम तापमान उपयोगी स्पर्म के उत्पादन के लिए आवश्यक होता है। यह अनुलंब झिल्ली या उपचर्म ऊतक का केन्द्र में विभाजन अंडकोश की थैली को दो भागों में विभाजित करता है जिसमें प्रत्येक में एक वीर्यकोष होता है।चिकनी मांसपेशी फाइबर जिसे मांसपेशी कहा जाता है और यह

उपचर्म ऊतक को सिकोड़ते हुए अंडकोश की थैली को इसका झुर्रियों वाला रूप देते हैं। जब ये रेशे शिथिल होते हैं तो अंडकोश की थैली चिकनी होती है। एक और मांसपेशी मांसपेशी जो कंकाल मांसपेशी फाइबर की होती है और यह अंडकोश की थैली और वीर्यकोष की स्थिति को नियंत्रित करता है। जब यह ठंडा होता है या एक व्यक्ति यौन क्रिया के लिए जागृत होता है तो यह मांसपेशी वीर्यकोष को शरीर से गर्मी प्राप्त करने के लिए सिकोड़ता है।

संरचना

प्रत्येक वीर्यकोष लगभग 5 लंबी और 3 व्यास में एक अंडाकार संरचना होती है। प्रत्येक वीर्यकोष के चारों ओर एक सख्त, सफेद तंतुमय संयोजी ऊतक कैप्सूल होता है और यह सेप्टा का निर्माण करते हुए अंदर की ओर फैला हुआ होता है जो अंग को उपसमूहों में विभाजित करता है। प्रत्येक वीर्यकोष में लगभग 250 उपसमूह होते हैं। प्रत्येक उपसमूह में 1 से 4 अत्यधिक वीर्योत्पादक नलिकाएं होती है जो एक सीधी नलिका के रूप में एक ही बिंदु की ओर जाती है

जो वीर्यकोष के जाल की तरफ होता है। छोटी बाहर जाने वाली नलिकाएं वीर्यकोष से बाहर निकलती है। मध्यवर्ती कोशिकाएं की कोशिकाएंद्ध जो पुरूष सेक्स हार्मोन का उत्पादन करते हैं ये एक स्वइनसम में वीर्योत्पादक नलिकाओं के बीच स्थित होती है।

शुक्राणुजनन

शुक्राणु वीर्योत्पादक नलिकाआं द्वारा वीर्यकोष में शुक्राणु जनन द्वारा उत्पादित किए जाते हैं। एक वीर्याेत्पादक नली का अनुप्रस्थ खंड यह दिखाता है कि यह विकास के विभिन्न चरणा में कोशिकाओ के साथ पैक किया जाता है। इन कोशिकाओं के साथ फैले हुए वहाँ बड़ी कोशिकाएँ हा ेती हैं जिनका विस्तार छोटी नली की परिधि से लुमेन तक होता है। ये बड़ी कोशिकाओं सहायता प्रदान करन े वाली या ससटेंटाकुलर कोशिकाओं होती हैं जो अन्य कोशिकाओं की सहायता और पोषण करती है। भ्रूण विकास के शुरूआत में प्रारंभिक जनन कोशिकाएं वीर्यकोष में प्रवेश करती है और स्पर्माटोगोनिया में अंतर करती है। अपरिपक्व कोशिकाएं यौवन तक निष्क्रिय रहती है। स्पर्माटोगोनिया गुणसूत्रो के दो समूहों वाली कोशिकाएं होती हैं जो प्रत्येक46 क्रोमोजोमस(23 जोड़े) के साथ होते हैं और वीर्योत्पादक नलिका की परिधि के आसपास स्थित होती है। यौवन में हार्मोन इन कोशिकाआं को माइटोसिस द्वारा विभाजन शुरू किए जाने के लिए उत्तेजित करते हैं। माइटोसिस द्वारा उत्पादित कुछ डाउटर कोशिकाएं स्पर्माटोगोनिया के रूप में परिधि में रहती है। अन्य कोशिकाओं को ल्यूमेन की ओर धकेला जाता है। ये कुछ परिवर्त न से गुजरते हैं और प्राथमिक स्पर्माटोसाइट हो जाते हैं क्योंकि उन्हें माइटोसिस प्राथमिक स्पर्माटोसाइटस जैसे स्पर्माटोगोनिया द्वारा उत्पादित किया जाता है इसलिए ये गुणसूत्रो के दो समूहों वाले होते हुए 46 क्रोमोजोम के साथ होते हैं।प्रत्येक प्राथमिक स्पर्माटासाइट 23क्रोमोजोम के साथ वाले दो द्वितीयक स्पर्माटोसाईट को उत्पादित करने के लिए प्रथम मायोटिक प्रभाग, मायोसिस के माध्यम से गुजरते हैं। इस विभाजन से बस थोड़ा पहले जेनेटिक सामग्री को इतना दोहराया जाता है जिससे प्रत्येक क्रोमोजोम दो स्टैंड वाला हो और इन्हें क्रेमाटिडस कहा जाता है जो गुणसूत्र बिंदु से जुड़े हुए होते हैं। मियाेसिस के दोरान एक गुणसूत्र दो

क्रोमाटिडस से मिलकर बना होता है जो प्रत्येक माध्यमिक स्पर्माटोसाइट में चला जाता है।दूसरे मायोटिक विभाजन मायोसिस प्प् में प्रत्येक माध्यमिक स्पर्माटोसाइट दो स्पर्माटिडस को उत्पादित करने के लिए विभाजित हो जाते हैं। इस विभाजन में जेनेटिक सामग्री का कोई दोहराव नहीं होता है लेकिन गुणसूत्र बिंदुइस प्रकार विभाजित होता है जिससे प्रत्येक कोशिका में एकल स्ट्रांडेड क्रोमाटिड चला जाता है। दो मायोटिक विभाजनों के एक परिणाम के रूप में प्रत्येक प्राथमिक स्पर्माटोसाइट चार स्पर्माटिड्स पैदा करता है। शुक्राणुजनन के दौरान वहाँ दो सेलुलर विभाजन होते हैं लेकिन क्छ। का केवल एक दोहराव ऐसा होता है जिससे प्रत्येक स्पर्माटिड में 23 क्रोमोजोम होते हैं जो मूल प्राथमिक स्पर्माटोसाइट में प्रत्येक जोड़ी में से एक होता है। प्रत्येक लगातार चरण में स्पर्माटोजेनेसिस को नलिका के केन्द्र में धकेला जाता है जिससे अधिकांश अपरिपक्व कोशिकाएं परिधि में रह सके और अधिकांश विभेदित कोशिकाएं केन्द्र के पास हों।शुक्राणुजनन और महिला में अंडाणु का विकास माइटोसिस से भिन्न होता है क्योंकि परिणामी कोशिकाओं में मूल कोशिका की तुलना में क्रोमोजोम की केवल आधी स ंख्या होती है। जब स्पर्म सेल न्यूक्लियस अंडा सेल न्यूक्लियस से मिलता है तो क्रोमोजोम की पूर्ण संख्या प्राप्त होती है। यदि स्पर्म और अंडाणु कोशिकाओं का उत्पादन माइटोसिस द्वारा किया जाता है तो प्रत्येक आन े वाली पीढ़ी के पास पहले वाली पीढ़ी की तुलना में क्रोमोजोम की दुगुनी संख्या होगी।शुक्राणु के विकास के अंतिम चरण को कहा जाता है। इस प्रक्रिया में शुक्राणुजनन से स्पर्माटिडस का निर्माण होता है जो परिपक्व शुक्राणु या शुक्राणु बन जाते हैं। परिपक्व शुक्राणु कोश्िका में एक सिर, मध्यखंड, और पूंछ होता है। सिर को नाभिकीय क्षेत्र भी कहा जाता है जिसमें नाभिकीय झिल्ली से घिरा हुआ 23 क्रोमोसोम होता है। सिर के नोंक को एक अग्रपिण्डक द्वारा कवर किया जाता है जिसमें ऐसे एंजाइम होते हैं जो शुक्राणु को मादा युग्मक में घुसने मेंमदद करता है। मध्यखंड या चयापचय क्षेत्र में माइटोकॅण्ड्रिया होता है जो प्रदान करता है। पूंछ या लोको मोटर क्षेत्र गति के लिए आम कशाभिका का उपयोग करता है।शुक्राणु को वीर्योत्पादक छोटी नली के लुमेन में उत्सर्जित किया जाता है और ये वीर्यकोष को छोड़ देते हैं। उसके बाद वे उपकोष में प्रवेश करते हैं जहाँ वे अपने अंतिम परिपक्वता से गुजरते हैं और एक मादा युग्मक निषेचन में सक्षम हो जाते हैं।शुक्राणु उत्पादन यौवन में शुरू होता है और एक पुरूष के जीवन भर जारी रहता है। पूरी प्रक्रिया एक प्राथमिक स्पर्माटोसाइट के साथ शुरू होता है और लगभग 74 दिनों का समय लेता है। स्खलन

के बाद शुक्राणु महिला प्रजननतंत्र में 48 घंटे के लिए रह सकते हैं।

वाहिनी प्रणाली वीर्यकोष छोड़ने के बाद शुक्राणु शरीर के बाहर तक पहुँचने के लिए नलिकाओं की एक श्रृंखला शुक्रसेचक वाहिनी और मूत्रमार्गद्ध के माध्यम से गुजरती है।शुक्राणु वीर्यकोष को अपवाही नलिकाआं की एक श्रृंखला के माध्यम से छोड़ते हैं जो में प्रवेश करती है। प्रत्येक अधिवृषण एक लंबा ट्यूब लगभग 6 मीटर का होता है जो कसकर कुण्डलित होते हुए कोमा आकार के अंग का निर्माण करते हुए वीर्यकोष के आसपास मार्जिन के साथ स्थित होते हैं। जब शुक्राणु वीर्यकोष को छोड़ते हैं वे अपरिपक्व और अंडाणु उत्पादित करने के काबिल नहीं होते हैं। वे अपनी परिपक्वता प्रक्रिया को पूर्ण करते हैं और के माध्यम से गुजरते हुए उत्पादन के लिए सक्षम हो जाते हैं। परिपक्व शुक्राणु निचले हिस्से या अधिवृषण की पूंछ में संग्रहीत होते हैं।एक अस्थितंतु पेशी ट यूब है जो अधिवृषण के साथ निरंतर होता है। यह अधिवृषण की पूंछ में शुरू होता है औरउसके बाद वृषण के पीछे मार्जिन

के साथ तेजी से ऊपर की ओर मुड ता है और एबडोमिनोपेल्विक केविटी में प्रवेश करता है और लैटरल पेल्विक दीवार के साथ गुजरता है। यह मूत्राशय के मूत्रवाहिनी और पिछले भाग को पार करता है और उसके बाद प्रा ेस्टेट ग्रन्थि की ओर मूत्रशय के पीछे की दीवार के साथ उतरता है। प्रा ेस्टेट ग्रन्थि तक पहुँचने से ठीक पहले प्रत्येक का निर्माण करने के लिए फैल जाता है। शुक्राणु अधिवृषण के पास के समीपस्थ हिस्से में जमा होता है और क्रमिक वृत्तों में सिकुड़ने वाली गतिविधिट्यूब के माध्यम से शुक्राणु की गति में वृद्धि करते हैं

अभ्यास प्रश्न 1:

रिक्त स्थानों की पूर्ति करे।

1. प्रत्येक वीर्यकोष में लगभग ..... उपसमूह होते हैं।

2. शुक्राणु के विकास के अंतिम चरण को कहा जाता है।

शुक्रसेचक वाहिनी

प्रत्येक पर एक छोटी शुक्रसेचक वाहिनी का निर्माण करने के लिए बगल वाले सेमीनल वेसीकल सहायक ग्रन्थियों में से एक से नलिका को जोड़ती है। प्रत्येक शुक्रसेचक वाहिनी प्रोस्टेट ग्रन्थि से होकर गुजरती है और यूरेथ्रा में खाली होती है।

मूत्रमार्ग- मूत्रमार्ग मूत्रशय से लेकर लिंग की नोंक तक बाहरी मूत्रमार्ग छिद्र तक फैला हुआ होता है। यह प्रजनन प्रणाली से शुक्राणु और तरल पदार्थ के लिए मूत्र तंत्र से मूत्र के बाहर निकलने के लिए एक मार्ग है। जब प्रजनन के लिए उपयोगी तरल पदार्थ यूरेथ्रा के माध्यम से गुजरते हैं तो स्फिंक्टर्स कसकर सिकोड़ते हुए मूत्र

को मूत्रमार्ग में जाने से रोकते हैं।

पुरूष मूत्रमार्ग को तीन क्षेत्रों में बाँटा जाता हैः

प्रोस्टेटिक मूत्रमार्ग समीपस्थ भाग है जो प्रोस्टेट ग्रंथि के माध्यम से गुजरता है। यह शुक्रसेचक वाहिनी और प्रोस्टेट ग्रन्थियां से कई नलिकाआ को प्राप्त करता है जो सेमीनल वेसीकलस से शुक्राणु और स्राव को शामिल करता है।अगला भाग झिल्लीदार मूत्रमार्ग एक छोटा क्षेत्र होता है जो पेल्विक क्षेत्र से होकर गुजरता है।जननांग मूत्रमार्ग का सबसे लंबा भाग स्पंजी मूत्रमार्ग या कंदरायुक्त मूत्रमार्ग भी कहा जाता है जो लिंग की लंबाई तक फैला हुआ होता है और बाहरी मूत्रमार्ग छिद्र के बाहर की तरफ खुलता है। बल्बेयूरेथ्रल ग्रन्थियां से नलिकाएं लिंग मूत्रमार्ग में खुलती है।

सहायक ग्रंथियाँ

पुरूष प्रजनन प्रणाली की सहायक ग्रंथियाँ सेमीनल वेसीकल्स, प्रोस्टेट ग्रंथि और बल्बोयूरेथ्रल ग्रंथियाँ होती है। ये ग्रंथियाँ तरल पदार्थ का स्राव करती है जो मूत्रमार्ग में प्रवेश करती है।

सेमीनल वेसीकल्स -जोड़ा सेमीनल वेसीकल्स मूत्राशय के पीछे लघुकोश ग्रन्थियाँ होती है। प्रत्येक ग्रन्थि में एक छोटी नलिका होती है पर से जुड़ते हुए एक शुक्रसेचक वाहिनी का निर्माण करते हैं जो उसके बाद मूत्रमार्ग में खाली होती है।सेमीनल वेसीकल्स से निकला तरल पदार्थ चिपचिपा होता है और इसमें शामिल होता है फ्रुक्टोज, जो शुक्राणु केलिए ऊर्जा का श्रोत प्रदान करता है प्रोस्टाग्लाडिनस जो शुक्राणु कीगतिशीलता और व्यवहारिता के लिए योगदान देता है और प्रोटीनस जो स्खलन के बाद वीर्य में मामूली जमावट प्रतिक्रियाओं का कारण होता है।

प्रोस्टेट -प्रोस्टेट ग्रन्थि एक मजबूत, घनी संरचना होती है जो मूत्राशय के बिल्कुल नीचे स्थित होता है। यह एक अखरोट के आकार का होता है और मूत्राशय को छोड़ते ही मूत्रमार्ग को घेरे रहते हैं। प्रोस्टेट ग्रन्थि के पदार्थ से कई छोटी नलिकाएं प्रोस्टेटिक मूत्रमार्ग में खाली होती है। प्रोस्टेट से होने वाला स्राव पतला, दूध के रंग का और क्षारीय होता है। वे शुक्राणु की गतिशीलता को बढ़ानेके लिए कार्य करते हैं।

बल्बायूरेथ्रल ग्रन्थियाँ

जोड़ा बल्बायूरेथ्र ग्रन्थियाँ लगभग मटर के आकार के बराबर छोटी होती है और यह लिंग के आधार के पास स्थित होती है। प्रत्येक ग्रन्थि से एक छोटी नली शिश्न मूत्रमार्ग के निकटस्थ अंत में प्रवेश करती है। यौन उत्तेजना के प्रतिक्रिया में बल्बा ेयूरेथ्रल ग्रन्थियाँ एक क्षारीय बलगम की तरह तरल पदार्थ का स्राव करती है। यह द्रव मूत्रमार्ग में मूत्र अवशेषों की अम्लता को बेअसर करता है। योनि की अम्लता को बेअसर करने में मदद करता है और संभोग के दौरान लिंग की नोंक के लिए कुछ स्नेहक प्रदान करता है।

वीर्य

वीर्य संबंधी तरल पदार्थ या वीर्य शुक्राणु कोशिकाओं और सहायक ग्रन्थियों से स्राव का एक हल्का क्षारीय मिश्रण है। वीर्य संबंधी पुटिकाओं से स्राव प्रोस्टेट ग्रन्थि से आने वाले अवशेषों के साथ वीर्य की मात्रा के 60 प्रतिशत तक को बनाते हैं। शुक्राणु और बल्बोयूरेथ्रल ग्रन्थि से स्राव केवल एक छोटी मात्रा में योगदान करते हैं।एक एकल स्खलन में वीर्य की मात्रा 1.5 से 6.0 उस तक अलग अलग हो सकती है। आमतौर पर वीर्य के प्रत्येक उस में लगभग 50-150 मिलियन शुक्राणु होते हैं। प्रत्येक मिलीलीटर में 10 से 20 मिलियन से नीचे की शुक्राणु गणना प्रजनन समस्याओं को उपस्थित करती है। हालांकि वास्तव में सिर्फ एक शुक्राणु ओवम में प्रवेश करता है और निषेचन करता है। निषेचन को सुनिश्चित करने के लिए एक स्खलन में कई लाख शुक्राणुओं की जरूरत होती है।

लिंग

लिंग, पुरूष संभोग स्बंधी अंग, योनि में शुक्राणु को स्थानांतरित करने के लिए अंडकोश की थैली के आगे की और स्थित एक बेलनाकार लटकता हुआ अंग है।लिंग स्तंभन ऊतक के तीन स्तंभां से बना हुआ होता है जो संयोजी ऊतक में लिपटा हुआ और त्वचा स े कवर किया हुआ होता है। दो पृष्ठीय स्तंभ है। एकल मध्य रेखा उदर स्तंभ मूत्रमार्ग को चारो तरफ से घेरा हुआ होता हैऔर इसे कहा जाता है।लिंग एक जड शरीर और लिंग से बना हुआ होता है। लिंग की जड़ इसे गुप्तांगों के मेहराबा से जोड़ती है और शरीर दिखने वाला लटकता हुआ

भाग होता है। के निर्माण के लिए बाहरी अंत तक फैला हुआ होता है। मूत्रमार्ग जो उ की पूरी लंबाई तक फैला हुआ होता है जो लिंग की नोक पर बाहरी मूत्रमार्ग छिद्र के माध्यम से खुलता है। चमड़े का ढीला घेरा जिसे शिश्न के मुख पर खुली त्वचा या चमड़ी कहा जाता है यह कवर करता है। पुरूष यौन प्रतिक्रिया और हार्मोनल नियंत्रण पुरूष यौन प्रतिक्रिया में इरेक्शन, संभोग और वीर्य का स्खलन शामिल होता है और इन सबके बाद एक ऐसी चर समय अवधि होती है जिसमें एक और इरेक्शन को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

तीन हार्मोन पुरूष प्रजनन प्रणाली के मुख्य रेगुलेटर्स होते हैं

☐ पुटिका उत्तेजक हार्मोन -शुक्राणुजनन को उत्तेजित करता है।

☐ हार्मोन -टेस्टोस्टेरोन के उत्पादन को उत्तेजित करता है।

☐ टेस्टोस्टेरोन पुरूष माध्यमिक सेक्स विशेषताओं और शुक्राणुजनन को उत्तेजित करता है।

अभ्यास प्रश्न 2

सत्य/असत्य पर निशान लगाएँ।

1. मूत्रमार्ग मूत्रशय से लेकर लिंग की नोक तक बाहरी मूत्रमार्ग छिद्र तक फैला हुआ होता है।

2. प्रोस्टेट ग्रन्थि एक मजबूत, घनी संरचना होती है जो मूत्राशय के बिल्कुल नीचे स्थित होता है।

3. लिंग स्तंभन ऊतक के चार स्तंभां से बना हुआ होता है।

10.4 महिला प्रजनन प्रणाली

महिला प्रजनन प्रणाली में निम्नलिखित शामिल होते हैं:

☐ अंडाशय

☐ जननांग पथ

☐ बाह्य जननांग

☐ स्तन ग्रन्थियां

अंडाशय

मुख्य महिला प्रजनन अंगों या जननग्रन्थि में दो अंडाशय होते हैं। प्रत्येक अंडाशय एक ठोस, बादाम के आकार का अंडाकार संरचना होती है जो लगभग 3.5 लम्बी, 2 चैड़ी और 1मोटी होती है। अंडाशय उथले गड्ढों में स्थित

होता है जिसे कहा जाता है जो श्रोणि गुहा के पाश्र्व दीवारों में गर्भाशय के दोनों ओर होता है। उन्हें पेरिटोनियल स्नायुबंधन द्वारा उस जगह में शिथिलता से पकड़ में रखा जाता है।

संरचना

अंडाशय को बाहर से सरल क्यूर्बाइ डल एपिथेलियम की एक परत से कवर किया जाता है जिसे जर्मिनल ओवेरियनद्ध एपिथेलियम कहा जाता है। जो अंडाशयों को घेरता है। इस परत के नीचे एक घना संयोजी ऊतक बीजकोष, श्वेत आवरक झिल्ली होती है। अंडाशय के पदार्थ को साफ तौर पर एक बाहरी कोर्टेक्स और एक आंतरिक मज्जा में बाँटा जाता है।कोर्टेक्स विकास के विभिन्न चरणां में कई डिम्बग्रन्थि के रोम की उपस्थिति के कारण अधिक सघन और बारीक प्रकट होता है। प्रत्येक फ़ोलिकल में , एक महिला जनन कोशिका शामिल होती है। मज्जा में प्रचुर मात्र में रक्त वाहिकाओ , लसीका वाहिकाओ और तंत्रिका तंतुओ के साथ ढीले संयोजी ऊतक होते हैं।महिला यौन कोशिकाएं, या युग्मक, अर्धसूत्रीविभाजन के एक रूप में अंडाशय में विकसित होती है जिसे कहा जाता है। में घटनाओं का अनुक्रम शुक्राणुजनन में अनुक्रम के समान होता है लेकिन समयावधि और अंतिम परिणाम अलग अलग होते हैं।भ्रूण विकास के शुरूआत में अंडाशय में मुख्य जनन कोशिकाएँ के रूप में अलग हो जाती है। ये विभाजन इतनी तेजी से होता है कि हजारों कोशिकाआ का निर्माण हो जाता है जिसे अभी भी कहा जाता है जिसमें 46 ;23 जोड़ क्रेमोसोम का एक पूर्ण पूरक होता है। उसके बाद एक विकास के चरण में प्रवेश करती है। इसका विस्तार होता है और ये मुख्य हो जाते है ं। डिप्लोइड ;46 क्रोमोसाम मुख्य अपने की नकल करते हैं और पहला अर्धसूत्रीविभाजन शुरू हो जाता है लेकिन प्रक्रिया प्रा ेफेज में बंद हो जाती है और कोशिकाएं यौवन तक इस निलंबित अवस्था में रहती है। कई सारे मुख्य जन्म से पहले विकृत हो जाते हैं लेकिन फिर भी इस गिरावट के साथ दो अंडाशयों में एक ही साथ जन्म के समय लगभग 700,000 होते हैं। यह जीवन भर की आपूर्ति है और किसी अन्य का विकास नहीं होगा।यह पुरूष से बिल्कुल अलग होता है जिसमें स्पर्माटोगोनिया और मुख्य स्पर्माटोसाइटस का उत्पादन किया जाना प्रजनन के पूरे जीवन में जारी रहता है। यौवन तक प्राथमिक की संख्या आगे 400,000 तक कम हो जाती है।पुटिका उत्तेजक हार्मोन के प्रभाव में यौवन में शुरू हुए कई प्राथमिक व्वबलजमे हर महीने फिर से बढ़ने लगते हैं। मुख्य में से कई दूसरे में बदलते हुए प्रतीत होते हैं और यह मियोसिस को पुनः आरंभ करता है। अन्य कोशिकाएं भी विकृत होती हैं। बड़ी कोशिका असमान विभाजन से गुजरती है जिससे लगभग सभी साइटोप्लाज्म, और आधे क्रोमोसोम एक कोशिका 20में जाते हैं जो द्वितीयक बन जाता है। बाँकी के आधे क्रोमोसोम एक छोटी कोशिका में जाते हैं जो पहला ध्रुवीय शरीर कहा जाता है। माध्यमिक दूसरे मायोटिक विभाजन को शुरू करता है लेकिन यह प्रक्रिया मेटाफेज में बंद हो जाती है। इसी बिंदु पर होता है। यदि निषेचन होता है तो जारी रहता है। सभी साइटोप्लाज्म के ओवम में जाने के साथ यह एक असमान विभाजन होता है जिसमें 23 एकल असहाय गुणसूत्र होते हैं। इस विभाजन से उत्पन्न छोटी कोशिका एक माध्यमिक ध्रुवीय शरीर होता है। पहला धुरूवीय शरीर भी आमतौर पर में दो छोटे ध्रुवीय निकायों के उत्पादन के लिए विभाजित होता है। यदि निषेचन नहीं होता है तो दूसरा विभाजन कभी पूरा नहीं होता है और माध्यमिक कम हो जाता है। यहाँ पुनः पुरूष और महिला के बीच स्पष्ट मतभेद होता है। शुक्राणुजनन में चार कार्यात्मक

शुक्राणु प्रत्येक प्राथमिक स्पर्माटोसाइट से विकसित होते हैं। में केवल एक कार्यात्मक निषेचन योग्य कोशिका एक मुख्य व से विकसित होती है। अन्य तीन कोशिकाएँ ध्रुवीय निकाय होती है और वे कम हो जाती है।

डिम्बग्रन्थि

पुटिका विकास एक डिम्बग्रन्थि पुटिका विकसित से बनी होती है जो कोशिकाआं के एक या अधिक परतों से घिरा हुआ होता है जिसे पुटिका कोशिकाएं 21कहा जाता है। इसी समय डमपवेपे क े माध्यम से भी विकसित हो रहा होता है और ऐसा ही परिवर्त न पुटिका कोशिकाआं में भी हो रहा होता है। मौलिक पुटिकाएँ जो चिपटी कोशिकाआं के एक परत से घिरे हुए मुख्य से बनी होती है, का विकास भ्रूण में होता है और जन्म के समय और बचपन में अंडाशय में वर्त मान चरण होता है।यौवन के शुरू में पुटिका उत्तेजक हार्मोन पुटिकाओं मेंपरिवर्त न को उत्तेजित करता है। पुटिका कोशिकाएँ हो जाती है। मुख्य में विस्तार होता है और यह अब एक मुख्य पुटिका हो जाती है। पुटिका उत्तेजक हार्मोन के प्रभाव में पुटिकाओं का विकास होना जारी रहता है और पुटिका कोशिकाएं मुख्य के आसपास कोशिकाओं की कई परतों को उत्पन्न करते हैं। इनमें से अधिकांश मुख्य पुटिकाएँ अपने अंदर के मुख्य के साथ कम होती जाती है लेकिन आमतौर पर एक का प्रत्येक माह विकास जारी रहता है। कोशिकाएं एस्ट्रोजन स्रावित करना शुरू करती है और एक गुहा, या अस्थि कोटर का पुटिका में निर्माण होता 22है। कोशिकाएं भी पदार्थ का स्राव करती है जो के चारों ओर एक स्पष्ट झिल्लीर् का निर्माण करती है। विकास के लगभग 10 दिनों के बाद पुटिका एक परिपक्व कोष्ठकी पुटिका होती है जो ओवरी के सतह पर का निर्माण करती है और इनमें के लिए तैयार माध्यमिक शामिल होती है।

डिम्बोत्सर्जन

अगरवर्ती पिट्यूटरी से हार्मा ेन द्वारा प्रेरित द तब होता है जब आ ेवरी के सतह पर परिपक्व कोशिकाएं फटती है और पेरीटोनियल केविटी में माध्यमिक को उत्सर्जि त करती है। ओवयूलेटेड माध्यमिक जो निषेचन के लिए तैयार होता है अभी भीं और कोशिकाआ के कुछ परतें जिस कहा जाता है उनसे घिरी हुई होती है। अगर यह निषेचित नहीं होता है तो कुछ ही दिनों में माध्यमिक में कमी होती है। यदि एक शुक्राणु के माध्यम से गुजरती है और माध्यमिक के में प्रवेश करती है तो एक ध्रुवीय शरीर और एक परिपक्व ओवम के निर्माण के लिए दूसरा विभाजन होना शुरू होता हार्मोन की प्रतिक्रिया में ओवरी में बचा रहने वाला पुटिका का हिस्सा बड़ा होता है और यह में परिवर्तित हो जाता है। एक ग्रंथीय संरचना होती है जो और कुछ एस्ट्रोजन को स्रावित करती है। इसका भविष्य निषेचन के घटित होने पर निर्भर करता है। यदि निषेचन नहीं होता है तो लगभग 10 दिनों के लिए कार्यात्मक रहता है और इसके बाद यह में विकृत होना शुरू हो जाता है जो मुख्य रूप से निशान ऊतक होता है और इसका हार्मोन उत्सर्जन समाप्त हो जाता है। यदि निषेचन होता है तो बनी रहती है और जब तक प्लेसैन्टा पूर्णतया सभी आवश्यक हार्मोन के उत्सर्जन के लिए तैयार न हो जाए इसकी हार्मोन संबंधी क्रिया जारी रहती है। पुनः अंततः विकृत हो जाता है लेकिन यह समय की एक लंबी अवधि के लिए कार्यात्मक रहता है।

जननांग पथ

जननांग पथ फैलोपियन ट्यूब, गर्भाशय और योनि से बना हुआ होता है।

फैलोपियन ट्यूब

वहाँ दो गर्भाशय ट्यूब होते हैं जिसे फैलोपियन ट्यूब भी कहा जाता है। प्रत्येक अंडाशय के साथ जुड़ा हुआ एक ट्यूब होता है। ओवरी के पास ट्यूब का आखिरी हिस्सा कीप आकार के निर्माण के लिए इसका विस्तार करती है जो अंगुली के जैसे एक्सटेंशन से घिरी हुई होती है जिसे कहा जाता है। चूंकि और ओवरी के बीच कोई सीधा संबंध नहीं होता है इसलिए फैलोपियन ट्यूब में घुसने से पहले पेरिटोनियल कैविटी में प्रवेश करती है। के समय अपनी गतिविधि को बढ़ाती है और पेरिटोनियल तरल पदार्थ में तरंगें उत्पन्न करती है जो को फैलोपियन ट्यूब में प्रवेश करने के लिए प्रेरित करती है। एक बार जब यह फलोपियन ट्यूब के अंदर होती है तब एपिथेलियल लाइनिंग पर वर्त मान के तालबद्ध विस्पंदन के द्वारा और ट्यूब की दीवार में चिकनी मांसपेशियां की क्रमिक वृत्तों में सिकुड़नेवाली कार्रवाइ के साथ फैलोपियन ट्यूब से गुजरती है। फैलोपियन ट्यूब के माध्यम से यात्रा में 7 दिन लगते हैं। चूंकि सिर्फ 24 से 48 घंटे के लिए जनन में सक्षम होता है क्योंकि निषेचन आमतौर पर फैलोपियन ट्यूब में होता है। निषेचित ओवम को गर्भाशय में पहुँचा दिया जाता है।

गर्भाशय

गर्भाशय एक पेशी अंग है जो निषेचित व्वबलजम प्राप्त करता है और भ्रूण के विकास के लिए एक उपयुक्त वातावरण प्रदान करता है। पहली गर्भावस्था से पहले गर्भाशय लगभग नाशपाती के आकार का होता है और इसका संकीर्ण हिस्सा नीचे की ओर निर्देशित होता है। बच्चे के जन्म के बाद गर्भाशय आमतौर पर बड़ा होता है और बाद में रजोनिवृत्ति के पश्चात अपने आकार में वापस आ जाता है।गर्भाशय गर्भकला के साथ पंक्ति में होती है। गर्भ कला की सतही परत मासिक धर्म के दोरान अपने केंचुल को उतार देती है। गहरी परत के पुनर्निर्माण के लिए आधार प्रदान करता है।

योनि

योनि लगभग 10 लंबी फाइब्राे-पेशी ट्यूब है जो गर्भाशय की ग्रीवा से बाहर तक फैली हुई होती है। यह मलाशय और मूत्राशय के बीच स्थित होता है। चूंकि योनि पीछे की ओर झुका हुआ होता है जैसे कि यह ऊपर की ओर जा रहा हो और ग्रीवा आगे की ओर झुकी हुई होती है।

ग्रीवा योनि में लगभग 900 के कोण पर बाहर की ओर निकल रही हो। योनि माहवारी के लिए एक मार्ग के रूप में कार्य करता है। संभोग के दौरान यह सीधे खड़े लिंग को प्राप्त करता है और प्रसव के दौरान जन्म नलिका का काम करता है।

बाह्य जननांग

बाह्य जननांग महिला प्रजनन प्रणाली की सहायक संरचनाएं होती हैंजो योनि के बाहर होती है। उन्हें के रूप में भी संदर्भित किया जाता है। बाह्य जननांग और के अंदर के ग्रन्थियां को शामिल करता है।

पुरूष लिंग के समान एक स्तंभन अंग है जो यौन उत्तेजना से प्रतिक्रिया करता है। के पीछे मूत्रमार्ग, योनि, पारा-मूत्रमार्ग ग्रन्थियों में खुलने वाली बड़ी ग्रन्थियाँ होती है।

स्तन ग्रन्थियाँ

कार्यात्मक रूप से स्तन ग्रंथियाँ दूध उत्पादन करती है लेकिन संरचनात्मक रूप से वे संशोधित पसीने की ग्रंथियाँ होती है। स्तन ग्रंथियाँ दोनों लिंगों में मौजूद होती है लेकिन आमतौर पर केवल महिलाओं में कार्य करती है। बाहरी रूप से प्रत्येक स्तन एक उठा हुआ निप्पल होता है जो एक वृत्ताकार रंजित क्षेत्र से घिरा हुआ होता है जिसे कहा जाता है। निपल्स स्पर्श के प्रति संवेदनशील होते हैं। इनकी चिकनी मांसपेशियाँ उत्तेजना के प्रतिक्रिया के रूप में इन्हें संवेदनशील बनाने के लिए जिम्मेवार होती है।आंतरिक रूप से व्यस्क महिला स्तन ग्रंथीय ऊतकों के 15 से 20 खण्डों को शामिल करती है जो निप्पल के आसपास बिखरी हुई होती है। खंड संयोजी ऊतक और वसा से अलग अलग होते हैं। संयोजी ऊतक स्तन को सहायता देने में मदद करता है। संयोजी ऊतक के कुछ बंधनों को लटकने वाला स्नायुबंधन कहा जाता है जिनका विस्तार स्तन से अंतर्निहित मांसपेशियां की त्वचा तक होता है। वसा की मात्रा और वितरण स्तन के आकार और आकृति को निर्धारित करता है। प्रत्येक खंड के बने होते हैं जो ग्रंथीय इकाइयों को शामिल करती है। प्रत्येक खंड में से दूध इकट्ठा करती है और इसे निप्पल तक ले जाती है।निप्पल से ठीक पहले निर्माण के लिए फैल जाती है जो दूध के लिए एक संग्रह वाली जगह का काम करता है। पदने के बाद वाहिनी पुनः संकीर्ण हो जाती है और प्रत्येक वाहिनी निप्पल के सतह पर स्वतंत्र रूप से खुलती है। स्तन ग्रंथियों के क्रियाकलाप को हार्मोन द्वारा नियंत्रित किया जाता है। यौवन में एस्ट्रोजन का बढ़ता हुआ स्तर महिला स्तन में ग्रंथियों के ऊतकों के विकास को प्रोत्साहित करता है। एस्ट्रोजन भी वसा ऊतकों के संचय के माध्यम से स्तन के आकार में वृद्धि का कारण बनता है। प्रोजेस्टेरोन वाहिनी प्रणाली के विकास को उत्तेजित करता है। गर्भावस्था के दौरान ये हार्मोन स्तन ग्रंथियों के विकास में वृद्धि करते हैं। अग्रवर्ती पिट्यूटरी से प्रोलैक्टिन ग्रंथियों के ऊतक के भीतर दूध के उत्पादन को उत्तेजित करती है और आॅक्सीटोसिन ग्रंथियों से दूध के निष्कासन का कारण बनता है।महिला यौन प्रतिक्रिया और हार्मोनल नियंत्रण महिला यौन प्रतिक्रिया कामोत्तेजना और संभोग सुख को शामिल करता है लेकिन वहाँ कोई स्खलन नहीं होता है। एक औरत कामोन्मात के बिना भी गर्भवती हो सकती है।पुटिका उत्तेजक हार्मोन, एस्ट्रोजन और प्रोजेस्ट्रोन महिला प्रजनन प्रणाली के कार्यों को विनयमित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। यौवन में जब अंडाशय और गर्भाशय हार्मोनल उत्तेजना से प्रतिक्रिया करने के लिए काफी परिपक्व हो जाते हैं तब कुछ उत्तेजनाएँ हाइपोथेलेमस उत्सर्जन हार्मोन स्रावित शुरू करने का कारण होती है। यह हार्मोन रक्त में प्रवेश करती है और अग्रवर्ती पिट्यूटरी ग्रंथि में जाता है जहाँ यह पुटिका उत्तेजक हार्मोन और ल्यूटेनाइजिंग हार्मोन के स्राव को उत्तेजित करती है। ये हार्मोन बदले में अंडाशय और गर्भाशय को प्रभावित करते हैं और मासिक चक्र शुरू हो जाता है। एक महिला का प्रजनन चक्र रजोदर्शन मासिक धर्म की शुरूआतद्ध से लेकर रजोनिवृत्ति (मासिक धर्म के अंतद्ध तक रहता है।मासिक ओवरियन चक्र पुटकीय चरण के दौरान पुटिका विकास

के साथ शुरू होता है। चरण के दौरान के साथ जारी रहता है और चरण के दौरान के विकास और प्रतिगमन के साथ समाप्त हो जाता है।गर्भाशय चक्र ओवरियन चक्र के साथ साथ जगह लेता है। गर्भाशय चक्र मासिक धर्म चरण के दौरान मासिक धर्म के साथ शुरू होता है। चरण के दौरान अन्तःगर्भाशय के सुधार के साथ जारी रहता है और स्रावी चरण के दौरान ग्रंथियों और रक्त वाहिकाओं के विकास के साथ समाप्त हो जाता है।

रजोनिवृत्ति तब होता है जब एक महिला का प्रजनन चक्र रूक जाता है। इस अवधि को ओवरियन हार्मोन के घटे हुए स्तर और पीयूषिका पुटिका- हार्मोन उत्तेजक और ल्यूटेर्नाइजिंग हार्मोन के बढ़े हुए स्तर द्वारा चिंतित किया जाता है। बदलता हुए हार्मोन स्तर रजोनिवृत्ति के साथ जुड़े लक्षण के लिए जिम्मेदार होता है।

10.5 शब्दावली

समस्थिति - एक समान स्थिति

अधिवृषण - प्रत्येक वृषण में एक घुमावदार नलिका जो के लिए शुक्राणु वहन करती है।29

शुक्राणु - पुरूष प्रजनन कोशिका

वीर्य संबंधी पुटिका. पुरूष मूत्राशय केदोनों तरफ स्थित ग्रंथियों की एक जोड़ी जो में खुलती है।

10.6 निबंधात्मक प्रश्न

1. पुरूष प्रजनन प्रणाली के अंगों का वर्णन करें।

2. स्त्री प्रजनन प्रणाली के अंगों का वर्णन करें।

3. पुरूष यौन प्रतिक्रिया और स्त्री यौन प्रतिक्रिया के साथ हार्मोनल नियंत्रण को समझाएं।

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य 6. असत्य

10.7 संदर्भ ग्रंथ

1. अर्थर सी. गुयटन एण्ड जान एडवर्ड हाल (2006), ट ेक्सटब ुक आॅफ मेडिकल फीजियोलॅजी, फ्लोरिडा, अमेरिका, एल्जेवियर स्टैंडर्डस

2. सुरिन्दर एच सिंह और कृष्ण गर्ग (2008), एनाटाॅमी, एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर नर्सेज और एलाॅइड हेल्थ सांइसेज, नई दिल्ली, सीबीएस पब्लिशर्स

3. शिवरामकृष्णन एस. (2006), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी फाॅर फीजिकल एजुकेशन, नई दिल्ली, फ्रेंड्स पब्लिशर्स

4. अन्ने वाॅ और एल्सन ग्राउंट (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी इन हेल्थ एण्ड वेलनेस, इलाहाबाद, चर्चिल लिविंगस्टोन

5. क्लार्क राॅबर्ट के. (2005), एनाटाॅमी एण्ड फीजियोलाॅजी - अंदरस्टैंडिंग द ह्यूमन बाॅडी, सडरी, यूर्नाइ टेड स्टेट्स, जाॅनस एण्ड बारटियट

6. श्री कृष्ण (1985), नोट्स आॅन स्ट्रक्चर एण्ड फंक्शन्स आॅफ ह्यूमन बाॅडी एंड इफेक्ट्स आॅफ योगिक प्रेक्टिसेज इन इट, मुंबई र् आइ .सी.वाई.एच सी. कैवल्यधाम

7. दत्ता रे (2001), योगिक एक्सरसाईजेज, नई दिल्लीः जेपी ब्रदर्स

8. शीर्ले टेलेस (2006), ए गिलम्पस आॅफ द ह्यूमन, बंगलोरः स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन

9. लेस्ली केमिनोफ (2007), योग एनाटामी, कैम्पेनः ह्यूमन कांइ नेटिक्स

10. पीटर आई विलियम्स और रोगर वास्वी (1988), ग्रेज एनाटॅमी, एडीनबर्गः चर्चिल लिविंगस्टोन

11. एवीलीन ब् पीएर्स (1997), एनाटामी एंड फीजियोलाजी फार नर्सेज, नई दिल्लीःजेपी ब्रदर्स

12. गेरे एम.एम. (2003), एनाटॅमी एण्ड फीजियोलॅजी फॅर योगिक पै्रक्टिसेज, लुनावालाः काम्हान प्रकाशन

13. शरीर- रचना विज्ञान एवं शरीर-क्रिया विज्ञान (2003), श्री नन्दन बंसल, जेपी ब्रदर्सः नई दिल्ली